जैन महासंघ दिल्ली की हार्दिक शुभकामनाएं।

प्रकृति-पुत्र

निर्भीक वक्ता, ज्ञानतपस्वी, तेजोमय, महामहिम, सत्पुरुष
गुरुदेव श्री कस्तूरचन्द्र जी महाराज के सुशिष्य कविरत्न,
प्रसिद्ध वक्ता, मानव धर्म प्रचारक, उपाध्याय,
श्री अमृतचन्द्र जी महाराज के पवित्र
जीवन का सप्रमाण सुन्दर विवेचन

प्रकाशक

श्री गौतम ज्ञानपीठ

गुरु भवन, भटिण्डा

१ सम्वत् ०१२

मूल्य
डेढ़ रुपया

वीर सम्वत् २४८१

प्रकाशक
गौतम ज्ञानपीठ, गुरु भवन, भटिण्डा (पेप्सू)

प्रथम बार एक हज़ार

मुद्रक न्यू इण्डिया प्रेस, कनाट सर्कस, नई दिल्ली।

अपनी बात

चित्त अशात हो तो कुछ भी लिख पाना बडा कठिन है। जिस दिन मुझे यह पुस्तक लिखनी आरम्भ करनी थी, चित्त अशात था। चारो ओर चिन्ताएँ मण्डरा रही थीं। मै जो चाहता था, लेखनी की नोक पर वही न आता था। पर पुस्तक लिखनी थी। मेरे वस की वात होती तो उन दिनो आरम्भ न करता।—आरम्भ कर दी और अन्त करने की जल्दी सिर पर सवार हो गई। और मै पुस्तक लिखता रहा और केवल एक मास के परिश्रम के परिणामस्वरूप एक पुस्तक तैयार हो गई।

मेरे चरित्र नायक में कुछ वातें ऐसी है जो मेरे हिये को स्पर्श कर जाती हैं। जहाँ वह स्पर्श आया, वहीं हृदय तरगित हो गया और लेखनी में शक्ति आ गई। जहाँ लिखने के लिए लिखना पडा वहाँ केवल लिखा ही गया।

फिर भी मैंने पुस्तक को 'जीवन चरित्र' मात्र रखने की चेष्टा नहीं की। मेरी इस पुस्तक में सत्य है, अमृत मुनि जी के जीवन-इतिहास का सत्य, और गति भी, काव्य भी और रोचकता भी। कितनी ही कहानियाँ आप इसमें पायेंगे। और आपको मानना पडेगा कि कभी-कभी सत्य घटनाएँ भी कल्पनाओ से अधिक रोचक होती है। इसलिए पुस्तक उन पुस्तको से भिन्न है जो अमृत मुनि जी के जीवन पर इससे पूर्व प्रकाशित हो चुकी हैं।

हाँ, मै यह वात जोरदार शब्दो में कह सकता हूँ कि पुस्तक केवल एक जीवन-चरित्र ही नहीं, वल्कि श्री अमृत मुनि जी के जीवन का स्पष्ट चित्र है, ऐसा चित्र जिसमें उनके जीवन का प्रत्येक कोण स्पष्ट हो गया है। मेरी लेखनी कहीं भी रुकी नहीं, मैंने पाठक को प्रतीक्षा करने के लिए नहीं छोडा। कहा जो कुछ वह ऐसा कि पाठक मेरे चरित्र-नायक को भली प्रकार समझ ले।

ऐसे सत आपको नहीं मिलेंगे जो ससार से विरक्त रहते हुए भी ससार में खपे हो और ससार से टक्कर लेते रहे हो। अभी मेरे चरित्र-नायक जीवन-पथ पर वढ रहे हैं, अभी मैंने उनके जीवन का वहुत कुछ भाग और लिखना है। और इसलिए मै कह सकता हूँ कि मेरी इस पुस्तक का चरित्र-नायक अन्त में इस अपनी जीवनगाथा से ही इसान में इन्सानियत—मानव में मानवता—जगाकर छोडेगा और ऐसा न भी हुआ तो भी पाठक के मन में वैठे अंधकार को एक वार

कम्पित तो कर ही डालेगा। जिसकी जीवन-गाथा में इतना बल हो, उसमें कितनी शक्ति होगी, आप ही अनुमान लगाइये ।

मैं स्वयं किसी भिन्न दिशा का यात्री हूँ। कभी-कभी मैंने इस पुस्तक में स्वयं भी उभरने की चेष्टा की है, पर उसी हद तक जहाँ तक मेरे चरित्र-नायक के 'चरित्र' ने आज्ञा दी। क्योंकि यह तो असम्भव है कि किसी पुस्तक में लेखक स्वय बिल्कुल ही अपने को दूर रखे। अनुवाद तक में अनुवादक झलक जाता है। उपाध्याय श्री अमृत मुनि जी के व्यक्तित्व ने मुझे बहुत प्रभावित किया है और मुझे ऐसा लगा है कि कदाचित् मैं इनकी छाया में भी पनप सकता हूँ, अपने पथ पर बढ़ते हुए भी।

मेरे चरित्र-नायक के जीवन में भी कई मोड आये हैं, जो स्वाभाविक बात है, इसे कुछ लोग प्राकृतिक नियम भी कह सकते हैं। मैं इन्हें परिस्थितियाँ मानता हूँ जो मनुष्यो को इधर-से-उधर ले जाती हैं। और परिस्थितियाँ उत्पन्न करना किसी एक के बस की बात नहीं वरन् सारे समाज के बस की बात है। क्योंकि इस समाज में कोई भी व्यक्ति स्वतन्त्र नहीं है, वह भी नहीं जो इस समाज को बदलने के लिए संघर्ष करता है। पर आप मेरे चरित्र-नायक के प्रत्येक मोड को समाज के लिए लाभदायक ही पायेंगे।

मेरे जीवन में भी यह एक नया ही मोड है। जो मैं एक सत के जीवन पर पुस्तक लिख रहा हूँ। मैं नहीं जानता, यह मोड किसके लिए लाभदायक होगा। पर इतनी बात अवश्य है कि इस समाज ने मुझ जैसे कितने ही लोगो की कामनाओ का गला घोट कर रख दिया है, कितने ही जीवन बरबाद कर डाले हैं सामाजिक व्यवस्था ने।—पर मैं सम्भलने की चेष्टा में हूँ। मुझे आशा है कि इस नए मोड पर भी मैं समाज की कुछ सेवा कर सकूँगा। उपाध्याय श्री अमृत मुनि जी की कृपा रही तो भविष्य में कितनी ही पुस्तकें आपको दे सकूँगा, ऐसी मुझे आशा है। एक मास एक पुस्तक के लिए बहुत ही कम समय है, इस बात को ध्यान में रखकर पाठक पढ़ेंगे तो मुझे आशा है कि यह पुस्तक उन्हें अवश्य ही पसंद आयेगी।

भटिण्डा
५-४-'५५

—बाबूसिंह चौहान

उस दिन मानवता रोती थी

· · और वह, उस ओर से किसी का करुण क्रन्दन उठा, सारे वातावरण को जिसने अपने आँचल मे, भीगे हुए आँचल मे समेट लिया, अधकार की यवनिका भी उससे प्रभावित हुए विना न रह सकी। चीत्कार भूमि से उठे और आकाश की ओर बढ चले। जिससे आकाश भी शोकविह्वल होगया। कौन जाने, गिरती शवनम आकाश के हृदय से होता हुआ अश्रुपात ही हो।

गहन रात्रि मे, अधकार मे, ऐसे अधकार मे जिसमे हाथ को हाथ सुझाई न दे, दीपक की लौ भी अधकार के दानव के भय से कम्पित हो जाय, चीत्कार उठते रहे, उठते ही रहे। उस समय तक उठते रहे जव तक नदियो की लहरो का मौन भग नही हुआ, जव तक सागर स्वय न रो पडा, जव तक शाति का हिया अशाति से तडप न उठा। धरती का जिया उठ खडा हुआ। उससे न रहा गया तो चीत्कार करती आकृति के निकट जाकर पूछ ही तो लिया, "कौन हो तुम ? क्यो रोती हो?" उसने एकवार सिर उठाया। कुछ देर के लिए चीत्कार शात होगए।

"कौन हो तुम ? क्यो रोती हो ? क्या हुआ ?" पुन प्रश्न हुआ।

उसने अपने अस्त-व्यस्त वस्त्रो को सम्भाला, विखरे केशो को मुह पर से हटाने के लिए एक वार सिर को झटका। केश कमर पर छितरा गए। वोली, रुँधे हुए कण्ठ से, "मुझ से यह पूछते हो कि क्या हुआ ? यह पूछो कि क्या नही हुआ।"

"सताई हुई प्रतीत होती हो," धरती का हृदय वोला।

"सताई हुई ही नही, तिरस्कृत भी," वह वोली। "मुझ पर एक ने नही, सभी ने अन्याय किए है, मुझे एक ने नही, सभी ने ठुकराया है, और उन अन्यायो की मत पूछो मुझे रोने तक का साहस नही हुआ। "

प्रकृति-पुत्र

निर्भीक वक्ता, ज्ञानतपस्वी, तेजोमय, महामहिम, सत्पुरुष
गुरुदेव श्री कस्तूरचन्द्र जी महाराज के सुशिष्य कविरत्न,
प्रसिद्ध वक्ता, मानव धर्म प्रचारक, उपाध्याय,
श्री अमृतचन्द्र जी महाराज के पवित्र
जीवन का सप्रमाण सुन्दर विवेचन

प्रकाशक

श्री गौतम ज्ञानपीठ

गुरु भवन, भटिण्डा

विक्रम सम्वत् २०१२

मूल्य
डेढ़ रुपया

वीर सम्वत् २४८१

प्रकाशक
गौतम ज्ञानपीठ, गुरु भवन, भटिण्डा (पेप्सू)

प्रथम बार एक हज़ार

मुद्रक न्यू इण्डिया प्रेस, कनाट सर्कस, नई दिल्ली ।
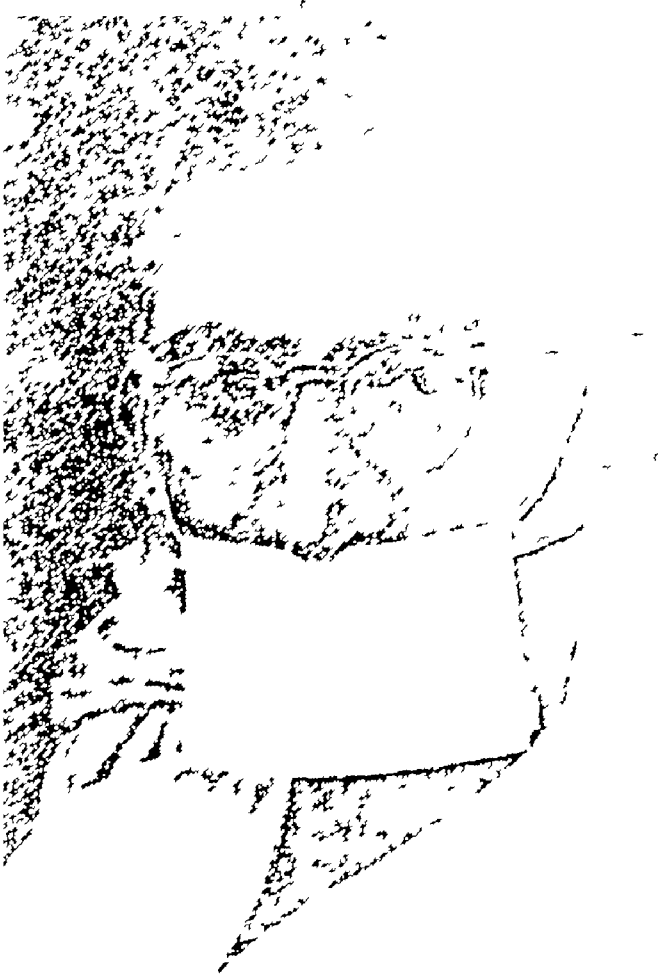
अपनी बात

चित्त अशात हो तो कुछ भी लिख पाना बडा कठिन है। जिस दिन मुझे यह पुस्तक लिखनी आरम्भ करनी थी, चित्त अशात था। चारो ओर चिन्ताएँ मण्डरा रही थीं। मैं जो चाहता था, लेखनी की नोक पर वही न आता था। पर पुस्तक लिखनी थी। मेरे वश की बात होती तो उन दिनो आरम्भ न करता।—आरम्भ कर दी और अन्त करने की जल्दी सिर पर सवार हो गई। और मैं पुस्तक लिखता रहा और केवल एक मास के परिश्रम के परिणामस्वरूप एक पुस्तक तैयार हो गई।

मेरे चरित्र नायक में कुछ बातें ऐसी है जो मेरे हिये को स्पर्श कर जाती है। जहाँ वह स्पर्श आया, वहीं हृदय तरगित हो गया और लेखनी में शक्ति आ गई। जहाँ लिखने के लिए लिखना पडा वहाँ केवल लिखा ही गया।

फिर भी मैंने पुस्तक को 'जीवन चरित्र' मात्र रखने की चेष्टा नहीं की। मेरी इस पुस्तक में सत्य है, अमृत मुनि जी के जीवन-इतिहास का सत्य, और गति भी, काव्य भी और रोचकता भी। कितनी ही कहानियाँ आप इसमें पायेंगे। और आपको मानना पडेगा कि कभी-कभी सत्य घटनाएँ भी कल्पनाओ से अधिक रोचक होती है। इसलिए पुस्तक उन पुस्तको से भिन्न है जो अमृत मुनि जी के जीवन पर इससे पूर्व प्रकाशित हो चुकी है।

हाँ, मैं यह बात जोरदार शब्दो में कह सकता हूँ कि पुस्तक केवल एक जीवन-चरित्र ही नहीं, बल्कि श्री अमृत मुनि जी के जीवन का स्पष्ट चित्र है, ऐसा चित्र जिसमें उनके जीवन का प्रत्येक कोण स्पष्ट हो गया है। मेरी लेखनी कहीं भी रुकी नहीं, मैंने पाठक को प्रतीक्षा करने के लिए नहीं छोडा। कहा जो कुछ वह ऐसा कि पाठक मेरे चरित्र-नायक को भली प्रकार समझ ले।

ऐसे सत आपको नहीं मिलेंगे जो ससार से विरक्त रहते हुए भी ससार में खपे हो और ससार से टक्कर लेते रहे हो। अभी मेरे चरित्र-नायक जीवन-पथ पर बढ रहे है, अभी मैंने उनके जीवन का बहुत कुछ भाग और लिखना है। और इसलिए मैं कह सकता हूँ कि मेरी इस पुस्तक का चरित्र-नायक अन्त में इस अपनी जीवनगाथा से ही इन्सान में इन्सानियत—मानव में मानवता—जगाकर छोडेगा और ऐसा न भी हुआ तो भी पाठक के मन में बैठे अधकार को एक बार

उस दिन मानवता रोती थी

और वह, उस ओर से किसी का करुण क्रन्दन उठा, सारे वातावरण को जिसने अपने आँचल मे, भीगे हुए आँचल मे समेट लिया, अधकार की यवनिका भी उससे प्रभावित हुए विना न रह सकी। चीत्कार भूमि से उठे और आकाश की ओर बढ चले। जिससे आकाश भी शोकविह्वल होगया। कौन जाने, गिरती शबनम आकाश के हृदय से होता हुआ अश्रुपात ही हो।

गहन रात्रि मे, अधकार मे, ऐसे अधकार मे जिसमे हाथ को हाथ सुझाई न दे, दीपक की लौ भी अधकार के दानव के भय से कम्पित हो जाय, चीत्कार उठते रहे, उठते ही रहे। उस समय तक उठते रहे जब तक नदियो की लहरो का मौन भग नही हुआ, जब तक सागर स्वय न रो पडा, जब तक शाति का हिया अशाति से तडप न उठा। धरती का जिया उठ खडा हुआ। उससे न रहा गया तो चीत्कार करती आकृति के निकट जाकर पूछ ही तो लिया, "कौन हो तुम ? क्यो रोती हो?" उसने एकबार सिर उठाया। कुछ देर के लिए चीत्कार शात होगए।

"कौन हो तुम ? क्यो रोती हो ? क्या हुआ ?" पुन प्रश्न हुआ।

उसने अपने अस्त-व्यस्त वस्त्रो को सम्भाला, बिखरे केशो को मुह पर से हटाने के लिए एक वार सिर को झटका। केश कमर पर छितरा गए। बोली, रुँधे हुए कण्ठ से, "मुझ से यह पूछते हो कि क्या हुआ ? यह पूछो कि क्या नही हुआ।"

"सताई हुई प्रतीत होती हो," धरती का हृदय बोला।

"सताई हुई ही नही, तिरस्कृत भी," वह बोली। "मुझ पर एक ने नही, सभी ने अन्याय किए है, मुझे एक ने नही, सभी ने ठुकराया है, और उन अन्यायो की मत पूछो मुझे रोने तक का साहस नही हुआ।"

कम्पित तो कर ही डालेगा। जिसकी जीवन-गाथा में इतना बल हो, उसमें कितनी शक्ति होगी, आप ही अनुमान लगाइये ।

मै स्वयं किसी भिन्न दिशा का यात्री हूँ। कभी-कभी मैंने इस पुस्तक में स्वय भी उभरने की चेष्टा की है, पर उसी हद तक जहाँ तक मेरे चरित्र-नायक के 'चरित्र' ने आज्ञा दी। क्योकि यह तो असम्भव है कि किसी पुस्तक में लेखक स्वय बिल्कुल ही अपने को दूर रखे। अनुवाद तक में अनुवादक झलक जाता है। उपाध्याय श्री अमृत मुनि जी के व्यक्तित्व ने मुझे बहुत प्रभावित किया है और मुझे ऐसा लगा है कि कदाचित् मै इनकी छाया में भी पनप सकता हूँ, अपने पथ पर बढते हुए भी।

मेरे चरित्र-नायक के जीवन में भी कई मोड आये है, जो स्वाभाविक बात है, इसे कुछ लोग प्राकृतिक नियम भी कह सकते है। मै इन्हें परिस्थितियाँ मानता हूँ जो मनुष्यो को इधर-से-उधर ले जाती है। और परिस्थितियाँ उत्पन्न करना किसी एक के बस की बात नहीं वरन् सारे समाज के बस की बात है। क्योकि इस समाज में कोई भी व्यक्ति स्वतन्त्र नहीं है, वह भी नहीं जो इस समाज को बदलने के लिए संघर्ष करता है। पर आप मेरे चरित्र-नायक के प्रत्येक मोड को समाज के लिए लाभदायक ही पायेंगे।

मेरे जीवन मे भी यह एक नया ही मोड है। जो मै एक सत के जीवन पर पुस्तक लिख रहा हूँ। मै नही जानता, यह मोड किसके लिए लाभदायक होगा। पर इतनी बात अवश्य है कि इस समाज ने मुझ जैसे कितने ही लोगो की काम-नाओ का गला घोट कर रख दिया है, कितने ही जीवन बरबाद कर डाले है सामाजिक व्यवस्था ने।—पर मै सम्भलने की चेष्टा में हूँ। मुझे आशा है कि इस नए मोड पर भी मै समाज की कुछ सेवा कर सकूँगा। उपाध्याय श्री अमृत मुनि जी की कृपा रही तो भविष्य में कितनी ही पुस्तकें आपको दे सकूँगा, ऐसी मुझे आशा है। एक मास एक पुस्तक के लिए बहुत ही कम समय है, इस बात को ध्यान में रखकर पाठक पढेंगे तो मुझे आशा है कि यह पुस्तक उन्हें अवश्य ही पसद आयेगी।

भटिण्डा
५-४-'५५

—बाबूसिह चौहान

कम्पित तो कर ही डालेगा। जिसकी जीवन-गाथा में इतना बल हो, उसमें कितनी शक्ति होगी, आप ही अनुमान लगाइये ।

मै स्वयं किसी भिन्न दिशा का यात्री हूँ। कभी-कभी मैंने इस पुस्तक में स्वयं भी उभरने की चेष्टा की है, पर उसी हद तक जहाँ तक मेरे चरित्र-नायक के 'चरित्र' ने आज्ञा दी। क्योकि यह तो असम्भव है कि किसी पुस्तक में लेखक स्वय बिल्कुल ही अपने को दूर रखे। अनुवाद तक में अनुवादक झलक जाता है। उपाध्याय श्री अमृत मुनि जी के व्यक्तित्व ने मुझे बहुत प्रभावित किया है और मुझे ऐसा लगा है कि कदाचित् मै इनकी छाया में भी पनप सकता हूँ, अपने पथ पर बढ़ते हुए भी।

मेरे चरित्र-नायक के जीवन में भी कई मोड आये है, जो स्वाभाविक बात है, इसे कुछ लोग प्राकृतिक नियम भी कह सकते है। मै इन्हें परिस्थितियाँ मानता हूँ जो मनुष्यो को इधर-से-उधर ले जाती है। और परिस्थितियाँ उत्पन्न करना किसी एक के बस की बात नहीं वरन् सारे समाज के बस की बात है। क्योकि इस समाज में कोई भी व्यक्ति स्वतन्त्र नहीं है, वह भी नहीं जो इस समाज को बदलने के लिए सघर्ष करता है। पर आप मेरे चरित्र-नायक के प्रत्येक मोड़ को समाज के लिए लाभदायक ही पायेंगे।

मेरे जीवन में भी यह एक नया ही मोड है। जो मै एक सत के जीवन पर पुस्तक लिख रहा हूँ। मै नहीं जानता, यह मोड किसके लिए लाभदायक होगा। पर इतनी बात अवश्य है कि इस समाज ने मुझ जैसे कितने ही लोगो की कामनाओ का गला घोट कर रख दिया है, कितने ही जीवन बरबाद कर डाले है सामाजिक व्यवस्था ने।—पर मै सम्भलने की चेष्टा में हूँ। मुझे आशा है कि इस नए मोड पर भी मै समाज की कुछ सेवा कर सकूँगा। उपाध्याय श्री अमृत मुनि जी की कृपा रही तो भविष्य में कितनी ही पुस्तकें आपको दे सकूँगा, ऐसी मुझे आशा है। एक मास एक पुस्तक के लिए बहुत ही कम समय है, इस बात को ध्यान में रखकर पाठक पढ़ेंगे तो मुझे आशा है कि यह पुस्तक उन्हें अवश्य ही पसंद आयेगी।

भटिण्डा
५-४-'५५

—बाबूसिंह चौहान

उस दिन मानवता रोती थी

और वह, उस ओर से किसी का करुण क्रन्दन उठा, सारे वातावरण को जिसने अपने आँचल मे, भीगे हुए आँचल मे समेट लिया, अधकार की यवनिका भी उससे प्रभावित हुए विना न रह सकी। चीत्कार भूमि से उठे और आकाश की ओर वढ चले। जिससे आकाश भी शोकविह्वल होगया। कौन जाने, गिरती शवनम आकाश के हृदय से होता हुआ अश्रुपात ही हो।

गहन रात्रि मे, अधकार में, ऐसे अधकार मे जिसमे हाथ को हाथ सुझाई न दे, दीपक की लौ भी अधकार के दानव के भय से कम्पित हो जाय, चीत्कार उठते रहे, उठते ही रहे। उस समय तक उठते रहे जब तक नदियो की लहरो का मौन भग नही हुआ, जब तक सागर स्वय न रो पडा, जब तक शाति का हिया अशाति से तडप न उठा। धरती का जिया उठ खडा हुआ। उससे न रहा गया तो चीत्कार करती आकृति के निकट जाकर पूछ ही तो लिया, "कौन हो तुम ? क्यो रोती हो?" उसने एकबार सिर उठाया। कुछ देर के लिए चीत्कार शात होगए।

"कौन हो तुम ? क्यो रोती हो ? क्या हुआ ?" पुन प्रश्न हुआ।

उसने अपने अस्त-व्यस्त वस्त्रो को सम्भाला, विखरे केशो को मुह पर से हटाने के लिए एक बार सिर को झटका। केश कमर पर छितरा गए। बोली, रुँधे हुए कण्ठ से, "मुझ से यह पूछते हो कि क्या हुआ ? यह पूछो कि क्या नही हुआ।"

"सताई हुई प्रतीत होती हो," धरती का हृदय बोला।

"सताई हुई ही नही, तिरस्कृत भी," वह बोली। "मुझ पर एक ने नही, सभी ने अन्याय किए है, मुझे एक ने नही, सभी ने ठुकराया है, और उन अन्यायो की मत पूछो मुझे रोने तक का साहस नही हुआ। "

"और आज ! आज कैसे माहरा हुआ ?"

"आज तक अन्यायियों को भय था कि कही कोई मेरे चीत्कार सुन कर मेरी सहायता को न दौड पडे । इसलिए मुझे उन्होंने कृत्रिम अट्टहास बखेरने पर विवश किया। मेरी सिसकियाँ न निकलने दी, मुझे रोने की आज्ञा न दी । पर आज उन्हे विश्वास होगया कि मै निस्सहाय हूं, मेरे चीत्कारो से कोई द्रवित नही होगा, मेरे चीत्कार किसी भी निद्रा-मग्न व्यक्ति को जागृत न कर सकेंगे । क्योकि सभी ने मेरे शत्रु की प्रेम-हाला पी पैर पसार दिये है, तो मुझे छोड दिया गया है, चीत्कार करते-करते मृत्य का ग्रास हो जाने के लिए ।" वह बोली ।

"क्या तुम पर किसी को दया न आई ?"

"दया ?...... दया की पूछते हो, दया तो मेरी सखी ठहरी । आज अहकार और क्रूरता ने दया का कोई स्थान नही छोडा है । आज मानव ने दानवता को अपनी प्रेयसी बनाया है ! आज अन्याय समाज के विधान का अग हो गया है, और शोषण धर्म का रूप धारण कर गया है ।"

उसकी बात सुनकर धरती का हृदय आश्चर्य चकित रह गया ।

"कहाँ की बात कह रही हो तुम ?"

"यहाँ की, इस लोक की, अपने देश की," उसने तनिक आवेश मे आकर कहा, "समाज के अग-अग को पाप ने डस लिया है, व्यभिचार इइसान की रग-रग मे समा गया है, मन अधकार की घोर कालिमा से भी अधिक काला पड गया है मानव का । सारा समाज विकृत-सा हो गया है, कण-कण मे रोग है, बुरी तरह मे सड रहा है प्रत्येक अग । स्वार्थ, भ्रष्टाचार, छल, कपट, हिसा, घृणा, स्पर्धा, परिग्रह, वासना, शोषण, दुर्व्यसन इत्यादि चहुँ ओर छा गए है । इस वातावरण मे मेरा दम घुटने लगा । मैने इसके विपरीत आवाज उठानी चाही, तो मेरा ही तिरस्कार कर दिया सभी ने ।" इतना कहकर वह फिर रो उठी ।

धरती का हृदय बोला, "तुम फिर रोने लगी ? रोने से कुछ नही बनेगा । रोना तो कायरता है ।......हाँ, हाँ, आगे बोलो ? तुम पर क्या बीती ?"

"क्या कहूँ ? मेरी भरे बाजारो आबरू लूटी गई । मुझे सरे

आम भेड़-बकरियों, गाजर-मूली की भाँति बेचा गया। मैंने मन्दिरों, देवालयों में शरण माँगी, पर उनके द्वार भी मेरे लिए बंद कर दिये गए। अन्दर घण्टे-घड़ियाल बजते रहे, आरती होती रही, पूजा चलती रही, पर मेरा प्रवेश निषिद्ध कर दिया गया।"

"योगी, तपस्वी, संतों के पास तुम क्यों नहीं गई ?" प्रश्न हुआ।

उत्तर मिला, "मैं उनके पास भी गई। पर उनकी कुटियों, उपाश्रयों में भी वही सदैव विद्यमान थी जिसके विरुद्ध बोलने पर मुझे समाज के अत्याचारों का शिकार होना पड़ा था। वहाँ ढोंग था, त्याग नहीं, वहाँ स्वार्थ था, सेवा नहीं।"

"नहीं! यह कैसे संभव है! क्या उनमें से किसी ने तुम्हारी नहीं सुनी ?" धरती के हृदय ने तनिक आवेश में कहा।

"सुनता कौन! आज तो कोई किसी की नहीं सुनता। सम्प्रदायों के झगड़ों, मतभेदों के झंझट और पाखण्ड से ही किसी को अवकाश मिले तो कोई किसी की सुने भी।" उसने कहा।

"पर तुम हो कौन ?"

"   " वह चुप रही।

"हाँ, तुम हो कौन ?"

"मैं ? दुखिया मानवता हूँ। दानवता की सताई, दुनिया की ठुकराई, मानवता!"

"मानवता और इतनी पीड़ित, इतनी तिरस्कृत! उफ!" धरती के हृदय पर भयंकर आघात हुआ, जिससे वह तिलमिला उठा। उसके मुँह से निकला, "पर भगवान् ने तो कहा था

जब जब होती है हानि धर्म की भारी।
तब तब लेते हैं जन्म महा अवतारी॥

और आज जब मानव-समाज पर दानवता का साम्राज्य है, मानवता चीत्कार कर रही है, ऐसे चीत्कार जिनको सुनकर सागर भी भयंकर आर्त्तनाद कर रहा है, सारा वायुमण्डल तड़प रहा है, उस समय कहाँ सो गया है वह, क्या हुई उसकी वह घोषणा ?"

धरती का हृदय उस आकृति को सम्बोधित करते हुए बोला, "घबराओ नहीं। तुम्हारा जीवन ही मेरा जीवन है। हमें कोई नहीं

मिटा सकता। दानवता के क्रूर षड्यत्र भी नही।"

मानवता ने सुबकियाँ लेते हुए कहा, "पर कौन है जो दानवता के क्रूर षड्यन्त्रो के विरुद्ध हमारी रक्षा कर सके?"

धरती का दिल कुछ सोच मे पड गया और कुछ देर गहन विचार मे डूबे रहने के उपरान्त बोला, "घबराओ नही। घबराओ नही। तुम्हारे हृदय की धडकने ही मेरी धडकने है। मुझे धडकते रहना है इसलिए तुम्हारा जीवन नितान्त आवश्यक है।"

और उसी क्षण एक आवाज ने इन दोनो को अपनी ओर आकर्षित कर लिया—"मानवता के चीत्कार धरती के दिल को झझोड सकते है, तो सारी प्रकृति को भी रक्त के आँसू रुला सकते है। प्रकृति ने दानवीयता का सहार करने के लिए ससार मे एक ऐसे व्यक्तित्व को जन्म देने का प्रबन्ध कर लिया है जो धरती का भार हल्का कर सके। जो मानवता की रक्षा मे समर्थ हो। एक नए कृष्ण, एक नए महावीर का जन्म सन्निकट है।"

आकाश मे तडित् तडप उठी और प्रकाश की एक लकीर के प्रादुर्भाव से प्रकृति विहँस उठी।

पर मानवता रो रही थी। दानवता अट्टहास कर रही थी। मानवता अभी तक रो रही थी।
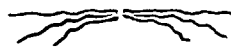
प्राची लाल हो उठी

घोर तिमिर की यवनिका वसुन्धरा पर निश्चेष्ट पडी थी। शिवपुरी कौलारस नामक नगरी अधकार की छाया मे निद्रामग्न थी। पर सनाढ्य-वश-भूषण, राजज्योतिषी प० जुगलकिशोर जी विचारो का ताना-वाना बुनने मे लीन थे। रात्रि हौले-हौले पग रखती सरक रही थी, पर पण्डित जी के नेत्रो मे न निद्रा का कोई प्रभाव था और न मुखमण्डल पर आलस्य अथवा थकान का ही कोई चिह्न। वे कभी अपनी शय्या पर लेट जाते थे और कभी अनायास ही उठ कर कमरे के प्रागण मे चहल-कदमी करने लगते। उनके हाव-भाव इस बात के साक्षी थे कि वे किसी गम्भीर समस्या मे उलझे हुए है। एक ऐसी गम्भीर समस्या मे जो उनके अन्तरतल को मथ रही है, जो उनके जीवन की कोई महत्वपूर्ण समस्या है, जिसे वे आज सुलझा कर ही दम लेना चाहते है।

ससार मे स्वाभिमान और मर्यादा के रक्षको के सामने कभी-कभी कितनी ही ऐसी समस्याएँ आन खडी होती है जो उनके जीवन की महत्वपूर्ण घटना को जन्म देती है, जो जीवन को कोई नया मोड प्रदान करती है, एक ऐसा मोड आता है उनके जीवन मे जो उनकी आत्म-कथा का महत्वपूर्ण अध्याय वन जाता है।

प० जुगलकिशोर जी के सामने भी आज एक ऐसी ही उलझी हुई समस्या मुह वाये खडी थी। वे एकतन्त्रवादी के अहकार के गर्भ से जन्म लेनेवाले भावी अन्यायो की क्रूरता को अपने नेत्रो के सामने कल्पना रूप मे देख रहे थे। वे जानते थे कि राजाओ के निरकुश शासन में राजा की इच्छा के प्रतिकूल कार्य करने का साहस करने वाले धर्मावतारो को कैसे राजकोप का भाजन होना पडता है, और फिर उन्होने तो राजा साहव की इच्छा ही नही वरन राजा की मान्यता का

अनादर किया था। उन्होने तो अपने सुलझे हुए करुणा एव सहिष्णुता पूर्ण धार्मिक तथ्यो को राजा साहब के कट्टरपथी अधविश्वास के सम्मुख नतमस्तक करने से स्पष्टतया इन्कार किया था।

प० जुगलकिशोर जी विश्व की अनेको भाषाओ की जननी सस्कृत भाषा के प्रकाण्ड पण्डित और ज्योतिष विद्या के विख्यात विद्वान् थे। ब्रह्मज्ञान से ओत-प्रोत विद्वानों की जन्मदात्री ब्राह्मण जाति के श्रेष्ठतम वश सनाढ्य वश मे जन्म लेकर वे अपनी विद्वत्ता एव पाडित्य से अपने वश एव अपनी जन्मभूमि, ग्वालियर रियासत के मनोहर कस्बो मे से एक, कौलारस नगरी को गौरवान्वित कर रहे थे। प० जुगलकिशोर जी विद्वत्ता के गुण से तो आलोकित थे ही, मानव जाति के दूसरे महान् गुण जैसे सन्तोष तथा नम्रता आदि आपकी रगो मे कूट-कूट कर भरे थे। वे पुरोहित-वृत्ति करते हुए भी दान स्वीकार नही करते थे और अपने इन्ही गुणो के कारण सारी रियासत मे उनकी कीर्ति का विस्तार होगया था, यहाँ तक कि महाराजा के गगनचुम्बी प्रासादो की पाषाणी प्राचीरो को भेदता हुआ भी जग-ख्याति की वीणा के तारो मे झकृत उनकी प्रशसा का राग जा पहुँचा और उनकी विद्वत्ता एव बुद्धिमत्ता से प्रभावित होकर महाराजा ग्वालियर ने उन्हे राज्य-ज्योतिषी के महान् पद से सम्मानित किया। पर वे चाँदी के चद खनकते सिक्को के बदले मे अपना मन, धर्म और अपनी मान्यता बेचनेवाले न थे। राज्य दरबार मे भी उनके स्वाभिमान की तूती बोलती थी और महाराजा साहब को उनका सदा आदर करना होता था। पर एक समय वह भी आया जब ग्वालियर रियासत के शासक वर्ग के, जो विद्वानो, वीरो एव साधु-सन्तो की सेवा के लिए सर्व-विख्यात था, विद्वानो की सेवा के व्रत की वास्तविकता का अनावरण हुआ।

प्रश्न था कि विधवा विवाह उचित है अथवा अनुचित। धर्म-भीरु जनता राज दरबार का निर्णय इस सम्बन्ध मे सुनने के लिए इच्छुक थी। चूँकि एकतन्त्रवादी शासन व्यवस्था मे राजा की वाणी ही, कानून, न्याय तथा ब्रह्मवाक्य की भाँति लागू की जाती है, इसलिए इस सम्बन्ध मे महाराजा साहब का निर्णय पूरी रियासत की विधवाओ

के भाग्य का निर्णय माना जाने वाला था। रियासत के सारे हिन्दू समाज की रीति-नीति पर उसका प्रभाव होने वाला था। इसलिए राज्यज्योतिषी प० जुगलकिशोर से उस सम्बन्ध मे मत माँगा गया। ब्रह्मज्ञानी पं० जुगलकिशोर, जिन्हे धर्म और मानवता के प्रति अपने प्राणो से भी अधिक मोह था, हिन्दू समाज की अन्यायपूर्ण कुरीति से तग आई विधवाओ के चीत्कारो की ओर से अपने कान बन्द नही कर सकते थे, बोले, "यदि कोई विधवा अपने सतीत्व की सुरक्षा करते हुए सात्विक एव श्रेष्ठ जीवन व्यतीत करने का साहस कर सकती है तो अहोभाग्य, उसे ससार की कोई शक्ति नही झुका सकती, पर विधवा-धर्म के नाम पर भ्रूण-हत्या और पापाचार को चलने नही दिया जा सकता। ऐसी विधवाएं जो यौन इच्छाओ पर विजय नही पा सकती, पुर्नविवाह के योग्य है और उनके विवाह किये ही जाने चाहिएँ।"

अन्ध-विश्वास के शिकार और पोगापथी धर्म के ठेकेदार अन्य पण्डितजन, जो प० जुगलकिशोर जी की ख्याति से ईर्ष्या भी करते थे और जिनके नेत्रो पर क्रूरतापूर्ण नीति की पट्टी बँधी थी, महाराज साहब को विधवा-विवाह के विपक्ष मे मोड देने मे सफल होगए और मदाध महाराजा ने प० जुगलकिशोर जी को अपना निर्णय परिवर्तित करने को कहा।

स्वभाव से क्षत्रिय, मन से ब्राह्मण और कर्म से धर्म के पथ-प्रदर्शक प० जुगलकिशोर जी ने महाराजा साहब के आदेश को ठुकरा दिया और अपने विश्वास तथा अपनी मर्यादा की रक्षार्थ उन्होने राज्य-ज्योतिषी के उस पद को जिसे प्राप्त करने के लिए कितने नामधारी पण्डित जीभ निकाले फिरते थे, एक क्षण मे अपने पदत्राण की नोक से दूर फेक दिया।

महाराजा साहब के अहकार को ठेस लगी थी। उनके विचार से यह उनका तथा उनके वश का अपमान था। उस सिंधिया राजवश का अपमान समझा गया यह जिसके शौर्य का राग इतिहास का एक-एक पन्ना आलापता है। बुद्धि के द्वार अहकार और अध-विश्वास की शिलाओ से बद कर देने वाले लोग वास्तव मे हठ को ही आत्म-सम्मान की कसौटी बना लिया करते है, पर सच्चे अर्थों मे मानवता के पथ-

प्रदर्शक शासक एव शोषको की तनी हुई भृकुटियों से अपने पथ से विचलित नही हुआ करते । प० जुगलकिशोर जी ने लोभ, मोह और भय के सामने घुटने टेकने से इन्कार कर दिया । महाराजा तडप कर रह गए, जैसे चोट खाया हुआ नाग प्रतिशोध के लिए तडपता है ।

पडित जी नाग की विषैली फुकारो से परिचित थे, इसलिए आज जब कौलारस निवासी निद्रा का आलिगन कर रहे है पडित जी अपने जीवन के भावी कार्यक्रम पर विचार कर रहे है । उन्होंने एक बार मुट्ठी बाँधकर निर्णय किया, "सत्य और न्याय कभी अहकार तथा अन्याय के सम्मुख नतमस्तक नही होगा । पाण्डित्य व विद्वत्ता चाँदी के निर्जीव टुकडो के बदले नही बेची जायेगी । मै अपने प्राणो की बलि दे सकता हूँ पर शाश्वत सत्य की नही । मानवता की नही ।"

कमरे मे घूमते-घूमते वे रुके और उन्होने एक बार अपने निवास-भवन की प्राचीरो और छत पर स्नेहपूर्ण दृष्टि डाली । उन दीवारो मे उनके परिश्रम, उनके सात्विक जीवन की अमिट छाप लगी थी । उनकी एक-एक ईंट पण्डित जी से परिचित थी और जैसे वे प्राचीरे भी उनके जीवन के साथ कोई जीवित सम्बन्ध रखती हो । पण्डित जी ने उन प्राचीरो को आज व्याकुल-सा पाया और वे करुणापूर्ण नेत्रो से चारो ओर दृष्टि डालते हुए बोले, "आश्चर्य है ! पाषाण के इन टुकडो तक को तो मानव से प्रेम है, पर यह इन्सान, जो अपने को इन्सान कहता है, एक ऐसा इन्सान जो अपने को भगवान् का एक प्रतिनिधि बताकर दूसरो पर राज करता है, पाषाण के इन टुकडो के बराबर भी इन्सान से स्नेह नही कर पाता । ओह ! मेरी जानी-पहचानी ये प्राचीरे मुझ से छूट जायेगी ।"

"छूट जायेगी तो छूट जाये, ससार छूट जाये, पर मै डिगूँगा नही—पर मै डिगूगा नही," प० जुगलकिशोर जी दृढ सकल्प के सुर मे बडबडाये ।

पास मे सोई हुई उनकी धर्मपत्नी सन्नारी सुमित्रा देवी को जैसे पडित जी के ओठो की फुसफुसाहट ने आन्दोलित कर दिया हो, वे उठ बैठी । पडित जी के मुखमण्डल पर छाई दृढता और उनके उत्साह एवं स्वाभिमान से उभरे वक्षस्थल को देखकर वे बोली, "प्राणनाथ !

इतनी रात्रि को, और आप इस दशा में। वह कौन-सी ऐसी जटिल समस्या है जिसको सुलझाने में आप इतने व्याकुल हैं? क्या..."

पडित जी बीच ही में बोल पड़े, "प्रिये! हमे यह नगरी, यह रियासत छोडनी होगी। जिस राज्य मे शासक अपनी इच्छा और अपनी पसद को ही धर्म मानता हो, जो अपने अज्ञान को विद्वानो के ज्ञान पर लादना चाहे, उस राज्य मे हम जैसे बुद्धिवादियो को स्वर्ण भी मिट्टी के समान है। हम अब यहाँ नही रहेगे।"

सुमित्रा देवी पडित जी की बात सुनकर आश्चर्यचकित रह गईं।

"क्या कहा? प्राणेश्वर, क्या हम शिवपुरी कौलारस को छोड देगे? उस मातृभूमि को छोड देगे जिसके कण-कण मे आपके पूर्वजो की जीवन-गाथाएँ विलीन है? जिसके आँचल मे आपने नेत्र खोले और आपके पुण्य प्रताप की कितनी ही स्मृतियाँ आज भी नृत्य कर रही है? स्वामी! कौलारस की पवित्र भूमि मे आपके पूर्वजो से लेकर हमारे परिवार के चारो नवोदित पुष्पो के नाल गडे है, जिससे हमने जीवनरस पीकर महान् आनन्द प्राप्त किया है और..."

सुमित्रा जी की बात को बीच मे ही काटते हुए पण्डित जी ने कहा, "सुमित्रा! कौलारस के कण-कण मे व्याप्त वात्सल्य के प्रति मुझे भी अनुराग है। मै भी अपनी जन्मभूमि के उस आँचल मे ही अपने जीवन का अन्तिम अध्याय समाप्त करना चाहता हूँ जिसमे मेरे जीवन का प्रथम अकुर प्रस्फुटित हुआ था। मातृभूमि का प्रेम यह निर्णय करने मे मेरे भी आडे आता रहा है। कौलारस के चप्पे-चप्पे से मेरे शैशव काल से लेकर इस अवस्था की कितनी ही अति सुन्दर तथा अतिमोहक क्रीडाओ और परिवर्तनो की गाथाएँ सम्बन्धित है। परन्तु..."

"परन्तु—क्या?" सुमित्रा ने प्रश्न किया।

"परन्तु कभी-कभी मनुष्य को अपने प्रिय से प्रिय स्थानो को ही नही वरन् प्रियतम जनो से भी सम्बन्ध विच्छेद करना पडता है। और कौलारस जैसी रियासत ग्वालियर की सुरम्य वाटिका को तो एक दिन अन्तिम नमस्कार करके हमे चिरनिद्रा का आलिगन करना ही होगा। यदि आज ही हम उसके मोह-जाल के फदो को काट कर चले जायँ तो कौन बडी बात है!"—पण्डित जी ने कहा।

"पर मातृभूमि को इस प्रकार तो नही छोडा जाता। हमारे परिवार मे भगवान् की कृपा का साम्राज्य है, हमे तो यहाँ कोई कष्ट नही। फिर अनायास ही इस निर्णय का कारण ?" सुमित्रा देवी के नेत्रो मे प्रश्नवाचक चिह्न नाच उठे।

"कारण! तुम कारण पूछती हो!" पण्डित जी के अधरो पर एक आश्चर्य-मिश्रित मुस्कान फूट पडी। "घर मे सरस्वती के रहते भगवान् की अनुकम्पा से हम वचित रहे, यह तो असम्भव है। पर सती सावित्री की प्रतिमूर्ति सुमित्रा क्या निरकुश शासको की हृदय को कम्पित कर देनेवाली प्रतिशोध की घटनाओ से अरिरचित है ? क्या ऐसी स्थिति मे, जब महाराजा हमसे प्रतिशोध लेने के लिए चोट खाये हुए विपधर की भाँति फुकार रहा है, हमारा उसके राज्य मे रहना अपने को विपत्तियो मे फँसाने का दुस्साहस नही है ?"

"ओह! तो यह है आपके कौलारस को छोडकर जाने का रहस्य!" सुमित्रा देवी ने कटाक्ष करते हुए कहा। "राजकोप से इतना भय! कोई इसे कायरता कहे तो उसे त्रुटि कहा जायेगा अथवा भ्रान्ति ?"

"देवि! देखता हूँ, सनाढ्य वश मे जन्म लेकर भी तुम एक क्षत्राणी वीरागना का हृदय रखती हो।" पण्डित जी ने उन्हे कन-खियो से देखा।

"पर प्राणेश! मानव-सुलभ साहस का प्रदर्शन कोई क्षत्रियो की ही तो बपौती नही।" सुमित्रा जी ने अपने पति को दृढता से उत्तर देते हुए कहा, "आप अपने धर्म पर अटल अविचलित रहने के लिए राज्य-ज्योतिषी के पद तक को ठुकरा सकते है तो क्या महाराजा के प्रतिशोध का सामना करने का साहस नही कर सकते ? यदि इतनी ही दुर्बलता दिखानी थी तो फिर महाराजा के आदेश के सम्मुख घुटने टेकने मे ही क्यो लज्जा आई ?"

"देवि! तुम्हारे वाग्-बाण मुझे महाराजा के कोप के सामने डटे रहने के लिए प्रेरित कर रहे है। पर "

"पर क्या ?" देवि सुमित्रा ने बीच मे ही पूछा।

"पर मैने धर्म की सही व्याख्या करके, हिन्दू जाति की सहस्रो

विधवा ललनाओं की भावनाओं का प्रतिनिधित्व करके महाराजा के विरुद्ध रणभेरी तो नहीं बजाई।" प० जुगलकिशोर जी के मुखमण्डल पर दृढ़ विश्वास के चिह्न उभर आये। "मुझसे एक प्रश्न पूछा गया, धर्मानुकूल मैंने उसका उत्तर दिया। यदि मेरे उस उत्तर को कोई अपने मान-अपमान का प्रश्न बना ले तो क्या ऐसे सिर-फिरे दम्भी मनचाहियों से टक्कर लेते रहना भी मेरा धर्म बन गया है?"

पण्डित जी के उत्तर से सुमित्रा देवी निरुत्तर सी होगई, जैसे उनकी शंका का समाधान होगया हो। तनिक देर के लिए विचार-सिंधु में डूब गई और पुनः उनके अधर कम्पित हुए, "तो क्या हमें कोलारस छोड़ना ही होगा?"

"जगत्पिता, सर्वशक्तिमान् परमात्मा की उपासना में ही अब मैं अपने जीवन का अन्तिम परिच्छेद समाप्त करना चाहता हूँ। और निर्विघ्न साधना के लिए कोलारस से विदा लेनी ही होगी।" पंडित जुगलकिशोर जी ने उत्तर दिया।

"और हमारे ये चारों पुत्र?" देवि सुमित्रा ने पूछा। "क्या इन्हें भी—"

"नहीं, नहीं। हमारी सन्तति के ये चार पुष्प कोलारस की मनोरम वाटिका में ही अपनी छटा दिखाते रहें, जन्मभूमि की यही तो हमारी महान् सेवा होगी। क्यों सरस्वती! क्या विचार है?" पंडितजी ने जिज्ञासापूर्ण नेत्रों से सुमित्रा के वदन को देखा। मानो अपने विचारों का प्रभाव उनके हिये के दर्पण में देखना चाहते हों।

वे चिन्तित-सी दिखाई दीं तो पंडित जी भी कुछ सोच में पड़ गए। मन में विचार-तरंग उठी, "जननी! तू धन्य है। ममत्व और सन्तति-प्रेम का इतना अटूट बंधन!"

रात्रि का जीवन क्षण-क्षण करके कम होता जा रहा था और प्राची में दूर क्षितिज के उस ओर नव आलोक अंधकार से युद्धरत था। अंधकार पराजित होता जा रहा था और हौले-हौले पीछे पग रख रहा था। प्रकाश की निरन्तर बढ़ती सेनाओं के स्वागत में पक्षियों ने उल्लासपूर्ण शैली में स्वागत गान आलापने आरम्भ कर दिये। प० जुगलकिशोर जी और सुमित्रा देवी अपना भावी कार्यक्रम निश्चित

करने मे सफल होगए थे । उनके मनोभावो पर आलोक की विजय और शका-तिमिर की पराजय हुई थी। प्राची लाल हो उठी, जैसे प० जुगलकिशोर जी के कौलारस से विदा लेने के निर्णय पर रक्तिम अश्रु बहा रही हो ।

दूसरा अध्याय
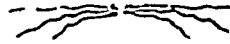
आगरा के अंक में

उत्तरप्रदेश के मानचित्र पर आगरा अपनी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि से दीप्तिमान् होता हुआ अगूठी के नग की भाँति दमक रहा है। इस नगर ने भारत के उत्थान-पतन के कितने ही दृश्य स्वय अपने नयनो से देखे है और स्वय इस नगर के वक्ष पर भारतीय सस्कृति एव सभ्यता के कितने ही पदचिह्न आजतक अकित है। गए युगो ने अपनी लौह लेखनी से आगरे के हृदय-पटल पर परिवर्तनो की कितनी ही गाथाएँ खोद डाली है। पुण्य सावित्री के तट पर सरस्वती और लक्ष्मी के ख्याति-प्राप्त व उन्नतिशील प्रसाधनो को अपने अक मे सम्भाले यह नगरी अपनी गोद मे प्रेम के जीते-जागते स्मृति-भवन उस ताजमहल को दुलार रही है जिसकी बुर्जियाँ अल्हड यौवन के गर्वित कुचो की भाँति गगन को चुनौती देती हुई आज भी प्रेम और आसक्ति का सन्देश सारे जगत् को दे रही है। हृदय के रक्तकोष की भाँति आगरा मे स्थित है लाल किला, जिसकी प्रत्येक ईंट बीते युग की कहानी दोहरा रही है।

एक दिन इसी नगरी के हिये मे प० जुगलकिशोर जी के कण्ठ से निकले शब्दो ने वातावरण को तरगित कर दिया--"तुम समझी सुमित्रा! कौलारस को छोडकर आगरा के अक मे हमने क्यो वास किया है?"

"यमुना माँ के तट पर अखड आराधना के लिए। इसीलिए ना?--" देवि सुमित्रा ने तनिक मुस्कान के साथ उत्तर दिया, जैसे वह पडित जी के हिये की बात जान लेने पर पुलकित हो उठी हो, गर्व से।

"बस इतना ही नही", प० जुगलकिशोर बोले, "मेरा विश्वास है कि सावित्री के तट पर सुमित्रा पृथ्वी माँ को एक रत्न समर्पित करेगी। मुझे भय था कि नए उगनेवाले सूर्य की किरणो पर कही कालिमामय

नरेश की पापात्मा की घोर कलकी तिमिरपूर्ण छाया न पड जाय। क्योकि नव आलोक लेकर उगने वाले भानुदेव को अधकार का वक्ष चीरने, एक नया पथ देने के लिए मानव शरीर धारण करना है। विषाक्त वातावरण से बचाने का ही तो उद्देश्य लेकर, सुमित्रा, मै यहाँ पहुँचा हूँ।"

"आपका भानु पूर्व से उगेगा या पश्चिम से, तनिक मै भी तो सुनूँ।" सुमित्रा ने कटाक्ष करते हुए कहा।

"देखता हूँ, तुम्हारा मन भी ताजमहल की पाषाण शिलाओ की सगमरमर की भाँति उज्ज्वल है।" जुगलकिशोर जी कहने लगे। "सुमित्रा ! बनने का प्रयत्न न करो। यह तो तुम्हे भी ज्ञात है कि नव सूर्य न पूरब से उदित होता है, न पश्चिम से। दिग्दिगत मे इतनी क्षमता कहाँ जो वह मानव हृदय के अधकार को मार भगानेवाले सूर्य को जन्म दे सके !"

"तो फिर ?"

"हाँ, सुमित्रा की कोख मे अवश्य ही वह—" प० जुगलकिशोर की बात से देवी सुमित्रा का मुखमण्डल उषा की भाँति लाल हो ..गा। नेत्रो मे लज्जा उभर आई। बात का रुख बदलने के लिए वे बोली—

"यहाँ पहुँचे इतने दिन हो गए पर इस बीच कौलारस का कोई समाचार नही मिला। आपने भी तो कोई चिट्ठी-पत्री नही लिखी।"

"हम अपनी सन्तान को अपनी सारी सम्पत्ति सौप कर चले आये है और तुम्हारे चारो पुत्रो मे इतना तो विवेक होना ही चाहिए कि वे उससे अपने जीवन को समृद्धिशाली बना ले। फिर हमे चिन्ता किस बात की !" पडित जी ने उत्तर दिया।

और देवी सुमित्रा पडित जी की बात सुनकर सुई-धागा सभाल कोई छोटा-सा वस्त्र तैयार करने के लिए दूसरी ओर चली गई। पडित जी हाथ का वस्त्र देखकर हर्षातिरेक से प्रभुवदना मे गुनगुनाने लगे।

यमुना तट पर उन्होने एक सुन्दर मनोरम वाटिका को अपनी सम्पत्ति बना लिया था और उसी वाटिका के एक कोने मे शक्तिस्वरूप हनूमान् जी का मन्दिर और दूसरे कोने मे एक निवास-गृह तथा एक

कुआँ वनवा लिया। प्रात साय मन्दिर म घण्टे-घडियाल की ध्वनि, कीर्तन और आरती के मुक्तकण्ठ से निकले स्वरो को लेकर सारे वातावरण मे गूँज उठती। प० जुगलकिशोर जी शेप समय अपनी वाटिका का नववधू-सा शृगार करने मे लगे रहते। आजकल उनका अग-अग न जाने किस हर्ष से प्रफुल्लित रहता था। वाटिका मे एक ओर नई-नई कलियो की पखुडियाँ चटखती और पुष्पो की सुगन्ध पथ पर जाते पथिको के हृदय को अपनी ओर आकर्पित करती थी और दूसरी ओर वाटिका के स्वामी का सद्व्यवहार, अतिथि-सत्कार और पुलकित वदन नगर के निवासियो के लिए एक नव आकर्पण तथा चर्चा का विपय वन गया था।

अपुत्रा के पुत्र

एक दिन जव सूर्यदेव अपने रथ को हाँकते हुए पश्चिम के क्षितिज पर लोप होगए, और पण्डित जुगलकिशोर जी हनूमान् जी के मन्दिर मे पूजन मे आत्मविभोर हो रहे थे, एक स्त्री ने मदिर मे प्रवेश किया। वह नेत्र वन्द करके भगवान् की आराधना में लीन हो गई और कुछ क्षण उपरान्त फूट-फूट कर रोने लगी। पण्डित जी तो एकाग्र-चित्त होकर प्रभु-आराधना मे लीन थे। उक्त स्त्री के रुदन का उन्हे पहले तो कुछ पता ही न चला पर ज्योही उनका ध्यान भग हुआ, वे उक्त नारी के आर्तनाद की ओर आकर्षित हुए। वे बोले, "माँ, तुम्हे क्या कष्ट है?"

स्त्री वोली, "हे ब्राह्मण! मुझे पुत्ररत्न चाहिए क्योकि उसके विना मेरा जीवन असफल, अशान्त और दरिद्रतापूर्ण है, मै इसके लिए आर्तनाद, प्रार्थना काफी समय से लेकर रही हूँ। पर भगवान् ने मेरी एक भी नही सुनी। आज मै पवनसुत हनूमान् के हृदय को अपने आर्तनाद से द्रवित कर मनोरथ पूर्ण कराना चाहती हूँ।"

पडित जी ने तुरन्त उत्तर दिया—"नेत्रो मे करुणा, हृदय मे ममत्व और वात्सल्य-प्रेम चाहिए, सन्तान की कोई कमी नही।"

"पर मै यह सव कुछ रखते हुए भी निपूती क्यो हूँ ब्राह्मण! यही तो मेरे दुःख का विशेप कारण है।" स्त्री ने अवरुद्ध कण्ठ से कहा।

पण्डित जी ने स्त्री के चरणों पर सिर रख दिया। वोले—"माँ,

भारत की कोटिश सन्ताने तुम्हारी ही तो सन्तति है। उठो माँ, अपने कोटिश पुत्रो मे से एक को अपना वात्सल्य अमृत प्रदान करो।"

उक्त स्त्री का हृदय द्रवित होगया। उसने पवनसुत हनूमान् जी की मूर्ति के चरणो को अश्रु-स्नान कराते हुए कहा, "धन्य, धन्य राम-भक्त शक्तिमान् हनूमान्! तुम्हारे इस पुत्रदान के लिए तुम्हारा जितना भी गुणगान करूँ थोडा ही है। प्रभो! मेरी इस ज्ञानवान् सन्तान को शान्ति और सुखामृत प्रदान करो।"

उक्त स्त्री का मन प्रफुल्लित होगया और वह पण्डित जी के सामने करबद्ध खडी होकर उनके ज्ञान की भूरि-भूरि प्रशसा करते हुए बोली—"पडित जी! आज आपने मेरे नेत्र खोल दिए। ज्ञानचक्षु खोलने के इस अहसान को मे जीवन भर नही भुला सकती। इतनी असख्य सन्तान को ही मै अपना मातृप्रेम प्रदान करूँ तो मुझ से बडी सौभाग्यशालिनी माँ कौन होगी!"

वह एक विधवा नारी थी, जो पुत्र चाहती थी, पर हिन्दू-धर्म द्वारा उसके चारो ओर खीची ब्रह्मरेखा पार करते हुए लोक-लज्जा से भयभीत उसके मन का क्लेश अश्रुधारा के वेग मे बह गया। वह पण्डित जी तथा हनूमान् जी की प्रशसा करती हुई अपने घर की ओर वापिस चल पडी।

पडित जी सोचने लगे, "हिन्दू नारी के भाग्य को क्रूर नियमो मे जकड कर रख दिया गया है। उनकी कामनाओ और भावनाओ की गर्दन सभ्यता और सस्कृति के कँटीले तारो से बाँध दी गई है। उनका सुहाग, उनका जीवन और यौवन एक पुरुष के जीवन के कच्चे धागे मे पिरो दिया गया है।" उनके विचारो के झझावात से उनका मन क्षत-विक्षत होगया। वे व्याकुल होकर भगवान को सम्बोधित कर बोले—"मानवता की जननी नारी को अश्रु और व्याकुलता के सागर मे कबतक डुबाया जायेगा? उसके जीवन का अधिकार धर्म के ठेके-दारो, दस्युओ द्वारा कबतक लूटा जाता रहेगा? शिव जी का तीसरा नेत्र कब खुलेगा?"

सत्य स्वप्न मे

पण्डित जी समाज के अत्याचारो की भी भीषणता पर विचार

करते-करते शय्या पर निद्रा के अंक में शान्त हो गए। रात्रि की निस्तब्धता को योगदान देते हुए जब पण्डित जी का वाह्य रूप शान्त और बेसुध था, उनका मन तब भी कार्यरत था।

एक विशाल क्षेत्र में जीवन-पथ पर अग्रसर होते जनसमूह के कण्ठ में ऐश्वर्य और समृद्धि के राग निकल रहे थे। नर-नारी मग्न होकर गाते और नृत्य करते हुए बढ़ रहे थे। पथ पर स्थान-स्थान पर पथिकों के लिए मीलों के पत्थरों के साथ-ही-साथ पथ-प्रदर्शनार्थ कुछ पट लगे थे जिनपर कुछ संकेत अंकित थे। उक्त संकेत मानव जाति के हित में कुछ विशेष नियम आदि प्रगट करते थे। कारवाँ अपने ज्ञान-दीपक के प्रकाश में उन पट-संकेतों को पढ़ कर गाता हुआ कन्दराओं और खाइयों में बचता हुआ आगे बढ़ता जाता था। कारवाँ के संरक्षक ने आगे बढ़कर एक बार एक संकेत-पट का अध्ययन किया और उसने ऊँचे स्वर में कहा

जीवन-पथ पर बढ़ने वालो, सावधान! बच करके आना।
एक ओर है मोह-लोभ की गहरी खाई गिर मत जाना॥

सब मिलकर गाते हैं।

सावधान! बच करके आना

पथप्रदर्शक—

दूजी ओर हैं क्रोध मद के विषधर कंटक उलझ न जाना।
सावधान! बच करके आना

कारवाँ खाइयों और विषैली कंटकपूर्ण झाड़ियों में बचता हुआ मानवता की मंजिल की ओर अग्रसर होता रहा। आकाश से ज्ञान-चन्द्रमा पथ प्रशस्त कर रहा था और भूमि पर आत्मा की दीपशिखा उनके प्रशस्त मार्ग के रोड़ों को उजागर कर रही थी, कि कारवाँ के बीच में कुछ लोग हाथों में धर्म-ध्वजा लिये आगे बढ़े। उन्होंने पथिकों के चारों ओर कड़े नियमों, उपनियमों और अनोखे आदर्शों की शृंखलाएँ डाल दी और कारवाँ अभी आगे नहीं बढ़ा था कि चन्द्रमा को अंधविश्वास की घोर काली घटाओं ने घेर लिया और दीपशिखा को आडम्बरों के आवरण ने ढाँप लिया।

देखते-ही-देखते कारवाँ के मध्य से चीत्कार और

आर्त्तनाद उठे। एक कोलाहल मच गया। मधुर राग के स्थान पर रुदन की सिसकियाँ आकाश को बीधने लगी। चारो ओर शोक के बादल उमड-घुमड कर छा गये। धुआँ और लपटे मतैक्य की डोर और सकेत-पटो को झुलसाने लगी। कारवाँ के सदस्य खाइयो मे गिरने लगे। कुछ काँटो मे फँसकर कराहने लगे। कोहराम मच गया। सारा वातावरण शोकाकुल होकर कम्पित हो गया। अधकार के गर्भ से आर्त्तनाद और चीत्कार जन्म लेते रहे। कारवाँ तडपता रहा और इस हृदयविदारक दृश्य पर यौवन आच्छादित हो गया। यौवन, भरपूर यौवन, सुनने वालो के कान पक गए। आकाश-पाताल डगमग-डगमग हिल रहे थे। ब्रह्मा का सिहासन भी डोला और फिर आकाश की ओर से एक प्रकाश-पुञ्ज आता हुआ दिखाई दिया। सारा क्षेत्र आलोकित हो उठा। चन्द्रमा अध-विश्वास की घटाओ से मुक्त होने लगा। प्रकाश-पुञ्ज एक स्त्री के आँचल मे आकर गिरा और उक्त नारी ने अपने आँचल को सारे कारवाँ के सम्मुख पसार दिया। देखते-ही-देखते सारे कारवाँ का मार्ग प्रशस्त हो गया। शृखला टूट गई। मानव अज्ञान के मायाजाल से मुक्त हुआ। चीत्कार व आर्त्तनाद लोप हो गए और उनके स्थान पर फिर वही राग, वही हर्ष के राग, उठने लगे। सारा वातावरण हर्षा-तिरेक मे खिलखिलाने लगा।

पण्डित जी ने उस नारी के रूप को पहचानने का प्रयत्न किया जो प्रकाश-पुञ्ज अपने आँचल मे सम्भाले थी। और जब उन्होने उसके दीप्तिमान् मुख को पहचाना तो वे प्रफुल्लित होकर आलिगन के लिए दौडे, "सुमित्रा! तुम! सुमित्रा तुम!" की ध्वनि उनके कण्ठ से निकली।

पास मे ही निद्रामग्न सुमित्रा जी को इस ध्वनि ने जागृत किया।

"सुमित्रा! तुम धन्य हो, सुमित्रा--सुमित्रा तुम--"

पण्डित जी को निद्रावस्था मे इस प्रकार बडबडाते सुनकर वे आश्चर्यचकित रह गईं। झकझोर कर जगाया, तो पण्डित जी आँखे फाड-फाडकर अपने चारो ओर देखने लगे। सुमित्रा जी ने पूछा, "क्या बात है, आज इस प्रकार बडबडा क्यो रहे है आप?" उन्होने

अपनी पुण्य साक्षात् सरस्वती भार्या को आलिगन-पाश मे आवद्ध कर अपने प्रेम की मुहर उसके कपोल पर अकित कर दी। "सुमित्रे! तुम धन्य हो। तुम जगत् के लिए एक प्रकाशपुञ्ज दोगी, जो मानव-समाज का मार्ग प्रशस्त कर देगा, जो मेरा और तुम्हारा नाम इतिहास के पन्नो पर स्वर्ण अक्षरो मे अकित करा देगा।"

"यह क्या कह रहे है आप ? क्या अभी तक स्वप्नलोक मे ही विचर रहे है," सुमित्रा जी उन्हे झकझोरती हुई बोली।

"नही, नही, स्वप्न ही के साकार होने का समय आ गया है सुमित्रा! प्रभुभजन मे अपने को भुला दो। तुम विश्व-माँ बननेवाली हो।" पडित जी हर्ष के वेग में उच्च स्वर मे बोले। सुमित्रा जी ने उनके मुख पर हाथ धर दिया—"निस्तब्धता को भग करती हुई इतनी उच्च ध्वनि तो सारे नगर मे विज्ञापित कर देगी। कुछ लज्जा भी करोगे!"

पडित जी सारी रात्रि पूजा मे व्यस्त रहे। उनके नेत्र निद्रा के साम्राज्य से मुक्त हो चुके थे।

जन्म लियो घनश्याम

सूर्य ने ज्यो ही पलके खोली, पडित जुगलकिशोर जी पूजा-पाठ से निवृत्त होकर पुष्पवाटिका से सुन्दर, मोहक और नयनाभिराम पुष्पो का चयन करने लगे। उनके शरीर मे न जाने कहाँ से नवस्फूर्ति ने जन्म लिया और गद्‌गद हृदय लिये वे अपने निवासस्थान, अपनी वाटिका और उसके प्रागण, मन्दिर और उसकी प्राचीरो, द्वार और वाटिका मे आकाश-भागीरथी की भाँति इस छोर से उस छोर तक जाने वाली पगडण्डियो को पुष्पो तथा झण्डियो से सज्जित करने मे दिलो-जान से लग गये। नगर से कई अन्य जनो को आमन्त्रित कर उन्होने अपनी इस स्वर्ग वाटिका का शृ गार करने मे जुटा लिया। पर पण्डित जी का कभी-कभी अपने सहयोगियो की तनिक सी भूल पर भी रोप फूट पडता।

"लताएँ नही, यहाँ पुष्पमालाएँ लगाओ,—ओहो तुमने तो सारी सज्जा ही नष्ट कर दी—उफ—अरे भाई—यहाँ भगवान् कृष्ण की मूर्ति ही खिलेगी, ऐसे नही ऐसे—और यह क्या—यहाँ तिनको का छितराव कैसा—पुष्प-पँखुडियाँ चाहिएँ यहाँ तो—" पण्डितजी के

कण्ठ से सारे दिन ऐसे ही वाक्य सुनाई देते रहे। और अपने सुरम्य स्थान की साज-सज्जा देखकर वे मोहित होते जाते। उनके रग हर्ष के पखो पर सवार हुए उडे-से जाते थे। सारे दिन भूख और प्यास भी उनके पुलकित शरीर के पास न फटकी। उनके सहयोगी थक गए। पसीने के मोती उनके वदन पर निखर आये पर पण्डित जी को न थकान और न शिथिलता का ही आभास।

सुगधियो के इस भण्डार के मध्य सुन्दर वेल-बूटो से घिरा, श्रीकृष्ण के चित्रो से सजा हुआ, बाजार मे प्राप्य सुन्दरतम वस्त्रो के परदो से वनाया गया, कन्द-मूल की शोभा से जगमग-जगमग करता एक यज्ञ-स्थल बनाया गया। आज श्रीकृष्ण का जन्मदिवस था न! पण्डित जी ने सारे दिन मे लग-लिपट कर स्वर्ग की साज-सज्जा और इन्द्र के अखाडे की छटा को चुनौती देनेवाली सजावट को अपनी इस छोटी-सी अलकापुरी मे उतार कर रख दिया। सुमित्रा जी आज प्रात से ही कुछ अस्वस्थता अनुभव कर रही थी।

पडित जी की जिह्वा पर भगवद्-भजन थे और वे उन्ही मे मस्त होकर गुनगुनाए जाते थे——

वायुर्यमोऽग्निर्वरुणः शशाङ्कः
प्रजापतिस्त्वं प्रपितामहश्च।
नमो नमस्तेऽस्तु सहस्रकृत्वः
पुनश्च भूयोऽपि नमो नमस्ते॥

पण्डित जी की गुनगुनाहट पर शीतल समीरण ताल दे रहा था और उनके निवास-भवन के चरणो मे बहती पुण्यसलिला यमुना की लहरो का स्वर वीणा के तारो के समान झकृत होकर पण्डित जी की गुनगुनाहट के साथ योगदान कर मनोरम भक्तिरस-सगीत का रग भर रहा था। सारे वायुमडल का हृदय-मयूर आज आत्मविभोर हो कर नृत्य कर उठा। पण्डित जी फूले नही समाते थे और सुमित्रा देवी के नेत्रो मे एक अभूतपूर्व हर्ष हिलोरे ले रहा था। वे पण्डित जी के अन्य कार्यों मे तो सहयोग न दे सकी पर जैसे उन्हे कोई उनके हिये मे बैठा खुशियो मे झूम जाने के लिए उकसा रहा हो, उन्होने अपने भवन के अन्तरतल को पुष्पलताओ, चित्रो और रग-बिरगे परिधानो से

सजा दिया। नवोढा की भाँति सोलहो शृंगारो से युक्त इस भवन में आज चहुँ ओर जीवन मुस्करा रहा था, एक नया जीवन।

भाद्रपद कृष्णाष्टमी के इस शुभ पर्व पर पण्डित जुगलकिशोर जी ने यज्ञस्थल पर मन्त्रो का उच्चारण आरम्भ किया। शुद्ध घृत और सुगंधित सामग्री की आहुतियाँ सारे वायुमण्डल को पवित्रता के सागर में डुबोने लगी। यमुना की लहरे हर्षातिरेक से ऊपर उठ-उठकर उक्त यज्ञ के दृश्य को एक-टक निहारने का प्रयत्न करती। कभी-कभी ऐसा लगता मानो कलकल करता पवित्र जल मन्त्रोच्चारण कर रहा हो।

पण्डित जी की स्वर-लहरी चारो दिशाओ मे गूँज उठी

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविण त्वमेव
त्वमेव सर्व मम देव देव।

अभी पण्डित जी ने शान्तिपाठ नही किया था कि उन्हे यमुना-जल मे भी पवित्र सुमित्रा देवी को प्रसव-पीडा के आरम्भ होने का समाचार मिला। पण्डित जी के सहयोगी आवश्यक सामान जुटाने और दाई आदि के प्रबंध मे लगे और पण्डित जी पुन मन्त्रोच्चारण मे लीन हो गये।

कृष्ण जन्माष्टमी के पर्व के घडियाल और मांगलिक वाद्य बज उठे। आरती और कीर्तन की मधुर वाणी कानो के पर्दों का स्पर्श करने लगी और उधर पण्डितजी को शिशु-जन्म की सूचना मिली। जैसे सारा संसार गा उठा हो

शान्ताकार भुजगशयन पद्मनाभ सुरेश
विश्वाधार गगनसदृश मेघवर्ण शुभागम्।
लक्ष्मीकान्त कमलनयन योगिभिर्ध्यानगम्य
वन्दे विष्णु भवभयहर सर्वलोकैकनाथम्।

आकाश से बरसती शीतल चाँदनी ने एक अद्भुत स्वर लहरी को जन्म दिया।

यदा-यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदाऽऽत्मानं सृजाम्यहम् ।।
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे-युगे ।।

(गीता अ० ४, श्लोक ७-८)

चाँदनी की स्वर लहरी मे व्याप्त गीता मे अकित कृष्ण-घोषणा प० जुगलकिशोर जी को आकाशवाणी-सी प्रतीत हुई ।

क्योकि ठीक उसी समय और उसी दिन जब भगवान् श्रीकृष्ण ने वसुदेव के घर जन्म लिया था, प० जुगलकिशोर जी के घर भी श्याम-वदन पुत्र ने जन्म लिया । शिशु का ललाट अलौकिक ज्योति से दमक रहा था और हर्ष उसके अधरो पर थिरक रहा था ।

हर्ष की छागल मृग की भाँति इस ओर से उस ओर तक पूरे वेग के साथ उछलने लगी । मन्दिरो से घडियाल और मागलिक वाद्यो की ध्वनि सहस्रगुनी अधिक जोर से आने लगी । आकाश कमल की भाँति खिल उठा । तारागण पृथ्वी की ओर नतमस्तक-से होने लगे ।

दूर कही किसी का मधुर कोकिल-स्वर फूट पडा

जन्म लियो घनश्याम, सखी री !
मुख पर जिनके अद्‌भुत आभा
चरण कमल की न्यारी शोभा
हाँ, हाँ, न्यारी शोभा
भूमण्डल के भाग्य जगे तब
पाय लिए जब श्याम
जन्म लियो घनश्याम सखी री !

तीसरा अध्याय

सुमित्रा की कोख से प्रकृति की गोद में

पं० जुगलकिशोर जी अपने स्वप्न साकार होते देख भगवद्-वदना में लीन हो गये। उन्होंने कृष्ण जन्मोत्सव को पुत्र जन्मोत्सव मे परिवर्तित कर दिया। एक महान् समारोह मनाया गया। उन्होंने दोनो हाथो से दान दिया और कृष्ण-कीर्तन उल्लासपूर्वक सम्पन्न कराया। पर प्रकृति तो पूर्व निश्चित योजनानुसार कुछ और ही करने जा रही थी। दारुण दुख विकराल रूप धारण करके आया। सुमित्रा देवी पर प्रसूत रोग का भयकर प्रहार हुआ। अभी उत्सव को चलते तीन ही दिन हुए थे कि उनके रोग-ग्रस्त होने के कारण पण्डित जी का प्रफुल्ल चित्त मुरझा गया।

पण्डित जी ने भगवान् के सम्मुख आँचल पसार कर अवरुद्ध कण्ठ से प्रार्थना की, "हे प्रभु! नव अकुरित प्राण के फूलने-फलने के लिए उसकी जननी की छत्र-छाया की बडी आवश्यकता है। चाँद सा अमृतचन्द्र दिया है तो उसकी मा के प्राणो की भी रक्षा करो। भगवन्! मुझ से मेरा जीवन ले लो, पर अमृत की पवित्र जननी को न छीनो। इस सन्नारी ने मेरे जीवन-पथ पर दीप-शिखा का काम किया है। मै इस महान् आत्मा को जीवन-सगिनी के रूप मे ग्रहण कर ही इतना सफल हूँ। मै यदि दीपक हूँ तो यह मेरे लिए तेल है, मै यदि पुष्प हूँ तो सुमित्रा सुगध है और यदि मै शरीर हूँ तो सुमित्रा प्राण है। सुमित्रा मेरी जीवन-नौका की दूसरी पतवार है। घोर झझावत आया है जगत्सिन्धु मे, और ऐसे तूफान मे केवल एक पतवार से काम नही चलेगा प्रभो!

"पुत्र के लिए उसकी मा ही उसकी रगो का रक्त है। शिशु के लिए माँ ही प्राण है, माँ ही ज्ञान है और माँ ही बोध। अबोध बालक से ज्ञान-शिखा, बोध-लकुटिया छिन जायेगी तो यह नन्ही सी जान ससार के दुर्गम पथो पर कैसे अग्रसर होगी।"

भगवान् का पाषाणी हृदय फिर भी निश्चल और निष्प्रभ रहा देख

कर वे आर्त्तनाद कर उठे, "भगवन् ! तुमने तो स्वप्न मे मुझे कहा था कि सुमित्रा ससार को एक प्रकाश-पुञ्ज प्रदान करेगी, एक ऐसा प्रकाश-पुञ्ज जो जगत् के नेत्रो पर पडे अन्ध-विश्वासो के काले आवरण को फाड फेकेगा, जो जगत् का पथ-प्रदर्शन करेगा। फिर क्या हुआ तुम्हारे उस सन्देश का ? प्रभु ! यदि इस भावी विश्व-पिता की जननी ही तुम ने छीन ली तो यह पुष्प उस आदर्श की स्थिति को पहुँचने से पूर्व ही मुरझा न जायेगा।"

भगवान् फिर भी मौन थे, पर न जाने कौन पण्डित जी के कानो मे फुस-फुसाया, "महान् आत्माओ का पालन प्रकृति-माँ स्वय करती है। कबीर, गुरु नानक, सूरदास और सन्त तुलसीदास इसके जीते-जागते प्रमाण है। बावरे ! ससार को मुक्ति-सन्देश देने वाले महापुरुषो को आगे बढने के लिए किसी सहारे की आवश्यकता नही होती।"

पण्डित जी इस फुसफुसाहट से आतकित और भयभीत हो गए। उनके नेत्रो मे शोक भय का रूप धारण करके उमड-घुमड कर आया और उनके मुख पर नैराश्य पोत गया।

सुमित्रा पीडा के सभी प्रहारो को बडी शान्ति के साथ सहन कर रही थी। उनके नेत्रो मे अपने नवजात शिशु के प्रति अगाध प्रेम था। वे उसके पुष्प की पँखुडियो से अधिक कोमल और अलौकिक चमक से दीप्त मुख को देख कर आत्म विभोर थी। पर पीडा और रोग के प्रहारो से आई भयकर शिथिलता ने उन्हे जीवन के अन्तिम छोर पर लाकर खडा कर दिया था। पण्डित जी के नेत्रो को सजल देख कर वे बोली, "रात्रि तो सूर्य-रत्न देकर समाधिस्थ हो ही जाती है। फिर आपके नयनो मे पानी ! श्यामवदन घनश्याम-से लाल को पाकर भी आपके मुख पर शोक की कालिमा !"

पण्डित जी ने अपने आँसू छुपाने का प्रयत्न किया, "नही, नही, आँसू कहाँ," फीकी मुस्कान अधरो पर लाने का प्रयत्न करते हुए वे बोले, "हाँ, हाँ, बिल्कुल घनश्याम ही तो है। देखो मेरा स्वप्न कितना सच्चा निकला।"

पण्डित जी सुमित्रा देवी को बिल्कुल इसी प्रकार देखने लगे जैसे कोई डूबते चाँद को देखता हो और सुमित्रा देवी कभी अपने सुकोमल पुत्र और कभी प० जुगलकिशोर जी को बडी आशा भरी दृष्टि से देखती रही।

दृष्टियाँ ही एक दूसरे के भावों को व्यक्त करने में सफल हो रही थीं।

पण्डित जी अश्रुपात करते रहने में सफल न हो सके और वे अपनी धर्मपत्नी को ऐसे समय सान्त्वना के स्थान पर नैराश्य का शिकार नहीं बनाना चाहते थे इसलिए बाहर चले आये। वे आकाश में पश्चिम की ओर यात्रा करते कारवाँ को देखने लगे। तारा-गण का यह कारवाँ मौन अपने पथ पर बढ़ता था और वह समय सन्निकट था, जब इनकी यात्रा समाप्त हो जायेगी कि अनायास ही एक तारा टूटा। प्रकाश-बाण की भाँति वह एक स्थान से चला और कुछ दूर तक प्रकाश-रेखा बनाता हुआ न जाने कहाँ गुम हो गया। अन्य तारागण उसी प्रकार काँपते हुए चमकते रहे।

नवजात शिशु का रुदन सुन कर पण्डित जी अन्दर गये। उन्हें देख कर सन्तोष हुआ कि सुमित्रा जी सो रही थीं और रोता हुआ शिशु पण्डित जी के पहुँचते ही चुप हो गया। वे शिशु को निकट से प्रेम भरे नेत्रों से देखते रहे, और कुछ क्षण पुत्र के बारे में न जाने, कहाँ-कहाँ की बातें सोचते रहकर बोले, "देखा सुमित्रा ! अपने लाल को, मुझे खूब पहचानता है।"

सुमित्रा के मुख पर कोई भाव उभरा न देख कर वे बोले, "ओह तो तुम सो रही हो। ठीक है तुम्हें विश्राम की आवश्यकता है, हे प्रभु इस पीड़ा में निद्रा !" पंडित जी सशंकित हो कर उनके मुख को तनिक ध्यान से देखने लगे। और जब उन्हें ज्ञात हुआ कि सुमित्रा चिर-निद्रामग्न हैं तो वे न अपने अश्रु-वेग को रोक सके और न अपने चीत्कारों को।

पर शिशु उसी प्रकार मुस्कराता रहा, मानो वह इस घटना को कोई विशेष स्थान न देता हो, जैसे उसे ज्ञान हो कि आत्मा अमर है, और शरीर नाशवान्। यह जगत् एक क्रीडा-स्थल अथवा थियेटर है, अभिनेत्री अथवा अभिनेता आते हैं और अपना पार्ट अदा करके चले जाते हैं।

शिशु के वदन के भावों पर कोई भी ज्ञानी पढ़ सकता था कि

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-
न्यन्यानि संयाति नवानि देही ॥ (गीता २।२२)

और

देही नित्यमवध्योऽयं देहे सर्वस्य भारत ।
तस्मात्सर्वाणि भूतानि न त्वं शोचितुमर्हसि ।।

(गीता २।३०)

पर जैसे पास से भक-भक करती गाडी निकल जाने से भले ही हमारे शरीर अथवा मन मे कुछ परिवर्तन न आये पर गाडी, जो वायुमण्डल को चीरती हुई जाती है, उसके पीछे दौडने वाले वायुवेग के झटके हमारे शरीर पर लगते ही है। इसलिए हम उससे अपने को अप्रभावित नही कह सकते । जैसे नाटक का प्रत्येक पात्र अपने अभिनय से हमारे मन पर कुछ-न-कुछ प्रभाव डालता ही है और प्रत्येक अच्छे अभिनेता के मच से चले जाने और फिर अपने उस रूप मे उस नाटक मे न आने से हमे उसकी कमी खटकती ही है, इसी प्रकार केवल यह कह कर कि आत्मा अमर है, वह न मरती है और न वध की जा सकती है, केवल चोला बदल सकती है, हम अपने प्रियजनो के विछोह से प्रभावित हुए बिना नही रह सकते । राम तो, जिन्हे भगवान् राम कहा जाता है, अपनी पत्नी के हरे जाने मात्र के शोक मे मानसिक सन्तुलन तक खो बैठे थे । उनके चीत्कारो से सारा वन सिहर उठा था तो फिर पडित जुगलकिशोर जी को पत्नी-वियोग का भयकर शोक क्यो नही होता । धैर्य और सहनशीलता के बॉध तोड कर उनके नेत्रो मे गगा-यमुना उमड पडी, उनके नयनो से सावन-भादो की झडी लग गई और उनके आर्त्त नाद से सारा वायुमण्डल शोक मे डूब गया । वायु सिसकियॉ लेने लगा । पशु-पक्षी सुबकियॉ ले रहे थे । सारे उपवन ने मानो काले परिधान पहन लिये हो । रात्रि ने अश्रुपात करना आरम्भ कर दिया और वृक्षो, पौधो और घास तक पर अश्रु-बिन्दु उभर आये ।

सुमित्रा की मृत्यु ने पडित जुगलकिशोर जी के मन पर भयकर आघात किया । पर हृदय मे हुए घाव का कोई निदान नही था ।

दु ख के इस प्रबल झझावात मे पडित जी को कोई पथ सुझाई नही देता था । पत्नी-वियोग उनके लिए एक ऐसी वेदनापूर्ण घटना थी कि उनका हृदय रक्त के आँसू वहा रहा था और दूसरी ओर शिशु अमृतचन्द्र के पालन-पोपण की समस्या उनके मन को कचोट रही थी ।

पर असह्य वेदना को लिये वे अपने जीवन-रथ को हाँकते रहने पर विवश थे उन्होंने अमृतचन्द्र जी के पालन-पोषण का भार एक सुयोग्य धाय को सौंप दिया और स्वयं प्रभु-भक्ति मे रम गए।

बाल्यकाल के आंगन मे

सूर्य उगता और अस्त हो जाता। रात्रि कालिमा का आवरण लिये मदमाती आती और कुछ घण्टो के उपरान्त उसके जीवन का अन्त हो जाता। ऋतुएँ अपनी-अपनी आभा, अपने-अपने गुण और अपने प्रभाव समेट कर लाती और अपने पिटारे के सभी जादू समाप्त होते देखकर अपना सा मुँह लिए लौट जाती। वृक्ष कोमल कोपलो का शृगार करते, पत्तो के यौवन से अपने को ढँक लेते और एक दिन अपने परिधान को उतार फेकते। वसन्त आता, कोयल की मधुर कूक गूँज उठती, पुष्प हँसने लगते और फिर आकाश ईर्ष्यावश आग वखेरता, भू-तल जल उठता, और फिर अपनी मूर्खता पर नभ अश्रुपात करता। वर्षा ऋतु आरम्भ हो जाती, बागो मे झूले पड जाते, गाँव की अल्हड युवतियाँ मस्त होकर राग अलापने लगती, हाथो पर मेहदी रचाती और फिर कुछ दिनो उपरान्त ससार के सर्द पडे भावो को देखकर और प्रकृति द्वारा किये जाते अपनी भावनाओ की गर्मी पर शरद् आघात से रक्षा के लिए रुई के मोटे कपडे ओढने लगती। शरद् ऋतु की लम्बी-लम्बी राते आ जाती। सुहाग-रातो की धूम चल पडती और फिर चक्र अपनी पुरानी परिधि मे घूमने लगता।

समय का परिवर्तन-चक्र यो ही चलता रहा और बालक अमृतचन्द्र की शिक्षा सुचारु रूप से चलनी आरम्भ हुई और निर्विघ्न चलती रही। उनके छोटे-छोटे और चिकने-चिकने पाँव प्रगति-पथ पर बढने लगे। पडित जुगलकिशोर जी के मन को सतोष हुआ कि सुमित्रा की महान् निशानी अमृतचन्द्र धीरे-धीरे उन्नति के शिखर की ओर चल रहा है। वह न दूसरे बच्चो की भाँति रोता है और न गदी बातो की ओर ही आकर्षित होता है। अध्ययन के उपरान्त उस सौम्य मूर्ति पर गम्भीरता छा जाती है। विचारो मे खोये हुए बालक को देखकर पडित जुगलकिशोर जी के हृदय मे पुत्र के प्रति जहाँ प्रेम उमड पडता वहाँ

कभी-कभी वे चिन्ता मे डूब जाते। 'आखिर बालक क्या सोचता रहता है' यह प्रश्न उठता तो वे अनुमान लगाने लगते, 'कही यह अपनी माता को तो याद नही करता' और जब वे उनसे पूछते कि 'माँ याद आ रही है बेटा ?' तो उन्हे आशा के विपरीत उत्तर मिलता।

"नही।"

"तो फिर ?"

"पिताजी ! कुछ भी तो नही।"

और ये शब्द भी पण्डित जी को रहस्यमय ही लगते। वे और भी सोच मे पड जाते।

बालक अमृतचन्द्र की ओर, जो एक दिन चन्द्र की भान्ति दीप्तिमान् होना था, अध्यापक का ध्यान भी अधिक आकृष्ट रहता था क्योकि बालक के अद्भुत गुणो का समय-समय पर प्रमाण मिलता रहता था और उनकी बुद्धिमत्ता, चचलता तथा कभी-कभी अनायास ही मुखमण्डल पर छा जाने वाली गहन गम्भीरता उन्हे समस्त अन्य विद्यार्थियो से भिन्न रखती थी। अध्यापक उन्हे कौओ मे हस अथवा धूल-कणो मे रत्न समझा करते थे।

एक दिन उनसे किसी ने पूछा, "तुम्हारी माँ कहाँ है ?"

वे बोले "स्वर्ग मे।"

प्रश्नकर्ता ने पूछा, "स्वर्ग कहाँ है ?"

"जहाँ तुम नही हो।" कहकर बालक अमृतचन्द्र मुस्करा पडे। प्रश्न-कर्ता आत्म-ग्लानि के मारे गरदन लटकाए चले गये।

बालक अमृतचन्द्र के विनोदी स्वभाव के सामने कभी-कभी उनके अध्यापक भी कान टेक जाते थे। उन्होने बालक की तीव्र बुद्धि को देखकर निर्णय दिया कि बालक अमृतचन्द्र एक दिन पण्डित जुगलकिशोर का नाम रोशन करेगा।

बालक अमृतचन्द्र ने अभी नौ वर्ष की आयु भी पार नही की थी कि 'पच सहस्री' का अध्ययन समाप्त कर लिया।

उनके पिता जी तो धार्मिक नियमो के पालन मे सदैव तत्पर रहते थे, अपनी धर्मनिष्ठा के कारण उन्हे बालक अमृतचन्द्र जी के यज्ञोपवीत की धुन सवार हो गयी।

पण्डित जी का उद्यान एक दिन पुन साज-सज्जा से खिल उठा। सारे नगर के प्रतिष्ठित एव विद्वान् जनो को निमन्त्रित किया गया। चारो ओर वाजे-गाजे की वारात उमड पडी। अतिथियो, प्रशसको और सहयोगियो की धूम मच गई। वाग का कोना-कोना रास रचाने लगा और पण्डित जी ने अपनी उदारता एव मानव-प्रेम का प्रमाण प्रस्तुत करते हुए अपने योग्य सुपुत्र के साथ-साथ आठ अन्य ब्राह्मण-पुत्रो का यज्ञोपवीत सस्कार कराया। इस प्रकार भावी प्रसिद्ध विद्वान् अमृतचन्द्र जी के सहारे आठ अन्य ब्राह्मण-कुमारो का एक सस्कार पूर्ण होगया।

लोगो ने उस समय भले ही न समझा हो पर यह वात है कि अमृतचन्द्र जी के साथ वाल्यकाल से ही प्रकृति ने मानव जाति के अन्य सदस्यो को इस भव-सागर से पार उतरने के लिए प्रेरित किया था।

चौथा अध्याय

वैराग्य के अंकुर

अभी-अभी सूर्य-किरणो ने भू-देवी के मुख पर पडा रात्रि का घूँघट उठाया है, पक्षियो का कलरव है, कोकिला ने मिलन रागनी छेडी, ग्वालो ने वसरी और डण्डा उठाया और चल पडे गौओं को लेकर खुले मैदानो की ओर। घरो की शोभा पनघट पर आ डटी। मन्दिरो मे मूर्तियो की घोर निद्रा भग करने हेतु वज उठे, घण्टे घडियाल। मन्दिर एक ही तो नही सैकडो है, और ससार मे तो असख्य। जहाँ ठीक इसी समय अपने इष्टदेव की लीला के राग गाए जा रहे है, जहाँ ठीक इसी समय सुख-समृद्धि की भीख माँगी जा रही है, असख्य नर नारी, अपने पापो के लिए क्षमा माँग रहे है, अपने को मूरख, खल-कामी, अज्ञानी, अबोध, सेवक, दास आदि के ढोल पीटकर। और है प्रत्येक इसी प्रयत्न मे कि भगवान् उसकी प्रार्थना तो अवश्य ही सुने। पर कदाचित् कोई नही सोचता इतना शोर है, इतने कण्ठ है, इतने घण्टे और घडियाल, सबकी एकत्रित ध्वनि इतनी भयकर, इतनी कर्कश है कि भगवान् को तो कान पडी आवाज भी सुनाई नही देती होगी तो यह नही जानते हुए भी प्रत्येक अपनी पूरी शक्ति भर ऊँची से ऊँची आवाज लगा रहा है, कदाचित् इसी अभिप्राय से कि उसकी आवाज ही भगवान् के कानो के परदो को झझोड दे।

बालक अभी निद्रामग्न है, कोई-कोई कुलमुला रहा है, किसी की माँ थपकी दे देकर कान के पास मुँह लेजाकर जगा रही है, 'देखो बेटा ! सूरज तो कभी का जाग उठा। देख ना छोटी चिडिया भी जाग गई और छि तू सोता है, माँ का वात्सल्यपूर्ण हाथ बालक के सिर पर फिर रहा है।

किसान अपने कधो पर हल रखे अपने बैलो को टिटकारी लगाते खेतो की ओर चल पडे है। किसानो की गृहिणियाँ गाय के थनो से दूध निचोड रही है, छन्न-छन्न की ध्वनि करता हुआ दूध पतीली मे वज रहा है और गाय का अपना बेटा दूर हसरत भरे नेत्रो से देख रहा है। गले

मे फाँसी-सा फदा न डाल दिया होता तो वह जरूर अपने अधिकार पर डाका डालने वाली से सघर्ष कर बैठता, पर गले मे फदा जो ठहरा।

बालक अमृतचन्द्र गीता लिये अपने पाठ में रम गया है। जैसे उसे अपने हिये मे जमा लेना चाहता हो। हिये में उसके न जाने क्या भरा है। पर गीता उस की प्रिय साथिन है ना ! वह उसके लिए प्रात सूर्य की स्वर्णिम किरणो के साथ ही बेचैन हो जाता है। यमुना के पवित्र जल मे स्नान करके वह अभी-अभी बैठा है। अभी-अभी यमुना की लहरो ने उसके कान में कुछ कहा था, क्या कहा था यह तो न मैं ही शब्दो मे व्यक्त कर सकता हूँ और न वह ही, बाल अमृतचन्द्र ही। इतना जरूर कि यमुना की लहरे उससे किलोल करती रहती है और वह उनके मधुर स्पर्श से कुछ-न-कुछ पाता अवश्य है और उसी को ग्रहण कर वह दिन के आदि से अन्त तक कभी-कभी चचल हो उठता है, कभी-कभी शान्त, यमुना की लहरो-सा शान्त और यमुना की लहरो-सा ही चचल। माँ का दुलार उसे भले ही न मिला हो पर यमुना का प्यार तो उसे प्राप्त है ही।

हृदय तड़प उठा

गीता-पाठ से निवृत हो कर वह नगर की ओर चल पडा। आज विद्यालय के फाटक पर ताला लटक रहा है, जो छुट्टी का सन्देश-वाहक है। बालक अमृतचन्द्र आज अपने किसी सहपाठी के घर जा रहा है।

वह सामने उसके छोटे मित्र का घर है न। उसी मे उसने प्रवेश किया। उसके सहपाठी की माता अपने सुपुत्र को सुन्दर-सुन्दर वस्त्र पहना रही थी। आँखो मे स्याही भर के, बालो को तेल व कघी से आभापूर्ण ढग से सजा कर उसने पुत्र का चुम्बन किया। बालक अमृतचन्द्र इस दृश्य को देख कर माँ की कमी को भावुकता से अनुभव करने लगा।

उसके सहपाठी की माँ ने अमृतचन्द्र को अपने पास बुला कर उस को अपनी गोद मे ले लिया और प्यार-भरे हाथ की उँगलियाँ उसके बालो मे खुबो दी।

"कितना प्यारा बालक है रे तू" उसने कहा।

बालक अपने सहपाठी की माँ के नेत्रो मे तैरता प्रेम देखकर सोचने लगा, "यदि यह मेरी माँ होती, सचमुच मेरी माँ, तो मुझे कितना प्यार करती।"

"बेटा ! तेरी माँ तेरी आँखो मे स्याही नही लगाती ?"

"मेरी माँ है ही कहाँ ?"

"अच्छा तो तेरी माँ स्वर्ग सिधार गई," वह सहानुभूति दर्शाते हुए बोली, "भगवान् किसी बालक की माँ को न उठाए।"

बालक अमृतचन्द्र पर इस बात का इतना प्रभाव पडा कि वह हृदय मे पीडा लिये घर लौट आया। माँ की याद मे उसका करुण कन्दन, उफ, प० जुगल किशोर जी का हृदय फूट पडा। वे बालक को सान्त्वना देने के लिए वही शब्द दोहराने लगे जो उन्हे सुमित्रा की मृत्यु के अवसर पर बालक की मुखाकृति पर झलकते दीखे थे, जो गीता के पृष्ठो पर उन्होने बारम्बार पढे थे, और जिन्हे बालक ने स्वय पढा था पर एक पुण्य ग्रथ की शिक्षा के तुल्य। जीवन की वास्तविकता से उसने उनका सम्बन्ध कदाचित् इतनी गम्भीरता से कभी नही जोडा था। पण्डित जी का पाठ बालक के मस्तिष्क पर चोट करने लगा। आत्मा-परमात्मा, जन्म-मरण, मुक्ति-बन्धन, सत्य-असत्य, हिसा-अहिसा, और दुख-सुख क्या है, क्यो है, कैसे है, इस ससार का कोई छोर भी है, ऐसे गम्भीर प्रश्न उनको अपनी ओर आकर्षित करने लगे।

दूसरी ओर कुएँ पर कविता-पाठ मे रत एक पथिक की वाणी शोकातुर वातावरण को वेधती हुई उठी --

चला जा रहा था जिस पथ पर
भुला दिया हा ! हन्त !
निविड़ दिशा में जाना होगा
अब जाने किस पंथ।

बालक ने दीर्घ नि श्वास छोडा।

फिर वही वाणी हृदय को झकझोरती हुई

यही वज्रव अरे कदाचित्
तुझे दिखायेगा नूतन पथ
और कहेगा वहाँ पहुँचकर
होगा निशि अवसान
राह का साथी यह तूफान !
राह का साथी यह तूफान !

पिता जी अमृतचन्द्र को समझाते रहे, इस जग की क्षणभंगुरत

को, जीवन के बुलबुले का आदि और अन्त। पर उन्हें यह ज्ञान नहीं कि वे इस नरम व नाजुक टहनी को किस दिशा में मोड़ रहे हैं।

अमृतचन्द्र ने द्वार त्याग कर यमुना की ओर पग बढ़ाये।

बुदबुदों से भेंट

यह यमुना है। गंगा की सखी यमुना।

अमृतचन्द्र यमुना तट पर बैठ गये। हाथ पर सिर टेक लिया। शीतल पवन का एक झोंका आया। यमुना जल चंचल हो उठा। लहरें उठीं और लहरों के गर्भ में बुदबुदों ने जन्म लिया और बुदबुदों के अधर-पल्लव कम्पित हुए। उन्होंने राग छेड़ा, जीवन का राग, जवानी का राग और फिर एक ही क्षण में पवन झकोरे न जाने कहाँ गुम हो गये। लहरें शान्त और तरंगमग्न बुदबुदे? उफ, वे जल में उठे और जल में ही विलीन हो गये। क्षण भर का उनका मधुर जीवन, और अब श्मशान-सी शान्ति।

वायु का एक रेला पुनः आया। कुछ नये बुदबुदे अंकुरित हुए। उन्होंने मुस्कान बखेर दी।

बोले, "कहो मित्र?"

"क्या?"

"कुछ तो!"

"मैं क्या कहूँ?"

"गम्भीर हो, दुखी लगते हो, चिन्तित हो, पर क्यों?"

"..."

"तुम्हारा यह गुलाब की कली-सा चेहरा आज मुरझाया हुआ क्यों है?"

"मेरी माँ भगवान् ने छीन ली है, मुझे अब मेरे सहपाठियों की माताओं की भाँति कोई दुलारने वाली नहीं है। प्यार से मेरे सिरपर हाथ फेरने वाली नहीं है।"

"ओह! तो यह बात है, तुम्हारी माँ की मृत्यु हो गई है!"

"हाँ।"

"पर माँ तो सभी की किसी न किसी दिन मर जाती है और एक दिन माँ का प्यार चाहने वाले पुत्र भी संसार से चले जाते हैं।"

"पर मेरे साथियो की माताएँ तो जीवित है। फिर मेरी ही माँ क्यो मर गई ?"

"यम महाराज की मरजी।"

"पर यह यम महाराज कौन है ?"

"मृत्यु के वारट काटते है ये!"

"ओह! तो इन्हे मेरी माता का ही वारट काटने की इतनी जल्दी क्या थी, मुझे ही दुखित करने की क्यों इच्छा थी ?"

"वारट तो वे सभी के काटते है, किसी के जल्दी, किसी के देर मे, और यदि तुम्हे लगता है कि तुम्हारे साथ अन्याय हुआ तो लडो फिर यम महाराज से जाकर, मृत्यु से टक्कर लो न!"

और अकस्मात् बुदबुदे टूट गए!

सर्वत्र शान्ति छा गई।

अमृतचन्द्र जी की मुट्ठियाँ बध गई, "मै मृत्यु से टक्कर लूँगा, मै मृत्यु को पराजित करूँगा।"

"बेटा, गौतम बुद्ध ने भी एक दिन ऐसा ही प्रण किया था। भगवान् महावीर ने भी जीवन-मरण के बधनो को तोडने की शपथ ली थी। ससार के मोटे-मोटे पोथे ग्रथ—वेद, पुराण, गीता तथा अन्य धर्मग्रथ—इसी चक्रव्यूह को तोडने के उपायो के वृत्तान्त से भरे है। तुम अभी बालक-हो, पढो लिखो। और फिर यह बाते सोचना।" ये शब्द प० जुगलकिशोर जी के थे जो अमृतचन्द्र को यमुना तट से वापिस घर ले जाने को आये थे।

अमृतचन्द्र वापिस तो आगये पर उनके मन मे उतरा हुआ प्रश्न-वाचक चिह्न इन्द्रधनुष की भान्ति निखरा ही रहा।

प्रश्न ही प्रश्न

"पानी पीना है पण्डित जी ?"

"कौन भाई हो ?"

"रैदासी"

"छी, छी तनिक दूर रहो न, मै अभी तुम्हे जल पिलाता हूँ।"

पडित जी कुएँ के ऊँचे मच पर खडे होकर ऊपर से धार बाँधकर पथिक की चुल्लुओ मे पानी गिरा रहे है। ऊँचे से गिरती जलधार से उत्पन्न

छींटों से पथिक के कपड़े भीग रहे हैं पर वह गटागट पानी पी रहा है। कंधे पर पड़ी धुली हुई चादर नीचे लटक गई और उसका एक छोर उस की चुल्लू के नीचे आ गया। अमृतचन्द्र जी यह सब दृश्य देख रहे हैं। अब तक देखते हुए भी नहीं देख रहे थे मन की उलझन के कारण, पर ज्यों ही उनका ध्यान भंग हुआ और उन्होंने देखा तो दौड़ कर उन्होंने चादर थाम कर उस के कंधे पर सम्भाल कर रख दी, "तुम्हारी चादर तो भीग रही है, गंदी भी हो गई है, और तुम्हें पता ही नहीं!"

पथिक ने बहुत-बहुत आशीर्वाद दिया उन शब्दों में जो उसे अत्युत्तम जँचे। जिनसे अच्छे शब्द और जिससे अच्छा आशीर्वाद उसकी नजर में अन्य कोई हो ही नहीं सकता। पर पंडित जी को बड़ा क्षोभ हुआ। उन्होंने अमृतचन्द्र के वस्त्र उतार दिये और यमुना जल में उन्हें स्नान कराया। शरीर पर सम्भाल कर रखे हुए गंगा जल के छींटे दिये और मन्दिर में उसकी पवित्रता के लिए उसे बैठा कर कुछ होंठ फड़फड़ाए।

"पिताजी! मुझसे भूल क्या हुई? मैंने कौन बुरा काम किया?" अमृतचन्द्र आश्चर्यमिश्रित भाषा में बोले।

"बेटा हम ब्राह्मण हैं। पथिक रैदासी अर्थात् अछूत था। तुझे उस का स्पर्श नहीं करना चाहिये था। इससे तुम अपवित्र हो गए।"

"पिता जी! यह अछूत क्या होते हैं?"

"ऐसे मनुष्य जिन्हें स्पर्श नहीं किया जाता अछूत कहलाते हैं।"

"क्यों नहीं स्पर्श किया जाता?"

"क्योंकि वे चमार हैं, नीच जाति के हैं।"

"नीच जाति के क्यों हैं?"

"भगवान् ने उन्हें नीच जाति में उत्पन्न किया है।"

"और पिताजी! यदि मैं भी नीच जाति में उत्पन्न होता तो मैं भी नीच ही होता। पर मैं तो विद्यार्थियों में होशियार हूँ सबसे आगे, तो फिर मैं नीच क्यों होता?"

पण्डित जी चुप हो गए और पुत्र को भी चुप करने का प्रयत्न करने लगे। पर अमृतचन्द्र जी के मन में तो खलबली मची थी। "नीच-ऊँच का प्रश्न क्यों है पिता जी! कोई नीच कहा जाता है कोई ऊँच, यह क्यों है?" अमृतचन्द्र ने पूछा।

"यह तो सब भगवान् की लीला है बेटा... ......पर तू क्यो इस चक्कर मे पडता है। जाकर अपनी किताब पढ न!" प० जुगलकिशोर ने उसे टालने का प्रयत्न किया।

पर मेधावी अमृतचन्द्र मे तो वैरागी अमृतचन्द्र जन्म ले रहा है। वह बहलाया कहाँ तक जा सकता है! प्रश्न ही प्रश्न, चारो ओर प्रश्न ही प्रश्न जन्म ले रहे है, प्रश्न ऐसे-ऐसे जो किशोरावस्था मे उठे ये सब वैराग्य के ही तो लक्षण है। उफ, किशोर अमृतचन्द्र मे चिन्तन का इतना गहन उन्माद। प० जुगलकिशोर भी स्तब्ध रह गये, स्तम्भित। जैसे उनका पुत्र उनके हाथो से जा रहा हो।

एक और वज्रपात

उस दिन यमुना जी से तूफान फूट निकला, एक भयकर तूफान। यमुना की उत्तुग लहरे विषधरो की भाति फुँकार उठी। सारा वातावरण भयानक राक्षस के रूप मे परिवर्तित हो गया।

सद्गुणो, दया और करुणा की खान प० जुगलकिशोर जी रोगग्रस्त होकर शय्या पर जा लिटे। अमृतचन्द्र जी इस तूफान के थपेडो से अकेले लडेगे। किशोरावस्था मे इतने बड़े तूफान का सामना करना कोई हँसी-खेल तो नही।

यमुना की हडहड-हडहड कलकल-कलकल करती लहरो मे सॉय-सॉय की ध्वनि और आ मिली है। मझधार मे जल आकाश की ओर उठने का प्रयत्न कर रहा है। यह तूफान क्यो, किसी भयानक परिणाम का द्योतक यह तूफान!

हिमगिरि से बढती हुई जल की, बाढ की यह सेना बढती ही जाती है, पडित जी पर रोज के प्रहार बढ़ते ही जाते है। और अमृतचन्द्र की परीक्षा-कसौटी की भयकरता क्रूरता मे परिवर्तित हो रही है।

उस दिन सितारे कॉंप उठे। यमुना की लहरो से त्राहि-त्राहि की ध्वनि निकली। चॉद मेघ-खण्डो की गोद मे जा छुपा अपना मुह लिये अपने आँसू छुपाने के निमित्त।

प० जुगलकिशोर जी का शरीर निष्प्राण हो गया। आत्मा और शरीर का यह बिछोह वातावरण से अश्रुपात करा गया।

अमृतचन्द्र जी ने अभी दसवे वर्ष की आयु पार नही की है। यद्यपि प० जुगलकिशोर जी की कृपा और परिश्रम, तथा अमृतचन्द्र के अलौकिक गुणों के कारण अमृतचन्द्र इतनी कम आयु मे ही गीता का पाठ कर सकते थे, पर किशोरावस्था का स्वभाव तो उनमे विद्यमान था ही।

माता के दुलार से रहित अमृतचन्द्र के लिए पिता जी का स्वर्गवास वज्रपात के समान ही था। उनके अश्रुओ की बाढ, चीत्कार और हृदय-विदारक क्रन्दन सुनने वालो की छाती को फाडे डालता है, पर इस क्रन्दन का भी तो अन्त है।

यमुना की लहरे शान्त हो गईं। न वह तूफान, न लहरो का वह ताण्डव नृत्य अथवा रणचण्डी रूप। पर अमृतचन्द्र के जीवन मे तूफान का अन्त नही, तूफान का प्रादुर्भाव हुआ है।

वाटिका के एक पुष्प ने प्रकृति से कहा, "देखना! काल-चक्र का यह वज्रपात कोमल कली के मन को, भविष्य को और खण्ड-खण्ड न कर डाले।"

प्रकृति बोली, "नही-नही, विपत्तियो की भट्टी मे ही इसे कुन्दन बनना है कुन्दन!"

और आज फिर किसी के उस दिन वाले गीत ही समीर को कम्पित कर उठे।

दीप हुआ निर्वाण
आया है तूफान
राह का साथी यह तूफान

और फिर वही पुराने शब्द

यही वज्रव अरे कदाचित्
तुझे दिखायेगा नूतन पथ
और कहेगा वहाँ पहुँचकर
होगा निशि अवमान
राह का साथी यह तूफान!

मन्दिर मे दर्शनार्थ आनेवाले व्यक्तियो की सहायता से प० जुगलकिशोर जी को चिता पर धर दिया गया।

चिता धू-धू करके धधक रही है और इसमे पडित जुगलकिशोर जी का शरीर रखा है। ग्वालियर का भूतपूर्व राज्य-ज्योतिषी, प्रकाण्ड पण्डित, मेधावी, करुणा का अवतार, और भावी महा मानव का योग्य एव यशस्वी पिता आज अग्नि की गोद मे सो रहा है।

लाल-लाल, पीली-पीली लपटे उठ रही है, और अमृतचन्द्र दूर खडा इन लपटो के उठान को देख रहा है। अभी-अभी एक तनिक सी चिनगारी से इन लपटों का जन्म हुआ, अभी-अभी इनमे जवानी उभरी और कुछ देर पश्चात् ये लपटे सुख की नीद सो जायेगी। सुख की नीद, जैसी प० जुगलकिशोर जी सो रहे है।

अमृतचन्द्र ने यमुना की ओर दृष्टि उठाई। किनारे पर खडे कॉस की गरदन लटक रही ह। जल अपनी गति से अविरल रूप से बह रहा है।

अमृतचन्द्र आज अनाथ हो गया है। लपटो की लाल सूरत भी उनके चारो ओर व्याप्त अधकार को नही चीर पाती। गहन अधकार मे फसे अमृतचन्द्र को कोई हाथ अपनी ओर आता दृष्टिगोचर नही होता। मृत्यु ने उनके चारो ओर अधकार की काली चादर डाल दी है।

संरक्षण में षड्यन्त्र

प० जुगलकिशोर जी की सम्पत्ति की ओर लोगो की नजरे उठी, ललचाई हुई नजरे। सनातनी धर्म-ध्वजाधारियो मे इसे हडपने की होड़ लग गयी। पर अमृतचन्द्र जी उनके पथ पर खडी एक चट्टान थे। सरक्षण का ढोग रचा गया। ढोग उनके जीवन का एक प्रमुख अङ्ग है न। मनुष्य-मनुष्य मे भेद भाव की दीवार खीचने वाले, ऊँच-नीच के समर्थक, और पत्थर को भगवान् कहकर पूजने वालो के सामने इन्सान पत्थर था, पत्थर की भारी शिला। सरक्षण के ढोग मे कुछ लोगो की सरक्षक-समिति बना दी गयी और अमृतचन्द्र की शिक्षा का एक स्कूल मे प्रवध कर दिया गया।

चार वडे भाइयो, समृद्धिशाली और साधनसम्पन्न भाइयो, के रहते अमृतचन्द्र अनाथ थे। अनाथ इसलिए कि सरक्षक गण नही चाहते थे कि प० जुगलकिशोर जी की सम्पत्ति पर कोई दूसरा अधिकार कर ले। इसलिए पण्डित जी के चार वडे पुत्रो को उनकी मृत्यु का समाचार नही दिया गया।

अमृतचन्द्र इन धर्मध्वजाधारी स्वार्थियो की आँखो के शूल थे। आँखो के इस शूल को हटाना होगा, सम्पत्ति हडपने के लिए पथ पर खडी इस चट्टान को गिराना होगा। अमृतचन्द्र जी को पथ से हटाने की योजनाएँ बनने लगी। धर्म के ठेकेदार षड्यन्त्रकारी बन गए। भगवान् की पाषाणी मूर्ति के सामने जुडने वाले हाथो को कलकित करने की योजनाएँ चल रही थी।

और अमृतचन्द्र जी इस लीला को देख रहे थे। अनेक प्रकार की यातनाएँ दी जाने लगी। अन्यायो का शिकार यह बालक पाखण्ड के ठेकेदारो की इन करतूतो से तडप उठा। नगर की गलियाँ उसे खाने को दौड रही है। आदमी भूखे भेडिये की तरह उसकी ओर बढ रहा है। भगवान् फिर भी मौन है। उसके दरबार के मालिक है यही काले दिल वाले नाग—वे नाग जो मानवता से दूर का भी वास्ता नही रखते। चारो ओर नागो की फुंकार, चारो ओर स्वार्थियो का जाल। उफ! जग का यह भयकर रूप! यातनाओ का झझावात तीव्र रूप धारण कर रहा है और छोटे से अमृत-चन्द्र इस तूफान मे कुलबुला रहे है। कोई सहानुभूति के दो बोल भी नही कहता। प्यार का हाथ उनसे छिन चुका है। सन्तोष, धैर्य और सहन-शीलता की भी एक हद होती है। अमृतचन्द्र काँप उठे। उन्हे अपनी सम्पत्ति जाने की चिन्ता नही है। प्राणो को बचाने का ध्यान है क्योकि उन्हे अभी जीना है, अभी उन्हें अपने चमत्कार दिखाने है, उन्हे अभी ससार को एक नई राह दिखानी है।

घर से अनाथालय में

घर को अन्तिम नमस्कार किया। वाटिका पर एक हसरत भरी नजर डाली। पुष्प और लताएँ रो पडी, पर सब अनाथो की भाँति निस्सहाय और बेबस। मन्दिर के देवता को प्रणाम किया। पर उसके नेत्रो मे न करुणा न सहानुभूति, मौन और शान्त, पत्थर की तरह निश्चेष्ट, अचल और निस्सहाय तथा बेबस भी। पाषाण की यह प्रतिमा कितनी निष्प्राण है, यह उस दिन उन्हे लगा। यमुना की ओर दृष्टि उठाई, "तुम भी मौन हो, निस्सहाय, निश्चेष्ट और बेबस, तुम भी कुछ नही सुनती, कुछ नही करती।"

यमुना फिर भी मौन थी।

अमृतचन्द्र नगर की ओर चल पड़े। मुख पर चिन्ताएँ उभर आई।

यह बेलन गंज है, आगरे का एक बडा बाजार, जहाँ लक्ष्मी की माया है, लक्ष्मी का उलट-फेर। यहाँ प० जुगलकिशोर जी के एक मित्र लाला तोताराम जी की दुकान है। जैन मत के मानने वाले तोताराम जी अमृतचन्द्र की दुर्दशा देख कर आश्चर्यचकित रह गये। वे बेखबर है, उन्हे यह भी ज्ञात नही कि उनके मित्र प० जुगलकिशोर जी स्वर्ग सिधार गये है। उन्हे यह भी पता नही कि उनके मित्र के पुत्र पर नाग फुकार रहे है। सब कुछ जान कर वे स्तम्भित रह गये चकित और क्षुब्ध।

"बेटा! घबराने की कोई बात नही। तुम जैसे पण्डित जी की सन्तान वैसे ही मेरी भी।" ला० तोताराम जैन के नेत्रो मे प्यार की झलक देख कर अमृतचन्द्र फफक-फफक कर रो पडे। आज उन्हे इतने दिनो बाद पहली बार सान्त्वना और प्यार के दो शब्द सुनने को मिले।

ला० तोताराम जैन ने उन्हे अनाथालय मे दाखिल करा दिया है। यह अनाथालय है रावत पाडा मे। रावत पाडा के इस अनाथालय में माता-पिता के प्यार से वंचित बालक रहते है जिन्हे शिक्षा के साथ-साथ भगवान् महावीर के उपदेश भी रटाए जाते है।

जैन अनाथालय मे अमृतचन्द्र का प्रवेश उन्हे जीवन के एक नये मोड पर ले जायगा यह तो ला० तोताराम जी को भी ज्ञात नही था। पर अनाथालय की प्राचीरो मे एक उच्च विचारक का प्रवेश अनाथालय के नाम को भी अमर कर देगा, इसीलिए अनाथालय का कण-कण उनका स्वागत कर रहा था, मौन स्वागत।

पाँचवाँ अध्याय

वैभव से मोह नहीं

अनाथालय के द्वार मे एक दम्पति ने प्रवेश किया। पति की वेशभूषा से लक्ष्मी का उसके प्रति अनुराग टपक रहा है। पत्नी का परिधान, शरीर पर आभूषणो की छटा, और नख-शिख पर कृत्रिम सौंदर्य का पालिश, यह सब इस बात के परिचायक है कि वह वैभव मे पली, ऐश्वर्य की पालकी मे जीवन-पथ पर बढती और आधुनिक फैशन के दीवानेपन मे झूमती हुई कोई सेठानी है। इस दम्पति का अनाथालय मे प्रवेश अनाथालय के सरक्षको और कार्यकर्त्ताओ के लिये प्रसन्नता का कारण बन गया क्योकि अनाथालय मे किसी साधनसम्पन्न व्यक्ति का पदार्पण कोई बडा दान मिलने का लक्षण है। मिठाइयो एव फलाहारो का वितरण तो एक आम बात है।

दम्पति के साथ फलो और मिठाइयो के टोकरे लिये दो-तीन मजदूर भी है, जो मिठाइयो की मनमोहक सुगध अनुभव कर रहे है और जिनके पेट मे चूहे कबड्डी खेल रहे है, पर वे तो मजदूर है ना, वे खाद्य पदार्थो के कितने ही बोझे ढोते है पर अपने पेट से पत्थर बाँध कर सोने के लिये विवश है। इस प्रकार मिठाइयो की भीनी-भीनी मधुर सुगध उनके मन पर, मस्तिष्क पर और हृदय से टकरा रही है। मुँह मे पानी भर आया है पर वे उन्हे छू तक नही सकते, खाना तो दूर की बात रही।

अनाथालय के अधिकारी वर्ग ने उनका स्वागत किया। बालको मे मिठाइयाँ और फल वितरित कर दिये गये। सभी बालक प्रसन्नचित है, खेल रहे है और खा रहे है। भिखारियो को ऐसी वस्तुएँ मिलती तो कदाचित् वे आशीर्वादो की झडी लगा देते पर बालक है कि आशीर्वाद नाम की कोई वस्तु उनके पास नही है। उनके पास मुस्कान भर है, कलियो की सी मुस्कान, जो उन्होने दम्पति के प्रति आभार प्रगट करते हुए, सोच समझ कर नही वरन स्वभावानुसार ही,बखेर दी है। उनके मुखडे खिल उठे।

अधिकारी वर्ग ने धन्यवाद के कितने ही शब्द, प्रशसा के कितने ही वाक्य दम्पति के चरणो मे उण्डेल दिये। मानो बालको के अबोध होने के कारण उनका यह कर्तव्य उन्होने अपने सिर पर ले लिया हो।

"देखिये, हमे एक बालक की आवश्यकता है।" सेठ जी बोले।

"किस कार्य के लिये ? कहिये।"

"बात यह है कि तीन बार विवाह रचाने के उपरान्त भी मेरे कोई सन्तान नही है। मै सोचता हूँ कि किसी को गोद ही ले लूँ। कोई सुन्दर, होशियार और होनहार बालक हो तो.... ."

"यह तो बडा शुभ विचार है। हमारे आश्रम मे इस समय साठ बालक है। उनमे सुन्दर भी है, होशियार भी और होनहार भी। चार वर्ष की आयु से लेकर १५ वर्ष की आयु तक के बालक है, आप जैसा चाहे चुन सकते है।"

दम्पति ने सभी बालको को देखा। सभी के बारे मे आचार्य ने उन्हे बताया, कि वह कहाँ से आया, किस जाति का है, कितनी आयु है, पढने मे कैसा है। चमडी के रग-रूप मे तो कितने ही बालक थे जो सुन्दर कहे जा सकते थे। पर दम्पति उनमे से किसी को न चुन सके।

अन्त मे आचार्य ने एक बालक को सामने लाकर कहा, "यह हमारे अनाथालय का रत्न है। सभी विद्यार्थियो से भिन्न और सभी मे यकता। पढने मे सभी से तेज। सस्कृत मे इसकी बहुत रुचि है। पढना-लिखना और सुन्दर विचारो का चयन करना इसके प्रिय गुण है। यो कहिए यह हजारो लाखो मे एक है। और देखिये, इसके नेत्रो मे चमकता ओज इस के उज्ज्वल भविष्य की भविष्यवाणी करता है। कभी किसी ने दगा करते इसे नही देखा और कभी गन्दी बाते बकते नही पाया। बहुत ही होनहार कुमार है।" आचार्य ने बालक की प्रशसा मे लम्बा भाषण दे डाला। सेठानी ने उसे पास बुलाया। नीचे से ऊपर तक देखा और उसे ही अपने लिये चुन लिया। सेठ जी भी बडे प्रसन्न थे।

"हाँ तो बेटा, तुम्हारा नाम ?" सेठ जी ने पूछा।

"अमृतचन्द्र।"

"ओह बहुत सुन्दर नाम है।"

"तुम हमारे साथ चलोगे ?"

"कहाँ ?"

"हमारे घर।"

"क्यो ?"

"हम तुम्हे अपने घर रखेगे। तुम हमारे बेटे बनकर रहना। हमारे पास कारे है, मोटर है, नौकर-चाकर है, बहुत बडा महल है हमारा। तुम ठाठ किया करना।"

"बेटा! तुम भाग्य के सिकन्दर हो, वरना यह सौभाग्य किसे नसीब होता है!" आचार्य ने अमृतचन्द्र को बहलाया।

पर यह क्या? बालक अनायास ही गम्भीर हो गया और बोला,

"नही! मै नही जाऊँगा।"

"क्यो ?" दम्पति और आचार्य सभी अमृतचन्द्र के इनकार से आश्चर्य-चकित रह गये।

"आप किसी और को ले जाइये। मै तो यही रहूँगा।"

"पर बेटा वहाँ तो तुम ठाठ करोगे।"

"मै यही खुश हूँ।"

बहुत समझाने-बुझाने पर भी अमृतचन्द्र नही माने तो उनकी इस हठ का कारण पूछा गया। उनका उत्तर उनकी प्रखर बुद्धि, स्वाभिमान, तथा उच्च विचारो का परिचायक था। वे बोले, "मै अनाथ नही हूँ। अनाथालय मे तो मैने आश्रय लिया है। सम्पत्ति मेरे पिता जी की कोई कम नही, और मेरे चार बडे भाई है। उनके पास किसी बात की कमी नही। पर जो सम्पत्ति मुझे मेरे घर से निकलवा कर अनाथालय म जाने पर विवश कर सकती है, उससे मुझे मोह नही है। मुझे सम्पत्ति नही चाहिये। आप किसी और को ले जाइये। मुझे केवल शिक्षा चाहिये और यहाँ उसका पूर्ण प्रबंध है। यदि भगवान् ने तुम्हारी सम्पत्ति सम्भालने के लिये कोई उत्तराधिकारी उत्पन्न करना जरूरी नही समझा तो उस सम्पत्ति का मालिक बनने वाला कोई काल्पनिक उत्तराधिकारी कैसे प्रसन्न रह सकता है।"

विद्यालय के आचार्य, अमृतचन्द्र की तीव्र बुद्धि के पहले से प्रशसक थे पर उन्हे यह मालूम न था कि उनका शिष्य इतना योग्य है और उसकी नसो मे वैराग्य का इतना महान् विचार दौड रहा है।

अमृतचन्द्र को यहाँ आये दो वर्ष होने को आये। उन्होने सस्कृत की

कितनी पुस्तके पढ डाली है। कक्षा मे उनका एकाग्रचित्त रहकर पढने का तरीका सभी को अपनी ओर आकर्षित कर लेता है।

शिक्षकों की शिक्षा

एक दिन अनाथालय के बालको को भोजन के लिए दो घरो से निमन्त्रित किया गया। उनमे से एक बडे पूँजीपति थे और एक साधारण सा व्यक्ति था। अनाथालय के सरक्षको ने पूँजीपति के घर का निमत्रण स्वीकार कर लिया और साधारण व्यक्ति का अस्वीकार कर दिया। इस पर उस व्यक्ति को बडा क्रोध आया और उस आवेश मे आकर सरक्षको को बुरा-भला कहा। उन पर यहाँ तक आरोप लगाया कि वे हलवा-पूरी और मूल्यवान् मिठाइयो के गुलाम है, दाल रोटी उन्हे कहाँ भाती है ! जिस समय इस बात का पता बालक अमृतचन्द्र को लगा, वे सरक्षको की इस नीति से असन्तुष्ट हो गये और उन्होने निश्चय कर लिया कि वे पूँजीपति के घर आज भोजन नही करेगे।

सभी छात्र अपने सरक्षको के साथ पूँजीपति के घर भोजन के लिए चले ये पर अमृतचन्द्र अकेले उस साधारण व्यक्ति के घर पहुँचे और उन्होने हाँ जाकर कहा, "भद्र ! हमे और हमारे सरक्षको को क्षमा करना ! मारे व्यवहार से तुम्हे जो कष्ट हुआ है उसके लिए हम प्रायश्चित्त करने को तैयार है। आप जो दण्ड हमे दे स्वीकार है।"

वह व्यक्ति उनसे बहुत प्रभावित हुआ और सरक्षको के सम्मुख उपस्थित होकर उसने अपने व्यवहार के लिये क्षमा माँगी।

अमृतचन्द्र ने सारे दिन उपवास रखा। सरक्षक गण को जब इस बात का पता चला, वे भी लज्जित हुए और अमृतचन्द्र की भूरि-भूरि प्रशसा की। जब समस्त बालक रेत के घर बनाने और बिगाडने मे सलग्न रहते, जब बालक ककर-पत्थरो से मन बहलाने मे व्यस्त होते, अमृतचन्द्र पुस्तको से उलझे रहते, विचारो मे डूबे होते और नेत्रो मे शून्य लिये न जाने किस ओर देखते रहते। कोई नही जानता, वे क्या सोचते है, क्या देखते है ?

एक मानव एक कुत्ता

वह सामने एक शव को चार आदमी कधे पर उठाये हुए ले जा रहे है। सब लोग 'राम-राम सत है' की आवाज लगा रहे है।

"कौन है भाई ! कौन चल बसा ?" किसी ने पूछा ।

"एक दुकानदार है बेचारा !"

"कौन दुकानदार ?"

"अरे वही जो पानवाली दुकान के पास हलवाई की दूकान करता था ।"

लोग उपेक्षापूर्ण दृष्टि डाल कर रह जाते है। अमृतचन्द्र को वात खटकी। लोग आते है और चले जाते है, जीवन-मरण का यह क्रम यो ही चलता रहता है। कोई नही जानता क्यो आते है और क्यो चले जाते है। कौन आया और कौन चला गया। वहुत से आने-जाने, जन्म लेने और मरने वालो के वारे मे यह भी पता नही चलता । ऊँह, यह भी कोई जीवन है ?

उस दिन मुहल्ले का एक कुत्ता मर गया है। कुत्ता मर गया है तो किसी को कुछ सोचने और चिन्ता करने की आवश्यकता नही होनी चाहिये पर लोग फिर भी जगह-जगह एकत्र होकर उसकी चर्चा कर रहे है। भई कुत्ता वहुत प्यारा था। वडा स्वामिभक्त । इसके रहते मजाल है कोई चोर मुहल्ले मे घुस आये। कभी किसी की रोटी उठाकर यह नही भागा। कभी किसी मुहल्ले वाले को काटा नही । सभी को होशियार चौकीदार की भाति यह जानता था ।

अमृतचन्द्र जी ने सुना । वे पुलकित होगये। एक वह इनसान था जो आया और चला गया। उसकी कमी किसी को नही खटकी। पर दूसरी ओर यह कुत्ता था, हैवान था, वेजवान, और मासूम पर इसके प्रति लोगो का इतना प्यार। इसकी इतनी चर्चा। वास्तव में वह आदमी इस कुत्ते से गया-गुजरा था। नही-नही, वे हैवानो से गया-गुजरा ऐसा जीवन नही बितायेगे कि लोगो को उनकी आवश्यकता ही महसूस न हो। वे एक आदर्श मानव वनेगे।

चक्षुहीन को प्राणदान

एक बुढिया अधी निस्सहाय बेवस और निर्धन है। जव वह अपने एक मात्र सहारे लाठी को लेकर सडक पर निकलती है, अनाथालय के वालक भी इसे परेशान करने में मनोरजन अनुभव करते है। वे उसे

छेडते है। उसकी लकडी पकड कर कभी उसे किसी नाली पर छो आते है, कभी उसे दीवार की ओर मुख करके खडा कर देते है और उसकी लाठी छीनकर कहते है—सडक है, सीधी चली जाओ। वह दीवार से टकरा जाती है। आशीर्वाद के स्थान गालियाँ उसके मुख से झरने लगती है। जैसे किसी मशीन-गन से अबाध गति से गोलियाँ निकलती हो। पर बालक है कि खिल-खिला कर हँस पडते है। बालको का अट्टहास बुढिया के रोम-रोम मे क्रोधाग्नि भडका देता है। पर अमृतचन्द्र है कि वे बुढिया की ऐसे समय उचित सहायता करते है और बालको की छेड-छाड उन्हे कभी नही भाती। इसलिए कभी बुढिया को किसी शरीर बालक के कारण परेशान होना पडता, कभी वह नाली मे गिर पडती या दीवार से टकरा जाती, उसके मुँह से चीत्कार निकलने के स्थान पर "बेटा अमृत" की पुकार निकलती। अमृत उसका, उस जैसी दुखियायो का, समस्त मानवता का, प्रकृति का लाल है न। वह सभी का साथी, सहयोगी और पथप्रदर्शक है और वह दिन सन्निकट है जब वह अन्धी दुनिया, अन्धे समाज का पथ-प्रदर्शक बनेगा।

वृद्धा कई दिन से सडको पर दिखाई नही दी। अमृतचन्द्र के लिए सडकें सूनी-सूनी नजर आने लगी। दो दिन बीते, तीन दिन बीते और जब पाँच दिन अर्थात् १२० घण्टे बीत गये तो वे चिन्तित हो गये। परेशान, उनका न किसी काम मे मन लगता है और न पुस्तके ही उन्हे भली लगती है। कौन जाने, बुढिया को क्या हुआ। कई से पूछा, किसी को कुछ ज्ञान हो तो बताये भी। मन नही माना। वे वृद्धा का घर पूछते-पूछते वही पहुँच गये। दूर एक टूटी सी झोपडी। अस्त-व्यस्त सी, लुटी-लुटी सी। जिसे देखकर ही मन की करुणा उमड पडे।

वृद्धा टूटी सी खटिया पर अचेत पडी थी। अमृतचन्द्र ने उसे सचेत करने के प्रयत्न किये। उसके नेत्र खुले तो पहला जो शब्द उसके कण्ठ से निकला वह था "अमृत।"

"माँ तुमने कैसे जाना कि मै हूँ ?"

"बेटा, अमृत के सिवा और हो कौन सकता है, मुझ अन्धी बेसहारा बुढिया का ?"

वृद्धा का प्यार भरा हाथ अमृतचन्द्र जी के सिर पर फिरने लगा। उन्होने अपने को धन्य माना।

"माँ, तुम्हें हुआ क्या है ?"

"बीमार हूँ बेटा ! भगवान् जाने अब मुझे अपने पास ही बुला लेना चाहते है क्या ? पर वह घडी कब आयेगी मुझे बडी इन्तजार है।"

अमृतचन्द्र ने बुढिया के हृदय मे बसी व्यथा को समझा और वे उस की सेवा मे लग गये। प्रतिदिन उसके लिए औषधि पहुँचाना, उसके लिए पानी भरना और अन्य काम करते रहे। बडे चाव से और बडी लगन से और कुछ दिनो मे प्रकृति-पुत्र अमृतचन्द्र की कृपा से वह वृद्धा स्वस्थ हो कर उनका गुणगान करती हुई सडको पर फिर देखी गई। नये प्राण देने वाले अमृतचन्द्र की प्रशसा ही उसका प्रिय विषय बन गया जिस पर वह दूसरो से बात करती।

गुरु-चरणों में

अनाथालय के सामने ही जैन उपाश्रय था सन्तो के लिये। प्रकृति अमृत-चन्द्र की भावनाओ को समझती थी और उसे ज्ञान था समय की आवश्यकता का। इसलिए तो सम्वत् १९९१ की बात है, प्रसिद्ध वक्ता, त्यागमूर्ति, पण्डितरत्न श्री स्वामी कस्तूरचन्द्र जी महाराज का चातुर्मास सौभाग्य से आगरे मे ही मनाया जाना था और वे उपाश्रय मे विराजमान थे। सन्तो के चातुर्मास का समाचार सुनकर अमृतचन्द्र जी पूर्ण चन्द्र की भाँति खिल उठे। उनकी कल्पनाओ के साकार होने का समय आगया था। उनके हिये मे कुलमुलाता सन्त अमृतचन्द्र अँगडाई लेने लगा।

दर्शन तो सन्तो के कितने ही करते है, चरण स्पर्श करते है, और उपदेश सुनकर झूम भी उठते है पर उनका प्रभाव कितनो पर होता है, यह कहना असम्भव है क्योकि स्वार्थ मानव की नस-नस में भरा है। सन्तो के दर्शन करने मे एक ही स्वार्थ होता है। पापकर्मों के लिये कोई परिणाम न भोगना पडे। हल्दी लगे न फिटकरी रग चोखे की बात है। मुक्ति केवल उपदेशो और दर्शनो से ही मिल जाय। यही इच्छा लेकर लोग अधिक जाते है पर अमृतचन्द्र स्वामी के दर्शन न किसी पापकर्म के

परिणाम के भय से करने गये थे और न किसी स्वार्थ पूर्ति की कामना से। दर्पण की भाँति साफ और गंगा-जल की भाँति पवित्र हृदय लेकर स्वामी जी के दर्शनो को गये।

भीड थी। दर्शनार्थियो का मेला लगा था। चरण छूने के उपरान्त अमृतचन्द्र ने स्वामी जी पर दृष्टि गडा दी। जैसे वे स्वामी जी के मुखमण्डल पर उनकी उच्चता और तपस्या को पढ लेना चाहते हों। ललाट पर तेज की आभा, नेत्रो मे आत्म-विश्वास और मुखमण्डल के समस्त अगो पर ब्रह्मचर्य। ओजपूर्ण मूर्ति देखकर अमृतचन्द्र जी हार्दिक रूप से नतमस्तक हो गये। पहली नजर मे उन्होंने अपने को गुरु-चरणो मे समर्पित कर दिया।

किसी दर्शनार्थी ने कहा, "स्वामीजी ! मेरे मन मे बहुत से प्रश्न उठते है। अपनी शकाओ का समाधान चाहता हूँ।"

अमृतचन्द्र जी बीच ही मे बोल पडे, "पहले मन धो डालिये, तब आइये। गुरुदेव शका-समाधान कर देगे।"

उपस्थित दर्शनार्थियो के नेत्र तुरन्त अमृतचन्द्र पर जा टिके। और गुरुदेव ! वे तो एक ही दृष्टि मे भाँप गये। देखने मे और आयु मे बालक है, अभी किशोर अवस्था के ही प्रागण मे क्रीडा कर रहा है, पर है अन्तर मे असीम ज्ञान-पिपासा। छाती मे एक विशाल हृदय और हिये मे कुछ कर गुजरने की कामना। गुरुदेव अमृतचन्द्र की वाक्पटुता, चातुर्य और योग्यता की ओर आकृष्ट हुए बिना न रह सके।

अनाथ से सनाथ

उनकी गुरुदेव के दर्शनो की प्यास कभी न बुझती थी। सारे दिन उन्ही के चरणो मे बैठे रहने की बलवती कामना तडपती रहती और ज्योही वे विद्यालय से अवकाश पाते गुरुचरणो मे जाकर मस्तक रख देते, ऐसा मस्तक जिस पर ओज की जिन्दगी नृत्य करती रहती थी।

"यह अनाथ बालक बडा ही चतुर है स्वामी जी।" किसी ने कहा।

"नही गुरुदेव ! मै अनाथ नही हूँ। यदि था भी तो अब नही।" अमृतचन्द्र बोले।

"अब क्या बात हो गई ?" किसी ने पूछ लिया। स्वामी कस्तूरचन्द्र जी मौन रह कर सुनते रहे।

"गुरुदेव के चरणो म आकर भी कोई अनाथ रह सकता है ?"

गुरुदेव का मौन भग हुआ। "अमृत ! तुम एक होनहार किशोर हो। अपने जीवन को त्याग-तपस्या के साँचे मे ढालना।"

"साँचा कैसा हो, यह तो आपके निर्णय करने की वात है। मैंने तो आपके चरणो में ही अपने आप को समर्पित कर दिया है।"

अमृतचन्द्र की बात सुन कर गुरुदेव को स्पष्ट हो गया कि अमृत-चन्द्र मे प्राकृतिक गुणो का भण्डार है। वह एक दिन अवश्य ही एक दिव्य ज्योति सिद्ध होगा।

चातुर्मास मे हुए उपदेशो को अमृतचन्द्र वडी सावधानी से, मन लगा कर और एकाग्रचित्त होकर सुनते रहे और कुछ न कुछ रत्न जो गुरुदेव के मुखारविन्द से निकलते थे, अमृत अपनी गाँठ बाँध ही लेते थे। अपने जीवन मे उतार देने के लिये उन सारे उपदेशो को हृदय-पटल पर उन्होने अकित कर लिया।

पर अनाथालय के सरक्षको को अपने विद्यालय के रत्न को गुरु-चरणो मे समर्पित कर देने की इच्छा कुछ जँची नही। अमृतचन्द्र की स्पष्ट-वादिता और वास्तविकतापूर्ण वाते कुछ-कुछ उन्हे खटकती थी। गुरु-वाणी का अमृत-पान करने से रोकने और वैराग्य के अकुर को फूलने-फलने से रोकने के लिए अमृतचन्द्र पर कुछ प्रतिवध लगा दिये गये। पर त्याग, तपस्या और मुक्ति के मार्ग का अवलोकन करने वाले युग-पुरुषो को वन्दी-गृहो की प्राचीरे और लोहे की मोटी-मोटी भारी शृखलाएँ पथ-विमुख नही कर सकती। ससार की कोई शक्ति भी उन्हे रोकने में सफल नही हो पाती। इतिहास साक्षी है कि पुण्य आत्माओ का रास्ता साफ करने के लिये कभी प्राचीरो ने भी अपने सर झुकाए है, सगीनो और तलवारो ने भी अपने स्वभावो को त्याग दिया है, शृखलाओ ने स्वय अपने हृदय चीर कर उन्हे रास्ता दिया है।

कॉटों भरी राह पर

रात्रि का घोर अन्धकार नगर पर व्याप्त है। अनाथालय के सभी वालक और कार्यकर्ता खर्राटे भर रहे है पर यदि किसी के नेत्रो मे निद्रा नही है तो वे है अमृतचन्द्र। उनका ध्यान गुरु-चरणो मे है। वे प्रतीक्षा में

है उस समय की, जब वे सोये हुए इन लोगो को छोडकर गुरु-चरणो मे जा पहुँचे। सडक के उस ओर सामने ही तो उपाश्रय है।

क्योकि ––

यस्या रात्रौ समे लोकाः शेरते मोहनिद्रया।
तस्यां निर्मोहिणः सन्तः कुर्वते धर्मजागरम्॥

(जिस रात्रि मे लोग मोह निद्रा मे सोते है श्रेष्ठ सयमी जन उस समय धर्मजागरण करते है) और वे उपाश्रय मे पहुँच ही गए।

स्वामी कस्तूरचन्द्र भी जाग रहे है। अमृतचन्द्र को सामने देखकर बोले, "मुझे विश्वास था तुम जरूर आओगे।"

"तो फिर गुरुदेव मुझे सदैव के लिये ही अपने चरणो मे स्थान देने की स्वीकृति क्यो नही प्रदान करते ?"

"अमृतचन्द्र ! तुम्हारी योग्यता और तुम्हारे अलौकिक गुण मुझे ज्ञात है, पर यह पथ बडा दुर्गम है, बहुत ही कटकपूर्ण। पग पग-पर त्याग चाहिये, पग-पग पर परीक्षा, पग-पग पर साधना चाहिये।"

"पथ कितना भी दुर्गम हो, मै उस पर बढूँगा। मै प्रत्येक त्याग करूँगा। साधना मेरा कर्तव्य और पथ की चट्टानो से टकराना मेरा प्रिय कर्म होगा। मै आपके प्रत्येक आदेश का पालन करूँगा। एक सुशिष्य का आदर्श प्रस्तुत करना मेरा लक्ष्य होगा क्योकि यही मुझे उस लक्ष्य की प्राप्ति मे सहायक होगा जिसके लिये वैराग्य ने मेरे अन्तर मे जन्म लिया है।"

अमृतचन्द्र के शब्द स्वामी जी के मन पर अपना आशातीत प्रभाव डालते गये।

महात्मा कस्तूरचन्द्र जी ने अमृतचन्द्र को टटोलने का फिर प्रयत्न किया।

"अमृत तुम सन्यासी बनना चाहते हो ?"

"हाँ।"

"क्यो ?"

"मै जीवन-मरण और सुख-दुःख के बन्धनो से मुक्त होना चाहता हूँ और खोजना चाहता हूँ कि यह माया-जाल है क्या ?"

"तो तुम मुक्ति चाहते हो ?"

"हाँ, स्वय अपने लिये भी और जग के लिये भी। अधकार के बधन

म रहकर मानवता के पथ को छोड देने वाले मानव को एक नया पथ चाहिये, मुक्ति का नया पथ। उस पथ की खोज ही मेरा महान् लक्ष्य है।"

"इतनी बाते तुम कहाँ से सीखे ?"

"जीवन की कटु वास्तविकताओ और मृत्यु के भयकर ताण्डव ने मुझे यह सब सोचने पर विवश कर दिया है।"

"तो फिर केवल सन्यासी रूप ही तुम्हें तुम्हारे लक्ष्य तक नही पहुँचा सकता। सन्यासियो ने तो भारत की छाती पर पहले से ही एक विशाल सेना, क्षुधा-तृप्ति के लक्ष्य को लेकर चलने वाली विशाल सेना, खडी कर रखी है। आज सन्यासी जीवन को कलकित कर दिया गया है। यदि केवल सन्यासी रूप ही धरना हो तो मै कहूँगा, इस विशाल सेना की गणना मे एक अक की वृद्धि और मत करो। यदि तुम्हे अन्वेषण ही करना है, कोई नया पथ ही खोजना है, मानवता की सेवा ही करनी है तो सन्यासी रूप के साथ सत्य-शोधक का रूप भी ग्रहण करो। तुम्हारा कल्याण निश्चित है।"

कस्तूर चन्द्र जी के शब्दो में आवाहन था, एक ललकार, सत्य-शोधक बनने की पुकार।

अमृतचन्द्र ने चरणो में सिर रख दिया।

'गुरुदेव ! मुझे अपने साथ ले चलिये। मुझे मेरा गुरु मिल गया है। मै वह बनूँगा जो आप चाहेंगे, जिसकी मेरे देश को आवश्यकता है, जिसकी मानवता को चाह है।"

धीरे-धीरे दोनो चाँद डूब गये---आकाश का भी और पृथ्वी का भी। नीले आकाश के मानसरोवर में तैरता चाँद डूब गया कदाचित् पेदी में काला छिद्र होने के कारण, और पृथ्वी का हिये में टीस होने के कारण वैराग्य, सन्यास और तपस्या के विचारो में।

पूर्व में लाली उग आई। जगती-तल की माँग मे सिन्दूर भर गया और अनाथालय के सरक्षको ने देखा अमृतचन्द्र को आत्म-विभोर हुए। उसके अग-अग से हर्ष टपक रहा था। उस के पैर पृथ्वी पर नही पड रहे थे, जैसे वायु के गोले पर पैर रखता जाता हो। कारण लोगो को ज्ञात हुआ तो लोग स्तब्ध रह गये। इतनी कम आयु मे वैराग्य का अनुराग आश्चर्य की ही तो बात थी।

उपाश्रय में लोग एकत्र हो गये। कही कोई भूल तो नही हुई है। कही

अमृतचन्द्र किशोरावस्था के कारण बहक तो नही गया। पूछा गया, "तुम गुरुदेव के साथ जाना चाहते हो ?"

"हाँ।"

"क्यों ?"

"संन्यासी जीवन मे प्रवेश करने के लिये।"

"क्यों ?"

"मेरे जीवन का लक्ष्य यही है।"

अमृतचन्द्र के शब्दो में दृढ विश्वास का प्रतिबिम्ब था। लोग चुप रह गये।

चातुर्मास समाप्त हुआ और अमृतचन्द्र के जन्म-भूमि को अन्तिम नमस्कार करने, जीवन के नये मोड़ पर बढने का समय आगया।

सन्त कस्तूरचन्द्र जी ने एक बार पुन कहा, "सोच लो ! फिर सोच लो ! इस राह मे काँटे ही काँटे है, त्याग ही त्याग है। राह पर पग रखने से पूर्व खूब सोच-समझ लो। कही राह पर पहुँच कर पग लड़खडाया तो.............."

"गुरुदेव ! दृढ निश्चय करके ही पग उठा रहा हूँ," अमृतचन्द्र बीच ही मे बोल पडे, "मुझे काँटो से प्रेम है फूल से नही। फूल से तो सभी को प्रेम होता है पर मानव वह है जो काँटो से प्रेम करे, काँटो पर चले।"

"गृहस्थी में बडा आकर्षण है।"

"कुछ भी हो।"

"सन्यास-जीवन बड़ा रूखा है।"

"जो भी हो।"

"सन्यास मे मन को वश मे करना होता है।"

"स्वीकार है।"

"तुम युवावस्था के द्वार पर खडे हो। तुम्हारे सामने वह उन्मादी आयु खडी है, जिसमे व्यक्ति अपने आपे मे नही रहता। सब इच्छाओ, कामनाओ का दमन करना होता है। एक वडा सघर्ष करना पडता है।"

"सब कुछ करूँगा।"

"तुम्हे हमारे साथ पैदल चलना होगा, तख्त या भूमि पर सोना पड़ेगा, वाल हाथो से उखाड़ने होगे, केवल चादर में पौष-माघ की रक्त जमा

देने वाली सरदी की राते गुजारनी होगी, भिक्षा माँग कर खानी होगा।"

"सब स्वीकार है।"

"पुन सोचो।"

"नही-नही, मै वहुत कुछ सोच चुका हूँ। वहुत विचार किया है।"

गुरुदेव सन्तुष्ट हो गए। और फिर अमृतचन्द्र ने अपनी जन्म भूमि और यमुना की मस्त लहरो को अन्तिम नमस्कार कहा। चल पडे काँटो भरी राह पर, अधरो पर मुस्कान, हृदय मे असीम उत्साह और नेत्रो में आशाओ का ससार लिये। उस पथ पर जिस पर ईसा चले, कबीर चले, गाँधी चले और महावीर चले।

छठा अध्याय

चर्चा चलती रही

बाजारो मे धूम मची है, नर-नारी तेजी से अपने कदम एक विशेष दिशा की ओर बढा रहे है। नारियो के झुण्ड के झुण्ड, जिनमे कुमारी भी है, विवाहिता और विधवाएँ भी, अल्हड युवति भी और वृद्धा भी। और कही पुरुषो का झुण्ड, जिनमे युवको से लेकर वृद्ध तक। सबके पग एक ही दिशा मे। सबकी मजिल एक ही।

आज महात्मा कस्तूरचन्द्र जी का धर्म-उपदेश होगा। धार्मिक उपदेशा-मृत पान करने के लिए लोगो मे उत्साह है, और उत्साह से अधिक श्रद्धा उन्हे सभा-स्थल की ओर ले जा रही है। अबकी बार उनके साथ एक चौदह वर्षीय युवक भी है, कोकिला-कण्ठ लिये हुए और वाणी मे आकर्षण तथा जादू—ऐसा जादू जो श्रोताओ के हृदय मोह लेता है। गुरुदेव कस्तूर-चन्द्र के प्रति श्रद्धा और अमृतचन्द्र की मधुर वाणी तथा महान् योग्यता का आकर्षण सयुक्त रूप से नगरनिवासियो को अपनी ओर आकर्षित कर रहा है।

"भई, हमने तो कल उसका भाषण सुना। बहुत अच्छा बोलता है। इतनी कम आयु में इतनी योग्यता, सुनने वाले दाँतो तले उँगली दबाकर रह गए।" सभास्थल की ओर अग्रसर होने वालो मे से एक ने कहा।

"अमृतचन्द्र का जिक्र कर रहे हो न ? हाँ भई, यह छोकरा सन्त कस्तूरचन्द का नाम अमर कर देगा। सस्क। कितनी फटा-फट बोलता है।" दूसरे ने अपने साथी का समर्थन करते हुए कहा।

एक वृद्ध ने बीच मे हस्तक्षेप करते हुए कहा, "भइया ! उसकी जिह्वा पर तो भगवान् विराजते है। वरना इतनी कम उम्र मे इतना जादू, इतना ज्ञान ? कितने ही लोग वुड्ढे हो जाते है, इतनी बाते नही जानते। अपने यहाँ सन्त बहुतेरे आये, पर बहुत से तो बस यो ही है। और यह छोकरा तो अच्छे-अच्छो के कान काटता है।"

स्त्रियो मे भी चर्चा है ।

एक बोली, "अपना छोकरा १८ वर्ष का लोठा लोग होगया, वात भी करनी नही आती । और गुरु जी के साथ जो छोकरा है, कल उसने भाषण दिया, मइया री मइया ! हजारो आदमी थे, सारे के सारे ही आँख फैला-फैला कर देखते रह गए ।"

"वहन, श्रीकृष्ण भी तो वालकपन मे ही अद्भुत वाते करने लगे थे । होनहार विरवान के होत चीकने पात ।"

चर्चाएँ चलती रही और लोग सभास्थल पर आकर एकत्रित होते रहे । सैकडो नही, सहस्रो व्यक्ति है, जिनमे जैनी भी है और अन्य धर्मो के अनुयायी भी । ऐसे लोग जो विशेपतया गुरुदेव कस्तूरचन्द्र जी की वाणी सुनने के लिए ही आये है और वे लोग जिन्हें जैन धर्म से दूर का वास्ता भी नही पर अमृतचन्द्र के अलौकिक गुणो के दर्शन करने के लिए आये है । सभी सभा-स्थल पर उत्सुकता को लिये जमे है ।

कौन यह मंसूर है

सन्त कस्तूरचन्द्र जी के मुखारविन्द से रत्न झर रहे है । उपदेशामृत से लोग कृतकृत्य हो गये । अमृतचन्द्र के भाषण ने लोगो को चकित कर दिया । इतनी योग्यता, इतना जादू ! मानो प्रकृति ने उन्हे विशेप गुणो से सम्पन्न करके ही ससार मे अवतरित किया हो ।

भाषण समाप्त होते ही लोगो ने मुक्त कण्ठ से अमृतचन्द्र की प्रशसा करना आरम्भ कर दिया । और दूर कोई गा उठा । उर्दू के एक प्रसिद्ध कवि के शान्ति-गीत के कुछ पद्य वायु मे घुलते जा रहे थे

कौन मुजाहिद है यह,
कौन यह मसूर है,
आज हर एक गाम पर, किसने यह दोहरा दिया
किस्साये दारो रसन

और अभी-अभी अमृतचन्द्र जी ने ससार के मोह-मायाजाल, मोह-शृखलाओ के वन्धन पर लच्छेदार भाषण दिया था ।

गीत की ध्वनि फिर उठी ।

आंख से टपके हुए खून की मौजे है यह
हो के रहेगा फना, शब्द का सफीना यहीं
जर का निजामे कुहन ।

और वह गाता रहा .

दौरे खिजा की कसम तू गमे ज़िन्दगी
तू ही दिले अंजुमन ।

अमृतचन्द्र के भाषण में एक ज्वाला थी---समाज की रूढिवादिता को भस्म कर डालने के लिए लप-लपाने वाली लपटे । धन, दौलत, वैभव और पूँजी के विषैले नागो के जबडो मे फसे इसानो के मानवता के प्रति दानवीय कृत्य और पाप तथा असभ्यता के नग्न ताण्डव पर करारी चोट थी उनके भाषण मे । उनके शब्दो मे जीवन था, हँसता-खेलता हुआ जीवन और एक आवाहन था, मानव को अगडाई लेकर जागृत होने का आवाहन ।

अमृतचन्द्र दो-ढाई वर्ष से कस्तूरचन्द्र जी महाराज के साथ है । इतने कम समय मे ही उन्होने कितने ही धर्म-ग्रथ पढ डाले है । सस्कृत से उन्हे हार्दिक लगाव है, अतएव सस्कृत की कितनी ही पुस्तके उन्होने पढ डाली है । साहित्य मे उनकी विशेष अभिरुचि है इसलिए कितनी ही हिन्दी की साहित्यिक पुस्तके वे पढ चुके है और उर्दू व फारसी की ओर भी अब उनका ध्यान आकृष्ट हुआ है ।

दिल्ली की ओर

वे गुरुदेव कस्तूरचन्द के साथ ही भ्रमण कर रहे है और भ्रमण मे ही उनकी शिक्षा चल रही है । कितनी शकाएँ थी जो उनमे सनातनधर्म के परिवार मे पलने के कारण उत्पन्न हुई थी; सभी का समाधान गुरुदेव ने कर दिया है । प्रखर बुद्धि के कारण उन्हे प्रत्येक बात शीघ्र ही हृदय-पटल पर अकित करने में कोई कठिनाई नही होती । उनकी बुद्धिमत्ता से प्रभावित होकर अब कस्तूरचन्द्र जी महाराज उन्हे सभाओ में भाषण देने के लिए भी आज्ञा दे देते है ।

अध्ययन, शिक्षा और भाषण, त्याग और तपस्या की क्रियाएँ चलती रही, चलती ही रही । और अमृतचन्द्र का ज्ञान-भण्डार नये-नये रत्नो से भरता ही रहा । पर उनकी ज्ञान-पिपासा यो शान्त होने वाली नही है । वे

पुस्तके और गुरु-वाणी तो पढते ही है, शास्त्रों मे तो सत्य-शोधन करते ही है पर ससार को भी पैनी दृष्टि से देखते है। समस्याएँ समझते है, उन पर विचार करते है और उनके हल खोजते है, क्योकि उन्हे सम्पूर्ण मानवता का पथ जो प्रशस्त करना है।

विहार करते-करते गुरुदेव और अमृतचन्द्र दिल्ली पहुँचे।

यह दिल्ली है, भारत की राजधानी जिसने कितने ही राज्याभिषेक देखे है और क्रूर पैरो द्वारा मसले जाते हुए ताज भी देखे है। दिल्ली ने वैभव की हिलोरे भी देखी है और रक्त-सागर की लहरे भी। इस दिल्ली ने पृथ्वीराज चौहान को भी देखा है और गजनवी को भी। दिल्ली ने तैमूर तथा नादिरशाह की रक्त-पिपासु खड्ग के वार भी सहे है और बहादुर-शाह 'जफर' का युग भी देखा है। यही महात्मा गाँधी का रक्त बहा था। लाल किला दिल्ली के कितने ही उत्थान-पतन के गीत दोहराता है। यह नगर कई बार उजडा और कई बार बसा। इसलिए इस नगर की भूमि मे रक्त भी है और गीत भी, ऐश्वर्य और समृद्धि के गीत।

दिल्ली के जैन समुदाय मे महाराज के आगमन का समाचार बिजली की तरह फैल गया। सहस्रो श्रद्धालु भक्त गुरुदेव के दर्शनार्थ पहुँचे। मेला लग गया। सभी मे अमृतचन्द्र के गुणो की चर्चा भी होने लगी। अमृतचन्द्र उन दिनो सभी के आकर्षण-केन्द्र थे। उनकी ख्याति हवा के घोडो पर सवार होकर उनसे पहले ही आगे पहुँच जाती थी। सदर बाजार के स्थानक में गुरुदेव कस्तूरचन्द्र जी महाराज के बडे गुरु-भाई स्वर्गीय श्री उदयचन्द्र जी महाराज पहले ही से अपनी शिष्य-मण्डली सहित विराज-मान थे।

कसौटी पर

अमृतचन्द्र जी अब इस योग्य हो गये थे कि उनका दीक्षा-सस्कार सम्पन्न हो सके। अत दिल्ली मे ही उक्त सस्कार किये जाने का निश्चय हुआ। जो तिथि अमृतचन्द्र जी की दीक्षा के लिए निश्चित हुई, उसी तिथि को पण्डित नरपति राय महाराज के भी दो शिष्यो का दीक्षा-सस्कार होना था। प्रश्न यह उठा कि इन तीनो मे कौन बडा है कौन छोटा ? यह एक ऐसा प्रश्न था जो मानव-हृदय मे छुपी महत्त्वाकाक्षाओ की देन था। पर प्रश्न

उठने पर इसका उत्तर भी स्पष्ट था। अमृतचन्द्र जी के अलौकिक गुण किसी से भी अपने पक्ष मे निर्णय ले सकते थे। पर बाजी लग गई।

सहस्रो नर-नारियो के सम्मुख वाद-विवाद उठ खड़ा हुआ। सभी के हृदय की धडकनो में उत्तर स्पष्ट था पर बातों से योग्यता की उच्च श्रेणी मार लेने वालो को कौन समझाए ?

निश्चय हुआ कि परीक्षा ले ली जाय। यह निश्चय दूसरे पक्ष के लिए पराजय का सकेत था। अमृतचन्द्र जी की योग्यता को कसौटी पर रख दिया गया और

'आवाज़-ए खल्क को नक्कार-ए खुदा समझो।'

वाली कहावत चरितार्थ हुई। कसौटी ने चीख-चीख कर बता दिया कि मुनि अमृतचन्द्र खरे सोने है। इस रत्न की आभा ने दूसरे दमकते हुए पाषाण-खण्डो पर विजय पायी। पर पराजितो को इस निर्णय से सन्तोष न हुआ। वे इस अटल सत्य को स्वीकार करने को तैयार नही थे कि अमृतचन्द्र से नरपतिराय महाराज के शिष्यो का मुकाबला करना सूर्य को दीपक दिखाने के समान है। अब दूसरा उपाय निकाला गया। वह था लोकतान्त्रिक उपाय। जैन धर्म के अनुयायी मत देकर निर्णय दे कि इन तीन सन्तो मे कौन सर्वश्रेष्ठ है।

लोकमत बोल उठा

नगर और नये बाजार की जैन जनता उमड पडी अपने मतो द्वारा उस सत्य पर अपने समर्थन की मोहर लगाने के लिए। नरपतिराय जी ने अपने शिष्यो के गुण-गान मे अपनी पूरी शक्ति लगा दी। प्रचार हुआ। श्रद्धा और गुरु-भक्ति की कसौटी के नाद उठे। सारा जैन समुदाय उद्वेलित हो उठा। भावी सन्तो की योग्यता का प्रमाण लोकमत का बहुमत हो गया और अन्त मे विजय सत्य की हुई। लोकमत ने अपना निर्णय दिया कि अमृतचन्द्र जी सर्वश्रेष्ठ है। उनकी योग्यता को चुनौती नही दी जा सकती।

सत्य को न मानने का ही यदि किसी ने निर्णय कर लिया हो तो फिर समस्या बडी जटिल हो जाती है। पर जटिल से जटिल समस्याओ के भी हल निकल आते है। लोकमत को भी विपक्षियों ने ठुकरा दिया। लोगो

को आश्चर्य हुआ। पर यदि सत्य, जो कटु था पर ध्रुव था, उन सन्तो के सम्मुख रख दिया जाता तो कदाचित् क्रोध को पाप समझने वाले वे सन्त क्रोधाग्नि में न झुलसने लगते।

समस्या पुन उलझ गई। केवल योग्यता को ही सर्वश्रेष्ठता का मापदड माना जाता तो परीक्षा के परिणाम की घोषणा ही ने समस्या का अन्त कर दिया होता और यदि लोकमत को ही श्रेष्ठता की कसौटी माना जाना चाहिए तो भी नरपतिराय जी को सन्तुष्ट हो जाना चाहिए था। पर जब वे इन दोनो उपायो पर विश्वास प्रगट करने के उपरान्त भी अपना इच्छित परिणाम न पाने के कारण मुकर गये तो एक ही उपाय शेष था कि वे किसी को न्यायाधीश बना दे और उसके निर्णय को अतिम माने। नरपतिराय जी ने सोच-समझकर आचार्य काशीराम जी महाराज को निर्णायक चुना। वे उन दिनो डेरा मावटी (जि० करनाल) मे विराजमान थे।

दिल्ली के कुछ प्रतिष्ठित जैनी सज्जनो को नरपतिराय जी महाराज ने अपने शिष्यो के साथ आचार्य काशीराम जी की सेवा मे उक्त केस मे वकालत के लिए भेजा। दूसरी ओर से अमृतचन्द्र जी अकेले गये। न उन्हे वकील की आवश्यकता थी और न सिफारिशो की। उनकी योग्यता उनके ललाट के तेज की भाँति दीप्तिमान् थी। उनकी प्रखर बुद्धि और शास्त्रो का ज्ञान उन्हे सर्वश्रेष्ठ बनाये हुए था।

आचार्य काशीराम जी के चरणो में यह काफला पहुँच गया। एक ओर अनेको व्यक्ति है दूसरी ओर केवल एक व्यक्ति, केवल एक। तराजू के एक पलडे पर सिफारिशे, चापलूसी, वकालत, अहकार और महत्त्वाकाक्षा थी और दूसरे पलडे मे योग्यता, विद्वत्ता और तेजस्वी व्यक्तित्व। आचार्य काशीराम जी के सामने दोनो पक्ष थे। वे उस समय न्यायाधीश की स्थिति में थे और उनके कधो पर एक महान् उत्तरदायित्व आ गया था।

सर्वश्रेष्ठता का प्रमाण

आचार्य जी ने नरपतिराय जी महाराज के दोनो शिष्यो को अलग बुला कर पूछा कि "तुम्हारे सर्वश्रेष्ठ होने का कोई प्रमाण?" दोनो ने एक स्वर से कहा, "हम बडे गुरु के शिष्य है, हम बडे है। लोग हमारे

गुरुदेव को ही उच्च स्थान देते है। और विश्वास न आये तो दिल्ली के उन सज्जनो से पूछ लीजिये जो हमारे साथ आये है।"

"क्या बडे गुरु के शिष्य होने से ही कोई सर्वश्रेष्ठ हो जाता है ?" आचार्य जी ने पूछा ।

उन्होने छाती तानकर कहा,"बडे गुरुओ के शिष्य भी बडे ही होते है इसलिए सर्वश्रेष्ठ पद पाना हमारा अधिकार है।"

आचार्य जी ने फिर हमारे चरित्र-नायक को बुलाया और उनसे पूछा,"तुम क्या चाहते हो ?"

"दीक्षा-सस्कार सम्पन्न कराना।"

"और कुछ ?"

"और कुछ भी नही," अमृतचन्द्र ने उत्तर दिया। शान्ति और सतोष के चिह्न उनके चेहरे पर स्पष्ट थे ।

"क्या तुम अपने लिए सर्वश्रेष्ठता की घोषणा नही चाहते ?"

"नही।"

अमृतचन्द्र जी का उत्तर सुनकर आचार्य जी को बडा अचम्भा हुआ।

बात स्पष्ट करते हुए अमृतचन्द्र जी बोले, "महाराज ! किसी छोटे को बडा कह देने से वह बडा नही हो जाता और बडे को छोटा पद मिल जाने से उसका बडप्पन नही छिन जाता । व्यक्ति की योग्यता ही उसके छोटे या बडे होने की कसौटी है। यदि मेरे मे योग्यता, विद्वत्ता और साधु-जीवन के समस्त नियमो की दृढता से पालन करने की शक्ति है तो एक दिन मुझे स्वय उच्च पद मिल जायगा, सन्त-समाज दे या न दे, धर्म-परायण जनता अवश्य ही वही पद देगी, जिसके मै योग्य हूँ। इसलिए मुझे सर्वश्रेष्ठता के सर्टिफिकेट की आवश्यकता नही है।"

अमृतचन्द्र जी की बाते सुनकर आचार्य काशीराम जी के वदन पर उल्लास झलक पडा। वे बोले, "अमृतचन्द्र ! दूसरे प्रतियोगी तो अपने सर्वश्रेष्ठ होने का दावा करते है और अपने लिए सर्वश्रेष्ठ कहलाना अपना अधिकार मानते है, फिर तुममे इस ओर से इतनी उदासीनता क्यो ? लोग केवल योग्यता ही नही देखते वे तो उच्च पद के सामने अधिक नतमस्तक होते है।"

"मै अपने सामने अपने पद के प्रभाव से किसी को नतमस्तक

नही कराना चाहता। मुझे सन्यासी-जीवन के प्रति अनुराग है। मुझे मुक्ति-पथ पर बढने वाला एक उच्च मानव बनना है। आचार्य जी! अपने गुरुदेव की आज्ञा और समस्या का अन्त करने के लिए ही मै आपके चरणो मे आया हूँ, आपसे सर्वश्रेष्ठ के पद की भिक्षा माँगने नही।"

आचार्य जी ने अमृतचन्द्र की बात सुनकर उन्हे परख लिया और वे समझ गये कि सत्य किधर है। और फिर तराजू का वह पलडा जिसमे नरपतिराय जी के शिष्य अपने वकीलो के साथ थे, अकस्मात् ही ऊपर उठ गया। नरपतिराय जी की आशाओ पर यहाँ भी तुषार-पात हुआ। आचार्य जी ने निर्णय दिया कि निस्सन्देह अमृतचन्द्र ही तीनो मे सर्वश्रेष्ठ है और 'बडा' घोषित करने योग्य है।"

यह समाचार सुनकर दिल्ली और सब नगरो की जनता गद्गद हो गई। जिसने अमृतचन्द्र की योग्यता और ज्ञान के सामने सहर्ष श्रद्धा के पुष्प समर्पित किये थे।

दीक्षा-संस्कार

उस दिन सम्वत् उन्नीस सौ चौरानवे की वैशाख सुदी दूज थी। आज अमृतचन्द्र जी का राज्याभिषेक होना है, राज्यतिलक का शुभ दिन है आज। उन्हे न किसी राज्य का शासक बनना है और न किसी वैभवपूर्ण गद्दी का स्वामी ही। उन्हे तो ससार से विरक्ति और सन्यास का तिलक होना है जिसका, मूल्य उनके नेत्रो में राज्य-तिलक अथवा राज्याभिषेक से किसी तरह भी कम नही।

अधकार ने दम तोड दिया। उषा जागी, लाल-लाल रग लिये, जैसे किसी राज्य-तिलक के लिए रोली का अबार बखेर दिया गया हो, और फिर सूर्य की स्वर्णिम किरणे फूटी जैसे आकाश स्वर्ण लुटा रहा हो, स्वर्ण की वर्षा हो रही हो, किसी उत्सव, पर्व अथवा विजयो-ल्लास के समारोह पर।

घडी की सुइयाँ बेचैन है। उसके हृदय से कोई राग झकृत हो रहा है, एक विशेष लय में। और देखते ही देखते आठ बज गए—प्रात काल के आठ बजे।

सहस्रो नर-नारी उपस्थित है, लोगो के नेत्रो मे उत्साह भी है

हर्ष भी और स्वागत का भाव भी। और गणी श्री उदयचन्द्र जी महाराज ने अमृतचन्द्र जी को अपने कर-कमलो द्वारा साधुवृत्ति का बाना दे दिया। राज्य-तिलक होगया। अमृतचन्द्र आज वैधानिक रूप से सन्यासी बन गये। वे अमृतचन्द्र, साधु-वृत्ति जिनका स्वभाव है और तीन वर्ष से जो गुरुदेव के चरणो मे साधु-वृत्ति की ही शिक्षा लेते रहे है, जिनका जीवन ही त्याग, तपस्या का प्रतीक है, जिन्होने सन्यास के लिए नेत्र खोले है और जिनके जन्म पर एक दिन आकाश वाणी के रूप मे श्रीकृष्ण की घोषणा दोहराई गई थी —

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥

सातवाँ अध्याय

संन्यासियों के कल्याण का व्रत

सहस्रो नर-नारियो के मुक्तकण्ठ से निकले आकाशभेदी जय-जयकारो के बीच दीक्षा-सस्कार सम्पन्न हो गया और महात्मा कस्तूरचन्द्र जी प्रफुल्लित हो उठे कि उनका शिष्य सन्यासी-जीवन के प्रथम पृष्ठ से ही विजय-श्री प्राप्त कर रहा है पर अमृत मुनि जी गहन चिन्तन मे डूब गये। उनकी मनोकामना पूर्ण हुई थी। उन्हे सन्यासी का वाना मिला था, सनाढ्य वश मे जन्म लेकर भी वे जैन समुदाय के सन्यासी और वह भी विद्वान् सन्यासी बन गये थे। जीवन के इस अध्याय मे प्रविष्ट होते हुए उन्हे अपार हर्ष होना चाहिए था पर सन्यासी की श्रेणी मे पदार्पण करने के उपरात अब उनके सम्मुख एक गम्भीर और महान् कर्तव्य आ गया था। वे सोचने लगे, गृहस्थ-जीवन व्यतीत करने वाले मानव समुदाय के साथ-साथ पुण्य आत्माओ की श्रेणी को प्राप्त सन्यासी कहलाने का अधिकार रखने वाले मनुष्यो के कल्याण का मार्ग प्रशस्त करना उनके लिए एक नया उत्तरदायित्व था। दीक्षा-सस्कार के अवसर पर उठे प्रश्न ने उन्हे यह सिद्ध कर दिया था कि अधकार केवल गृहस्थियो के हृदय पर ही नही, सन्यासियो के हृदय मे भी कुँडली मारे बैठा है। अब तक उन्होने केवल अपने गुरुदेव को ही देखा और परखा था और उन्हे सर्वश्रेष्ठ मानव मानकर उनके चरणो पर अपना जीवन समर्पित कर दिया था पर उन्हें क्या पता था कि सन्यासी के पुण्य बाने मे महत्त्वाकाक्षा, ईर्ष्या और छल-फरेब साधारण आदमी की भाति विद्यमान है। तथाकथित सन्यासी भी पथ-भ्रष्ट व्यक्तियो के स्तर से ऊपर उठे हुए नही हैं। सन्यासी श्रेणी में छाये दोषो के साम्राज्य को प्रथम बार देखकर ही वे चिन्तित हो गये।

और अभी वे इस चिन्ता मे ही थे कि उन्हे सन्यासी के वेष मे चलने वाली अनुचित घटनाओ का पता चला। उनका मन सन्तप्त हो

गया । मानव की यह अधोगति ! हा ! यह तो असह्य है । मानव समाज को मुक्ति-पथ दर्शाने वाले ही जब मोह और दुर्गुणो के बन्धनो मे जकडे हो, तो वे समाज को क्या शिक्षा देगे, वे समाज को किस मार्ग पर ले जायेगे ? मानवता के लिए सन्यास लेने वाले महामुनि अमृत-चन्द्र सन्यासी-जगत् के इस अभिशाप को देखकर सिहर उठे । सोचते-सोचते वे इसी परिणाम पर पहुँचे और उनके हृदय मे दृढ निश्चय गूँज उठा —"मै मानव और उसके तथाकथित पथ-प्रदशको, सभी का मार्ग प्रशस्त करूँगा, सभी को पाप के बन्धनो से मुक्त कराऊँगा ।" और उनके इस निश्चय से मानवता की तडपती आत्मा ने सन्तोष की साँस ली ।

पर इतना महान् निश्चय, इतना महान् कार्य कैसे पूर्ण होगा ? उसके लिये एक बडी तपस्या की आवश्यकता है । मुनि अमृतचन्द्र जी तपस्या के पथ पर धैर्य और शान्तिपूर्वक निर्विघ्न रूप से बढने लगे । उन्होने अपना ज्ञान-भडार और विकसित करने की शपथ ली और लग गये स्वाध्याय और चिन्तन मे, भगवद्-उपासना मे एकाग्रचित होकर रम गये । न जाने कितना पढ डालना चाहते थे वे, न जाने कितनी साधना उन्हे चाहिये थी । उनकी ज्ञान-पिपासा शान्त ही नही होने मे आती थी ।

सूरदास व तुलसीदास की भाँति ही हमारे चरित्र-नायक का मन ईश्वर-भक्ति मे पूरी तरह लीन हो जाने के साथ-साथ आत्म-विभोर हुए मयूर की भाँति नृत्य कर उठा, उनके कठ से सरस्वती झरित होने लगी. उनकी भावनायें कवित्व का परिधान पहन कर प्रगट हुईं । मस्त होकर वे गा उठे :

जगपति की भक्ति करो रे मना ।
मन का भ्रम जाल हरो रे मना ।
पूर्व सुकर्म उदय में आया ।
तब यह मानव जीवन पाया ।।
मत अपयश कुम्भ भरो रे मना ।।
श्री गुरु चरण में आओ
अन्तर तम को दूर भगाओ

'अमृत' शॉति वरो रे मना
जगपति की भक्ति करो रे मना ॥

मन, वचन और कर्म सभी मे सन्यास। सभी मे त्याग और तपस्या के प्राण। अमृतचन्द्र जी भक्ति मे पूर्ण रूप से रम गये। उनके लिए ससार मे सिवाय भगवत्-भजन और भगवान् के नाम से अधिक आकर्षण की अन्य कोई वस्तु न रह गयी।

विद्रोह उबल पड़ा

प्रकृति मुनि अमृतचन्द्र को ससार मे फैले समस्त दोषो से अवगत कराना चाहती थी इसीलिए तो सन्यास धारण करने के उपरान्त क्रमश ऐसी घटनाये होती गई जिनसे अमृत मुनि सन्यासी जीवन मे घुसे दोषो से अवगत होते रहे और इन दोषो ने उन पर एक नयी दिशा मे चलने के लिए व्रत लेने का प्रभाव डाला।

उन्हे दीक्षा तो मुनि श्री उदयचन्द्र जी महाराज ने स्वय अपने कर-कमलो से दी। पर वे मुनि अमृतचन्द्र को सर्वश्रेष्ठ का पद मिलने से कुछ असन्तुष्ट-से थे। वास्तविकता यह थी कि वे भी नरपतिराय जी से प्रभावित थे और उन्ही के शिष्यो मे से किसी को सर्वश्रेष्ठ घोषित करने के पक्ष मे थे। पर नरपतिराय जी के साथ-साथ उनकी कामनाओ पर भी मुनि अमृतचन्द्र की योग्यता ने कुठाराघात किया था इसलिए दीक्षा-सस्कार के उपरान्त उनकी और उनकी शिष्य-मण्डली की आँखो मे मुनि अमृतचन्द्र और उनके कारण उनके गुरुदेव काँटे की भाँति खटक रहे थे।

मन मे बैठी ईर्ष्या और प्रतिशोध की भावना अनायास ही एक दिन श्री उदयचद्र जी महाराज के एक सुशिष्य के कण्ठ के रास्ते बाहर आ गयी। कितना भयानक और विषाक्त था उसका रूप। कस्तूरचद्र जी महाराज को उसने अपमानित करने के लिये कुछ अपशब्द कह डाले। कस्तूरचन्द्र जी एक महान् योगी है, उनका जीवन आदर्श सन्यासी का जीवन है। वे उन सब दोषो से कोसो दूर है जो आज के त्यागियो के प्रिय गुण बन चुके है। उनका जीवन किसी भी व्यक्ति पर प्रथम साक्षात्कार में अपनी अमिट छाप डाल देता है। वे कभी सहन

नही कर सकते कि कोई उनके जीवन मे किसी भी प्रकार के असत्य का आरोप करे। कस्तूरचन्द्र जी असत्य आरोप का उत्तर दिये बिना नही रह सके।

उन्होने कहा, " मेरे जीवन मे दोष निकालने का साहस तुम जैसे तथाकथित त्यागियो को हुआ कैसे ? तुम साधु तो क्या, एक साधारण स्तर के इन्सान भी कहे जाने योग्य नही हो। और तुम मुँह निकाल कर बोलते हो ?"

अपने दोष का इस प्रकार रहस्योद्घाटन भला उस तथाकथित सन्यासी को कब सहन था। उसने अपने गुरुदेव से शिकायत की और उनके गुरुदेव ने आचार्य काशीराम जी से जो उन दिनो दिल्ली ही पधारे हुए थे। आचार्य जी ने बात सुनी और निर्णय दिया कि महात्मा कस्तूरचन्द्र जी महाराज उक्त आरोप को सिद्ध करे।

कस्तूरचन्द्र जी महाराज ने जो कुछ कहा था उसके जीते-जागते प्रमाण विद्यमान थे। दोष चाहे कितना भी छुपाया जाय, अनावरण होकर ही रहता है। इस सत्य पर विश्वास करते हुए उन्होने प्रमाण देना स्वीकार कर लिया। एक जाँच आयोग बनाया गया और जाँच आरम्भ हुई। यह जॉच जैन साधुओ के चरित्र पर प्रभाव डाल्ने वाली थी, पूरे समाज पर इसका प्रभाव होना था। पाप पर पडा पुण्य का आवरण हटाया जाना था। मोक्ष वितरित करने वाले, महापुरुष और सन्यासी के पवित्र नामो से अलकृत व्यक्तियो मे से एक के चरित्र को कसौटी पर रखा जाना था। यह एक महत्त्वपूर्ण घटना थी। इसने उन साधुओ के दिल दहला दिये जो सन्त-वृत्ति के प्रतिकूल आचरण कर रहे थे। कमेटी का कार्य आरम्भ हुआ और एक के पश्चात् एक प्रमाण मिलने लगा और अन्त मे सिद्ध हुआ कि उक्त सन्त पर लगाया गया आरोप सोलहो आने सच है।

कमेटी की रिपोर्ट से खलबली मच गई, खलबली मच गई उन त्यागियो मे जो सन्यासी के रूप को अपने दोषो का आवरण बनाए हुए है। और चिन्ता दौड गई उन पवित्र सन्यासियो मे जो एक महान् तपस्या मे रत है। वे चिन्तित हो उठे इसलिए कि इन तथा-कथित त्यागियो के कृत्यो का जनता-जनार्दन के सम्मुख आ जाना

समस्त सन्यासी वेष पर ही सन्देह की काली परछाई का पड जाना है। भविष्य में प्रत्येक सन्यासी को सशक नेत्रो से देखा जायगा।

पाप तथा पुण्य की सयुक्त घबराहट और चिन्ता ने कमेटी की रिपोर्ट दफना देने मे ही कल्याण माना। तपस्वी कस्तूरचन्द्र जी और मुनि अमृतचन्द्र ने साधु-समाज को सत्य पर दृढतापूर्वक अडिग रहने के कारण एक बार कम्पित कर डाला।

"नही! अपराधी को दण्ड मिलना ही चाहिये।" गुरु एव सुशिष्य की ध्वनि गूँज गई। सारे साधु-समाज का तख्त डगमग-डगमग डोलने लगा।

"मुनि जनो! साधु-समाज की प्रतिष्ठा के लिए इस समस्त काण्ड को जीवित दफना दो।" अन्य साधुओ की ओर से माँग आई। पर अमृतचन्द्र जी की अकाट्य दलीले वायु-मण्डल मे गूँज उठी—"यदि मेरे गुरुदेव का आरोप सिद्ध न होता, तो फिर बताओ, क्या गुरुदेव को साधु-समाज की प्रतिष्ठा के नाम पर दण्ड न दिया जाता? जरूर दिया जाता। क्योकि दोषियो का टोला उसे अपनी जीत समझ कर सत्य वाणी को सदा-सदा के लिए बन्द कर देने के लिए आतुर हो जाता। परन्तु अब जबकि दोषो का भण्डाफोड हो चुका है, दोषी दण्ड से क्यो घबराते है। सन्यासी-जगत् की प्रतिष्ठा को धक्का अपराधी को दण्डित करने से नही पहुँचता बल्कि अपराधी के कुकर्म पर, उस कुकर्म पर जो प्रमाणित हो चुका है, परदा डालने से पहुँचता है। यदि साधु-समाज चाहता है कि सन्यासी के वेश मे छुपे दोषियो को निकाल कर सन्यासी-समाज की प्रतिष्ठा को कायम रखा जाय तो फिर अपराधी को दण्ड दो।"

साधु-समाज का वह अग जो अपनी पोल खुलने से भयभीत था, अमृत मुनि की चेतावनी से और भी भयभीत हो गया और सत्य की ज्योति से अपना मुँह छुपाने के लिए अनेक बहाने ढूंढने लगा।

और फिर महात्मा कस्तूरचन्द्र जी की आवाज उठी—"यह पहले ही निश्चित था कि यदि मेरा आरोप निराधार सिद्ध हुआ तो मुझे समाज से बहिष्कृत कर दिया जायगा और यदि आरोप सिद्ध हो गया तो अपराधी को समाज से निकाल दिया जायगा। परन्तु सत्य सिद्ध

होने पर साधु-समाज की प्रतिष्ठा की थोथी दलीले देकर अपराधी का पक्ष लिया जा रहा है। पापी को दण्ड से बचाने वाले भी पाप के भागीदार ही होते है। इसलिए अपने को पुण्यमार्गी सिद्ध करने के लिए उस सन्यासी का बहिष्कार करो वरना यह सुनने के लिए तैयार हो जाओ कि सारा जैन साधु-समाज दोषियो का रक्षक बन गया है। लोगो के ऐसे तीखे आरोप एक दिन अवश्य ही तुम्हे अपने कानो से सुनने होगे, तब तुम सब सन्यासी अपने कानो मे उँगली देकर भी नही बैठ सकते।"

गुरुदेव के पैने शब्द साधु-समाज के कानो के परदो से टकराये और मन मे व्याप्त चोर ने उन्हे उलटे पैरो लौटने पर विवश कर दिया। अंधकार का साम्राज्य था न !

दोषी को दण्डित नही किया गया, तो क्या होगा ? यह प्रश्न अब गुरुदेव के सामने मुँह बाये खडा था।

अमृतचन्द्र जी की रगो मे दौडते गरम-गरम रक्त मे विद्रोह की मौजे उठने लगी। वे बोले, "दोषियो को शरण देने वाले समाज मे हमारा कोई स्थान नही है।"

गुरुदेव बोले, "समस्त वन्धनो से मुक्ति पाने के लिए बढे हुए पैर साधु-समाज के भी वन्धनो को लाँघ सकते है क्योकि इस समाज का वातावरण विषाक्त हो गया है, इतनी दुर्गन्ध फैल रही है इसमे कि दम घुटा जाता है।"

और मुक्ति पथ के नेता गुरुदेव कस्तूरचन्द्र और उनके विद्वान् सुशिष्य अमृतचन्द्र जी ने जैन साधु-समाज का परित्याग कर दिया। वन्धनो को तोडकर वे आगे बढे। उनके पास आत्म-वल है, त्याग व तपस्या है, विद्वत्ता है और ओजपूर्ण व्यक्तित्व है, उन्हे फिर किसके सहयोग की आवश्यकता ?

आठवाँ अध्याय

उन्हें मोह न जीत सका

दिल्ली को ही यह सौभाग्य प्राप्त हुआ है कि अमृत मुनि का दीक्षा-सस्कार इसी नगरी मे सम्पन्न हुआ और यह भी दिल्ली का सौभाग्य ही समझिये कि सन्यास धारण करने के उपरान्त प्रथम चातुर्मास भी दिल्लीवासियो की प्रार्थना पर चाँदनी चौक, दिल्ली ही मे मनाना स्वीकार कर लिया गया। महावीर भवन (जैन बारादरी) मे चातुर्मास आरम्भ हुआ। सहस्रो नर-नारी गुरुदेव कस्तूरचन्द्र जी महाराज के उपदेश सुनने के लिए एकत्रित हो जाते। अमृत मुनि स्वाध्याय मे लगे रहते। चातुर्मास के दिन एक-एक करके कम होते जा रहे थे कि एक दिन सस्कृत के किसी ग्रथ की आवश्यकता पडी। ज्ञानी अमृतचन्द्र जी खोज मे चल दिये।

विचारो के ताने-बाने बुनते हुए दरीबा कला की ओर जा रहे है, दोनो ओर मकान है या दूकान, उन्हे मालूम नही। खोये हुए से है, बस चले जा रहे है, चलने का काम पैर करते है और मस्तिष्क समस्याओ का छोर ढूँढता है। बिल्कुल दार्शनिक की भान्ति। जग की ओर से और जग के अन्य आकर्षणो की ओर से इतनी बेखबरी! विचारक की तन्मयता ही तो उसकी सफलता की गारटी होती है।

सामने से आते एक व्यक्ति ने उन्हे पैनी दृष्टि से देखा और मुड कर उनके ही साथ हो लिया। मुखमण्डल पर नेत्र गडा दिये। जैसे कुछ खोजने का प्रयत्न कर रहा हो। ओह! इनका यहाँ क्या खो गया है?

"महाराज!" उन्होने अमृतचन्द्र को पुकारा।

" , "

"महाराज?" फिर पुकारा।

अमृत मुनि को कुछ पता ही नही। वे तो खोये हुए चले जा रहे है।

"अमृत !"

अब की बार उनका ध्यान भग हुआ और पुकारने वाले की ओर दृष्टि उठाई। चलते पग रुक गए। मौन, और चकित भी। आगन्तुक कौन है, उन्हे स्मरण नही होता।

"मुझे पहिचाना नही।... ..मै .. तुम्हारा ताऊ हूँ। तुम अमृत-चन्द्र ही हो ना ?" आगन्तुक के चेहरे पर असीम हर्ष और उत्साह नृत्य कर गया। जैसे खोया हुआ रत्न अनजाने ही मिल जाये या किसी के नाम लाटरी मे एक बडी धन-राशि निकल आये।

अमृतचन्द्र ने नेत्र मूँद लिये और गरदन हिला कर सकेत द्वारा स्वीकार किया कि वह अमृतचन्द्र ही है।

"बेटा अमृत! तुम साधु बन गए ? तुम्हे कौन-सी कमी थी, कौन सी ऐसी वस्तु है जो तुम्हे नही मिल सकती। भगवान् की दया से तुम्हारे पिता जी इतनी सम्पत्ति छोड़ गए है कि तुम तो आयु भर ठाठ से रह सकते हो। बेटा! सन्यासी तो वह बने जिसके पास खाने-पीने को न हो, जिसका जगत् मे कोई न हो। तुम्हारे पास तो सम्पत्ति है और मालिक की दया से इतना बडा परिवार है। फिर तुमने यह क्या किया ?" ताऊ जी ने मुनि अमृतचन्द्र को एक ओर खडा करके कहा। जैसे कि उन्हे याद ही न रहा हो कि उनके पिता जी ने सम्पत्ति भी छोड़ी है और उनका बडा परिवार भी है और आज वे यह रहस्योद्घाटन कर रहे हो।

ताऊ जी ने पुन समझाया, "देखो बेटा! बचपन में भूले किससे नही होती पर सुबह का भूला शाम को घर आ जाये तो उसे भूला हुआ नही कहते। छोडो इस पट्टी-वट्टी को; बेकार मुह बाँध रखा है। ब्राह्मण जाति मे जन्म लिया है, तुम तो वैसे ही श्रेष्ठ हो। घर चलो, भगवान् की भक्ति ही मे मन लगता है तो वहाँ भजन करने को कौन रोकता है ?"

पर अमृतचन्द्र जी मौन धारण किये सब कुछ सुनते ही रहे। उत्तर कुछ न दिया। पडित जी (ताऊ जी) ने अमृतचन्द्र को मौन देखकर समझा कि उनका तीर निशाने पर लगा है, वे आगे बोले, "अमृतचन्द्र! तुम एक होनहार लडके हो। तुम्हे अभी दुनिया देखनी है। घर चलो।

वहाँ तुम्हारा विवाह कर देंगे, खुशी से अपनी गृहस्थी चलाना। नाम ही कमाना है तो गृहस्थी मे भी तो कमाया जा सकता है। देखो, तुम्हारे पिता जी तो गृहस्थ मे रहते हुए भी साधु-वृत्ति के आदमी थे। उन्हें कौन नही जानता। इतनी सम्पत्ति रहते भिक्षा माँग कर खाना तुम्हे शोभा नही देता।"

अमृतचन्द्र जी बोल पडे, "अच्छा! तो आपकी बात समाप्त हो गई न। और कुछ तो नही कहना?"

"अब कहना ही और क्या है! तुम्हे बाना यदि गुरु के पास ही रखने की चाह हो तो चलो मै चलता हूँ, वहाँ उतार कर रख आओ और यदि ऐसे ही चले चलो तो कौन पूछता है? चलो मेरे साथ।"

"अच्छा! अब आप मुझे क्षमा करें," अमृतचन्द्र जी ने कहा, "मुझे बहुत देर होती है।" और वे अपनी राह चलने लगे। अब पण्डित जी को ज्ञात हुआ कि उनकी बातो का अमृतचन्द्र जी पर किंचिन्मात्र भी प्रभाव नही हुआ है। वे आगे बढकर अमृतचन्द्र जी का रास्ता रोक कर खडे हो गये।

"अमृतचन्द्र! मै तुम्हारा ताऊ हूँ। मेरा भी तुम पर कुछ अधिकार है। मै यो नही जाने दूँगा। घर चलो।" अब की बार अधिकारपूर्ण स्वर मे पडित जी बोले।

"पण्डित जी! मै साधु हूँ। मुझ पर किसी का अधिकार नही। साधु किसी के मोह-जाल मे नही फँसते। मै गृहस्थ के सभी बधनो से मुक्त हो चुका हूँ। जिस पथ पर मै खडा हूँ उसपर आने वाली सभी चट्टाने लाँघना मेरा कर्तव्य है। मेरा पथ तो ससार की कोई भी शक्ति नही रोक सकती। भगवान् आपको सद्बुद्धि दे।" इतना कहकर अमृतचन्द्र जी ताऊ जी से बचकर चले गये और ताऊ जी मोह भरे नेत्रो से देखते ही रह गये। पर अमृतचन्द्र तो गहरे वैराग्य के रग मे मस्त थे। उनके मन पर इस घटना का कोई प्रभाव नही हुआ। वे फिर विचार-मग्न होकर दार्शनिक की भान्ति अपनी राह पर चलने लगे।

त्याग में प्रतिष्ठा

एक सुशिष्य की भान्ति अमृतचन्द्र गुरुदेव के प्रत्येक आदेश का पालन

करते है। चातुर्मास चल रहा था, एक दिन गुरुदेव ने उन्हे बाज़ार से एक पेसिल माँग लेने को कहा। अमृतमुनि बारादरी से निकल कर भगवान्दास जैन की दुकान पर पहुँचे।

दुकान पर ग्राहको की भीड थी, पर मुनि जी को देख कर दुकानदार ग्राहको को छोड उनकी ओर आकर्षित हुआ। आगमन का अभिप्राय पूछा।

मुनि जी बोले, "एक पेसिल चाहिए।"

दुकानदार ने पेसिलो से भरे डिब्बे सामने रखकर पसद करने को कहा और मुनि जी ने एक पेसिल पसद कर ली। दुकानदार ने उस प्रकार की १ दर्जन पेसिले उठाकर उन्हे देनी चाही।

"नही, मुझे केवल १ पेसिल ही चाहिए।" अमृत मुनि ने कहा।

"महाराज! बार-बार परेशान होने से क्या लाभ, इकट्ठी १२ ले जाइये। बहुत दिनो तक के लिए पर्याप्त होगी।" दुकानदार बोला।

उसी समय एक गेरुए वस्त्रधारी साधु आ पहुँचे। हृष्ट-पुष्ट शरीर, ललाट पर तेज, और हाथ मे कमण्डल।

दुकानदार के सामने हाथ पसार दिया, एक पैसा; पैसे का सवाल होना था कि दुकानदार की भृकुटि तन गई।

"केवल एक पैसे का सवाल है बाबा!" साधु ने चढती त्योरी देख कहा।

"तुम इतने हट्टे-कट्टे आदमी हो। भीख माँग कर खाते हो। तुम्हें लज्जा नही आती?" क्रोधित दुकानदार कहने लगा, "कही जाकर मेहनत-मजदूरी क्यो नही करते हमारे पास क्या हराम का पैसा आता है?" और डाट कर कहा, "जाओ आगे बढो।"

"बाबा! एक पैसे पर इतना डाँटते हो। कोई मैने दौलत तो नहीं माँगी।" साधु ने बहुत नम्र निवेदन किया।

पर दुकानदार का पारा चढ गया। "क्या तुम्हारे बाप की जागीर है कोई मेरे पास जो तुम्हे उसमे से पैसा दे दूं? जाओ हटो।"

साधु अपना सा मुँह लेकर रह गया। अमृत मुनि सारा काण्ड देखते रहे।

दुकानदार ने उस साधु की ओर से मुँह फेर कर शान्त भाव से कहा, "हाँ तो मुनि जी ! यह लीजिए बारह पेंसिलें।"

"परन्तु मुझे तो केवल एक पेंसिल चाहिए। कोई दुकान थोडे ही करनी है मुझे और न स्टाक ही जमा करना है।" अमृत मुनि बोले।

दुकानदार न माना और हठ करता रहा। अन्त में उसने एक दर्जन पेंसिलें मुनि जी के झोले मे डाल ही दी। मुनि जी वापिस उपाश्रय की ओर चल पडे। वह साधु भी उनके पीछे-पीछे हो लिया और ज्योही अमृत मुनि ने उपाश्रय की पौडियो पर पग रखा, साधु ने उनका हाथ पकड लिया। घूम कर देखा तो वही साधु था जिसे दुकानदार ने फटकार सुनाई थी।

"कहिए ! महाराज क्या बात है ?" अमृत मुनि ने पूछा।

"एक बात बताओगे ?" साधु के नेत्रो मे याचना नृत्य कर रही थी।

अमृत मुनि ने गरदन हिलादी, स्वीकारोक्ति में।

"क्या तुमने किसी मत्र की सिद्धि की है ?" उसने पूछा।

अमृत मुनि सोच मे पड गये। कैसी सिद्धि, समझ मे न आया और कह दिया, "नही तो।"

"तो फिर इसका क्या कारण है कि उसी दुकानदार से तुमने सवाल किया एक पेंसिल का और तुम्हे मिल गई एक दर्जन और मैने केवल एक पैसे की भिक्षा माँगी, मुझे मिली फटकार।" साधु ने प्रश्न किया।

अमृत मुनि चक्कर मे पड गए। क्या उत्तर दें उसे ?

"तुम मे वह कौनसी बात है जो मुझमे नही। मै सस्कृत का विद्वान् हूँ, शास्त्रज्ञ हूँ, ब्रह्मचारी हूँ, वर्षो से सन्यासी जीवन व्यतीत कर रहा हूँ। वह रहस्य मुझे भी बताओ जिसके कारण तुम्हारे लिए उनके मन मे सम्मान है और मेरे लिए धिक्कार !" उस साधु ने पूछा।

अमृत मुनि बोले, "ऊपर मेरे गुरुदेव है। उनसे आप भेंट करे तो अच्छा होगा। आप विद्वान् है, पुराने सन्यासी है और मैने अभी कुछ ही दिन पूर्व सन्यासी-जीवन धारण किया है।"

साधु अमृत मुनि जी के पीछे-पीछे गुरुदेव कस्तूरचन्द्र जी महाराज के पास गया और उसने उनसे भी वही प्रश्न किया। गुरुदेव ने कहा, "आप पैसा माँगते है, बस यही दोप है। जब आपको यह समाज भोजन

देता है, रहने के लिए स्थान दे सकता है, वस्त्र आपको मिल सकते है, जीवन की अनिवार्य वस्तुएँ आपको मिल जाती है, तो फिर आप मुद्रा क्यो माँगते है ? आप मे मुद्रा का मोह ही आपके सारे गुणो पर परदा डाले हुए है। इसे आप त्याग दे तो फिर आपमे और हममे कोई अन्तर न रहे।"

"कभी-कभी जीवनोपयोगी वस्तुएँ तो खरीदनी ही पडती है, फिर उसके लिए पैसा ही तो चाहिए।" वह साधु बोला।

गुरुदेव ने समझाया

"आप यह न भूलिए कि यह इसान अपने पशुओ तक का ध्यान रखता है। भोजन करते समय कुत्ते के भाग को भी यह नही भूलता। और आप तो ठहरे सन्त, मानव का पथ-प्रदर्शन करने वाले। फिर आप ही का ध्यान क्यो नही करेगा यह समाज ? बस, आप अपने कर्त्तव्य को न भूले। फिर देखिये, वे ही लोग जो आज आपको एक पैसा भी नही देते, और उल्टे धिक्कारते है, आपके चरणो मे ससार की सभी वस्तुएँ लाकर रख देने को भी तत्पर हो जायेगे। पर आपम किसी वस्तु के प्रति मोह नही होना चाहिए। जितना आप इन वस्तुओ को ठुकरायेगे, उतनी ही यह आपके चरणो मे आयेगी।"

वह साधु बोला, "आज आपने एक महान् ज्ञान दिया है और इसका बोध हुआ है मुझे इस छोटे मुनि के द्वारा। इसलिए मै इस मुनि का शिष्य बनना चाहता हूँ।"

अमृत मुनि ने कहा, "नही शिष्य बनने की जरूरत नही है। आप अपने इसी वेश मे इस नये मत्र को लेकर अपने ज्ञान से जगत् की सेवा करे।"

उक्त साधु का नाम था शिवदेव सन्यासी, उसने जैन साधु होने की चेष्टा की। पर गुरुदेव कस्तूरचन्द्र जी व हमारे चरित्र-नायक ने उसे कहा कि वे अपने ही वेश मे साधु-वृत्ति के समस्त नियमो का पालन करे। तब वे देखेगे कि जनता वेश पर नही ज्ञान और साधु-वृत्ति के प्रति श्रद्धा करती है।

शिवदेव सन्यासी ने तुरन्त अपनी जेब से ३५०) निकाल कर फर्श पर डाल दिये और प्रतिज्ञा की कि अब वह किसी से पैसा नही माँगेगा।

उक्त रुपये गौशाला मे भिजवा दिये गये और शिवदेव सन्यासी नगर छोडकर यमुना-तट पर एक झोपडी बनाकर तपस्या मे लग गये। थोडे ही समय मे उनकी कुटिया में प्रतिदिन सैकडो व्यक्ति दर्शनार्थ पहुँचने लगे। श्रद्धालु भक्तो ने उनके लिए पक्का मकान बना दिया, पर वे यही कहते रहे कि जो कुछ करो यह सोच कर कि मै किसी दिन भी यहाँ से किसी भी ओर चला जा सकता हूँ।

इतनी प्रतिष्ठा हो जाने पर भी वे हमारे चरित्र-नायक के प्रति सदैव ही कृतज्ञता प्रगट करते रहे और सदा कहते कि इस मुनि ने ही मुझे सत्य ज्ञान का बोध कराया है।

एक दिन गुरुदेव बोले, "एक बेत चाहिए।" बेत चाहिए, अत अमृतचन्द्र जी बाजार की ओर चल पडे। नई दिल्ली मे हेमराज जैन की दुकान है, अमृतचन्द्र जी ने एक बेत माँग ली। माँग ली इसलिए कि वे खरीद नही सकते, क्योकि वे जैन साधु जो ठहरे। पर बाजार मे प्रत्येक वस्तु के लिए पैसा चाहिए। एक पैसा कम हो तो भी सैकडो का सौदा रुक जाता है। मूल्य मे एक-एक पाई तक कम कराने के लिये विवाद होते है। पैसे का इतना मूल्य, कि दुकानदार ग्राहक से अधिक मूल्य पाने के लिये सौगध तक खा लेता है, ऐसी-ऐसी सौगधे कि बस कुछ न पूछिये, भगवान् तक की सौगध भी, जब कि वह एक ओर प्रात ही भगवान् की मूर्ति को नमस्कार करके आता है, पूजा करता है और मन्दिर में घटा बजा-बजा कर भगवान् का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करता है, भगवान् को जगाता है और अपने भाग्य के जागने की आशा करता है, प्रार्थना भी करता है।

पैसे की उलट-फेर ही जहाँ का धर्म और कर्तव्य है, उसी बाजार मे हेमराज जैन की भी दुकान है। उसी पर अमृत मुनि ने अलख जगायी है, एक बेत के लिए। वही बेत जो कदाचित् किसी खरीदार के पास पहुँचती तो दुकानदार की तिजोरी बोल उठती, पर आज मुनि जी को भिक्षा रूप मे मिल गई। हेमराज जैन की धर्म-परायणता समझिये या दान-वीरता अथवा मोक्ष के लिए एक यज्ञ गिन लीजिये, दान-यज्ञ। मोक्ष के लिए ऐसे कितने यज्ञ होते है, कितने आवश्यक है यह इन पक्तियो के लेखक को ज्ञात नही, पर यह

यज्ञ किसी-किसी के बस की बात है, कुछेक लोगो की सामर्थ्य मे है।

तो हाँ, हमारे चरित्र-नायक ने एक ऐसी बेत माँग ली जो मोटी और मजबूत थी और उन्होने अपने हाथ मे जँचा कर देख ली और उसे लेकर गुरुदेव के चरणो मे अर्पित कर दिया।

"अमृतचन्द्र! बेत अच्छी है, मजबूत है, पर तुम्हारे योग्य! मेरे योग्य नही। मै ठहरा ठिगना। इसे हाथ मे रखने के लिए मुझे अपना हाथ उठा-रखना पडेगा।" गुरुदेव ने बेत अपने हाथ मे लेकर और परख कर कहा।

अमृतचद्र जी को अपनी भूल का ज्ञान तब हुआ। भूल का ज्ञान होना था कि अमृत मुनि झेप गये। उनकी दार्शनिकता कभी-कभी कितनी ही भूले करा देती है। यह दार्शनिक मुद्रा ही तो है जिसके कारण वे खोये-खोये से रहते है चिंता मे। ससार मे क्या होता है, क्या हो रहा है, उन्हे भास तक नही होता।

दूसरे दिन बेत बदलने के लिए चल पडे। दुकान पर पहुचे तो उस पर ताला लटकता हुआ पाया। अभी दुकान ने आँखे नही खोली थी। फाटक अभी तक ऊँघ रहे थे। निराश लौट पड़े और बिडला मदिर की ओर घूमते-घामते जा निकले। फिर सोचते-सोचते उन के पैर हुमायूँ के मकबरे की ओर उठ गये। विचारो मे डूबे चले जा रहे है। चरण अपना काम कर रहे है और मस्तिष्क अपना।

सडक निर्जन है। आफिसो और दुकानो पर काम करने वाले लोग जा चुके है और सडक का सुहाग गुजर चुका है, दिल्ली के आँचल मे जा छुपा है। हमारे चरित्र-नायक है कि बढ रहे है।

लघु-शका से निवृत्त होने के लिए पास के एक अहाते की दीवार की ओट मे बैठ गये। उनकी दृष्टि दीवार के एक छिद्र को पार करती हुई अहाते के अन्दर पहुँच गई।

"उफ यह क्या?"

वे अन्दर का दृश्य देख कर सिहर उठे। एक कन्या, षोडशी, बिल्कुल नग्न, उसके अवयव आवरणहीन, पर लज्जित से। मुँह पर भय, याचना, तडप! सारा शरीर कम्पित, थर-थर काँप रहा है। मुँह को कपडे से बद कर दिया गया है चीत्कारो को रोकने के लिए।

दोनो हाथ पीछे, कमर की ओर बँधे है। नेत्रो से गगा-यमुना बह रही है। और दो युवक, एक नग्न जिस पर वासना मँडरा रही है। वासना का राक्षस विल्कुल नग्न, और वह है षोडशी के सतीत्व पर डाका डालने के लिए प्रयत्नशील। पर कन्या अभी तक जूझ रही है, गुण्डे के विरुद्ध अपने सतीत्व की रक्षा के लिए।

और दूसरा भी है वासना का दास, अभी उस का तन परिधान-रहित नही है। पर वह अपने साथी गुण्डे की कुचेष्टाओ को सफल कराने के लिए सघर्ष कर रहा है। पाप का नग्न ताण्डव, हिंसा का ववडर। पर जैसे कन्या के मुँह मे वाहर न निकल सकने वाले, मन मे घुट-घुट कर दम तोडने वाले चीत्कारो ने मुनि अमृतचन्द्र को झझोड डाला।

एक सतीत्व की रक्षा के लिए उनके कानो मे पुकार झनझनाने लगी। मानवता ने मुनि जी को पुकारा। एक ओर मानवीय कर्त्तव्य का आवाहन और दूसरी ओर जैन साधु-वृत्ति के वधन। अहाते के अदर सतीत्व के लिए सघर्ष चल रहा था, गुण्डो और कन्या के वीच और वाहर मुनि जी के मन मे सघर्ष चल रहा था, साधु-वृत्ति और मानवता के आवाहन के वीच।

पर अनायास ही गुण्डे ने कन्या पर कावू पाना चाहा। कन्या छटपटाने लगी। 'एक वार अपनी पूरी शक्ति लगा दी उसने गुण्डो के प्रहारो का प्रतिकार करने के लिए। इस छटपटाहट से मुनि जी का रोम-रोम सिहर उठा।

उनके मन मे वैठा मानव वोल उठा, "सन्यासी तुम्हें सतीत्व की रक्षा करनी होगी। सन्यासी तुम पगु मत वनो। तुम शान्ति और अहिसा के योद्धा हो, तुम पाप के विरुद्ध सघर्ष करने वाले वीर हो।"

अमृत मुनि अपने आप को न रोक पाये। ठीक इसी प्रकार एक दिन द्रौपदी की लाज वचाने के लिए श्रीकृष्ण दौड पडे थे और आज हमारे-चरित्र नायक दौड पडे, एक कन्या की लाज वचाने के लिए।

अमृत मुनि ने दूसरी ओर जाकर दीवार फाँदकर अन्दर प्रवेश किया। मुनि जी को देख कर गुण्डे भयभीत हुए। उन्हे स्वप्न मे भी आशा नही थी कि अनायास ही कन्या की रक्षा के लिए कोई आ

धमकेगा और फिर मुनि जी के हाथ मे मोटा बेत भी तो है, जो यदि किसी गृहस्थ जवान के हाथ मे हो तो गुण्डो को रुई की भाँति धुन दे।

गुण्डो ने समझा कि मुनि जी प्रहार करेगे इसलिए आत्म-सुरक्षा के लिए और उनके पाप के पथ मे चट्टान बनकर आये मुनि जी को मार भगाने के लिए उन्होने ईंट तथा ढेले हाथो मे ले लिये। मुनि जी चारो ओर बेत घुमाते हुए आगे बढे। एक पापी भयभीत होकर शीघ्रता से फाटक खोलकर बाहर भाग गया और दूसरा जो नग्न था भाग न सका। मुनि जी ने उसे वही बैठ जाने का आदेश दिया। मुनि जी के हृष्ट-पुष्ट शरीर और हाथ के बेत को देखकर उसने बैठ जाने मे ही अपनी भलाई समझी।

मुनि जी ने कन्या से कहा—"बहन! तुम जल्दी से अपने हाथ खोल लो और कपडे पहन लो। यदि स्वय ही हाथ खोल सकती हो तो जल्दी खोलो और यदि नही खोल सकती, तो नारी को छूना मेरे लिए वर्जित होते हुए भी मुझे तुम्हारे हाथ खोलने ही पडेगे।"

कन्या ने स्वय प्रयत्न किया और वह स्वय अपने हाथो को बधन-मुक्त करने मे सफल हो गई। मुँह से उसने ठूँसा हुआ कपडा निकाला और तुरन्त कपडे पहन लिये। गुण्डे ने भी कपडे पहने और मुनि जी दोनो को बाहर ले आये। सामने अपनी कन्या को खोजता हुआ पिता फिर रहा था।

"पिता जी!" कन्या ने आर्त्तनाद किया और वह दौड कर अपने पिता की छाती से लिपट गई।

घटना का वृत्तान्त सुनकर कन्या के पिता के नेत्र जल उठे। वे गुण्डे पर झपटे। गुण्डा क्षमा याचना करने लगा। एक ओर गुण्डे को दण्ड देने के लिए कन्या के पिता ने उसे दबोच रखा था और गुण्डा थर-थर काँप रहा था दूसरी ओर मुनि जी सोच रहे थे कि इन्सान है, पथभ्रष्ट है, उसे सीधे रास्ते पर लाने के प्रयत्न होने चाहिएँ। मारपीट, पुलिस-दमन तथा न्यायालय किसी मे इतना सामर्थ्य नही कि इसे सीधी राह पर ला सके। क्षमाशीलता और करुणा ही इसे ठीक कर सकती है।

उन्होने उसे छुडा दिया और उससे शपथ ली कि वह भविष्य मे

ऐसा कुकृत्य कभी नही करेगा। वह एक मुसलमान युवक था, परन्तु इस काण्ड के सम्बन्ध मे मुनि जी के अपनाये उपायो से वह मुनि जी का प्रशसक वन गया। उसे ज्ञान हुआ कि मुनि जी ने उसपर प्रहार नही किया, कोई दण्ड नही दिया, कन्या को भी छुडाया और उसे भी, यह उनकी महानता का ही प्रमाण है। आध घण्टे तक वे उसे उपदेश देते रहे और वह नीची नजर किये सुनता रहा। नतमस्तक होकर उसने अपने घृणित कृत्य के लिए क्षमा मॉगी।

कन्या के पिता ने मुनि जी को कदाचित् साधारण साधु समझकर आभार प्रगट करते हुए १५) पुरस्कार स्वरूप भेट करने चाहे। मुनि जी की भृकुटि तन गई, "दोष तुम्हारा भी है। अपनी कन्या को ऐसे निर्जन पथ पर अकेली छोड कर तुम एक मील दूर पानी लेने गये। क्या तुम्हारा कन्या के सतीत्व के प्रति कोई उत्तरदायित्व नही है? तुम जान-बूझ कर उसे गुण्डो को सौप गये। तुम इस कुकृत्य के लिए दोषी हो। और मुझे यह नोट दिखाकर दानवीर वनने का ढोग रचते हो। क्या पैसा ही ससार मे सव कुछ है? क्या मैने पैसे के लिए कन्या की रक्षा की है?"

कन्या के पिता लज्जा के मारे भूमि मे गडे जा रहे थे।

मेधावी अमृतचन्द्र जी ने उक्त घटना गुरुदेव को सुनाई और चर्चा अन्य साधुओ तक पहुँची। कुछ साधुओ ने इसे साधु-वृत्ति के प्रतिकूल वताया।

पर हमारे चरित्र-नायक वोले, "हमारी आँखो के सामने किसी का सतीत्व लुटता रहे और हम ऑख वचा कर निकल जाँय, यह तो हमारी ऑखो के सामने होते पाप को योगदान देना है। पर किसी के सतीत्व की रक्षा के लिए आवश्यक कार्रवाई करना पाप नही है, न हिसा ही है। अहिसा किसी को कायर नही वनाती और न साधु ही कायर तथा पगु होता है। वह तो शक्ति और मुक्ति पथ का योद्धा है।"

फिर उन्होने अपनी उर्दू कविता का एक पद्य दोहराया

मत जुल्म करो मत जुल्म सहो इसका ही नाम अहिसा है।
वुज़दिल है जो, वेजान है जो, उनसे वदनाम अहिसा है॥

आचार्य काशीराम जी तथा गुरुदेव ने उनका पूर्ण समर्थन किया।

मुनि जी का एक महान् गुण यह है कि उनके विचारो मे प्रगति-शीलता कूट-कूट कर भरी है। वे मानव को कायर बनाने के विरोधी है।

वे कहते है, "मै शान्ति चाहता हूँ पर श्मशान की शान्ति नही। मैं अहिसा का समर्थक हूँ पर भेडो की अहिंसा का नही। मै सत्य का उपासक हूँ, पर ऐसे सत्य का नही जिससे शिकारी को हम उसके भागते हुए शिकार का रास्ता भी बता दे।"

नवाँ अध्याय

आज के ये सन्त

चातुर्मास समाप्त होते ही प्रकृति-पुत्र गुरुदेव के साथ दूसरे स्थानो का भ्रमण करने के लिए निकल पडे। ज्यो-ज्यो उनके पग पथ पर आगे बढते जाते, चरणो के साथ-साथ ही उनकी योग्यता, विद्वत्ता और तपस्या मे भी अभिवृद्धि होती रही। मानो वे केवल भूमि ही नही नापते जा रहे हो वरन् पुराने अनुभवो को बटोरते हुए नये-नये अनुभवो और नये ज्ञान को प्राप्त करने की ओर अग्रसर हो रहे हो। इधर उनकी आयु मे क्षण-क्षण बढ रहा था उधर उनके ब्रह्मज्ञान-सिन्धु मे बिन्दु-बिन्दु की वृद्धि होती रही। अनेको नगरो का भ्रमण करते हुए वे बौहर (जि० रोहतक) पहुँचे।

एक सुन्दर तथा विशाल भवन पर उनकी दृष्टि गई। यह भवन ही नही, राजाओ के महलो को चुनौती देने वाली भव्य अट्टालिका है।

"गुरुदेव! यह किस राजा का महल है ?"

अमृतचन्द्र जी, जिनका मन प्रतिक्षण प्रभु-वन्दना मे आसक्त रहता है, गुरुदेव से पूछ बैठे। गुरुदेव के अधरो पर एक मुस्कान बिखर आई। बोले, "किसी राजा का नही, एक महन्त का है।"

"क्या किसी महन्त का ?" विस्मित होकर भोले सन्त अमृतचन्द्र जी पूछ बैठे।

"हाँ, इसमे आश्चर्य की क्या बात है ? महल एक महन्त का ही है और एक यही महल क्या, भारत मे तो ऐसे, बल्कि इससे अधिक, भव्य और सुन्दर उच्च अट्टालिकाओ के स्वामी महन्त लोग है ?" गुरुदेव ने सन्त अमृतचन्द्र जी को समझाते हुए कहा।

भवन की बाह्य शोभा से ही अमृतचन्द्र विस्मित थे पर यदि अन्दर देखा जाय तो कोई व्यक्ति भी उस राजसी ठाठ-बाट को देखकर यह

अनुमान लगा सकता है कि उक्त भवन किसी ऐश्वर्यप्रिय महाराजा का 'रगमहल' है। सुन्दर गलीचे, कालीन, फर्नीचर, झाड-फानूस, परदे, पखे और फूलदान आदि महलो के कमरो की शोभा है। चारो ओर सुगन्ध बिखर रही है, पकवानो और मिष्टान्नो के समुचित प्रबन्ध है। वैभव अपने पूर्ण यौवन की मदिरा उँडेल रहा है। कमरो की सजावट कामदेव को सहज ही मे जागृत कर सकती है और इस ठाठ-बाट का यह भवन एक महन्त की 'निवास-कुटीर' है। निवास-कुटीर अथवा ऐश्वर्य-स्थल---जो भी कहिए, पर यह सत्य है कि इन महलों मे व्यभिचार जन्म ले सकता है, सदाचार और वैराग्य नही।

और यह है वे महन्त जी। आप इनकी ग्लोब की भाँति गोल तोद को देखकर इन्हे करोड पति 'सेठ करोडीमल' न कह डालिए, ना-ना, यह तो महन्त जी है सनातन धर्म के सरक्षक, भगवद्-भजन के प्रेरक, सदाचार और सद्भावो के पोषक। ससार को मोक्ष के टिकट बाँटने वाले टिकट बाबू अर्थात् महन्त जी। ये वे महन्त है जिनके भगवान क्षीर-सागर मे खर्राटे लगाते है और ये उनके सबसे बडे, सोल एजेन्ट सुरम्य तथा वैभवपूर्ण अट्टालिका के अक मे विश्राम करते है और चूकि वे महन्त है, धर्म के पहले दरजे के ठेकेदार। इसलिए उनका राजसी परिधान गेरुए कपडे उनकी महन्तगिरी की पताका लहराते रहते है और महन्तगिरी साधु-वृत्ति की इस पताका को देखकर हमारे चरित्र-नायक आश्चर्यचकित है। मानो उन्होने विश्व का कोई आठवाँ अजूबा देख लिया है। वैराग्य को वैराग्य समझकर मोक्ष-प्राप्ति के चक्कर मे फँसे ब्रह्मचारी तथा विचारक को अभी क्या मालूम कि धर्मके नाम पर जनता-जनार्दन का शोषण करने के लिए कितने विषैले नाग कितने-कितने रूप भरकर सामने आते है। भारत के इस कलक पर हमारे चरित्र-नायक की आँखे खुली-की-खुली क्यो रह गई ?

विस्मययुक्त स्तब्धता भग करते हुए हमारे चरित्र-नायक बोले, क्यो गुरुदेव ! साधु यह भी है और साधु हम भी। वे राजसी ठाठ से रहते है और हम भिक्षा माँग कर खाते है, पानी तक माँग कर पीते है। कितना अन्तर है इन दो दशाओ मे। उनकी यह साधु-वृत्ति कैसी ?"

प्रश्न किया तो मुख पर अबोधता लिये हुए पर अन्तर मे उनके एक उपहास फडक रहा था।

"यह साधुवृत्ति नही, साधुवृत्ति का मजाक है, गन्दा उपहास, कलक!" तिरस्कारपूर्ण शैली से गुरुदेव बोले।

मुनि अमृतचन्द्र ने भारत के इस कलक को भी नोट कर लिया। बात यह है कि भारत भूमि से चिपट रहे भुजगो की वे एक सूची बनाते जा रहे है। क्यो? इसलिए कि उन्हे इन भुजगो से भारत को बन्धनमुक्त कराने के लिए देश को आन्दोलित जो करना है।

गुरुदेव और अमृतचन्द्र जी भ्रमणार्थ जा रहे थे। सामने से एक बन्द गाडी निकली जिस पर आगे-पीछे दोनो ओर तलवारो का पहरा है। और अन्दर गेरुए वस्त्र पहने *वैरागी जी—महन्त जी—विराजमान है* वे वैरागी जिन्होने ससार के मोह-मायाजाल के बन्धन तोड दिये है और मोक्ष-प्राप्ति के लिए सन्यास ले लिया है।

सब कुछ समझते हुए भी अमृतचन्द्र जी महाराज ने गुरुदेव से पूछ ही तो लिया, "गुरुदेव! महन्त जी तलवारो की छाव म क्यो?"

"साधारण-जन तो मोह-मायाजाल मे ही बन्दी होते है, ये तलवारो के भी बन्दी है। धन-दौलत ने इनके अन्दर भय उत्पन्न कर दिया है। लुटेरा सदैव उस व्यक्ति से भयभीत रहता है जिसको उसने लूटा हो। महन्त जी का पाप उन्हे नग्न खड्गो का बन्दी बनाये हुए है।" गुरुदेव बोले।

शोषण के इस छलिया रूप को देखकर मुनि अमृतचन्द्र के हृदय मे करुणा ने अगडाई ली। उस भोले-भाले मानव के प्रति करुणा जागी जो मोक्ष और चिर आनन्द प्राप्ति के लिए महलो के दासो को पूजता है और अपनी आँखो से पापाचार के इस मायाजाल को देखकर भी सम्भलना तो दूर रहा, बल्कि उन्हे भेट देकर, इनके पापो मे योगदान देता है।

मानव की इस दयनीय दशा पर विचार करते-करते वे इस घोरतम तम को छाँटने के उपायो पर विचार करने लगे। उन्हे लगा कि तिमिर की इन घटाओ को हटाने के लिए जनता को जागृत करना होगा। वाणी मे अधिक जादू भरना होगा। अपनी साधु-क्रियाओ को अधिक बल देना होगा। ऐसा तप करना होगा जिससे ऐसी शक्ति का प्रादु-

भाव हो जो दानवीय कृत्यो मे लिप्त मानव को एक ही आवाहन मे जागृत कर दे और उसके अन्दर का सोया हुआ इन्सान जाग उठे ।

तप का कार्यक्रम अबाध गति से चल रहा है। अमृत मुनि के ललाट पर चमकता तेज अपने अन्दर विद्युत्-शक्ति प्राप्त करता जाता है । उनके मुख पर ओज बढ रहा है और वे चल रहे है मानवता के महानतम आदर्श की ओर ।

मातृ दर्शन

जागते-जागते रात बीतती जाती है । शरीर ने विश्राम माँगा और उन्होने पलके झपका ली ।

उन्होने स्वप्न-लोक मे विचरण करना आरम्भ कर दिया । यमुना तीर पर वे समाधि लगाये बैठे है । प्रभु-वन्दना मे वे अपने-आप को खो बैठे है कि अनायास ही यमुना की कलकल करती लहरो स एक प्रकाश-पुज उठा और एक झटके से उनका ध्यान भग हो गया। प्रकाश-पुज फट गया और उसमे से सफेद, बिल्कुल सफेद, निर्मल, शीतल चाँदनी की नाईं सफेद वस्त्र पहने एक आकृति हौले-हौले उनकी ओर बढने लगी । वे देखते रहे । आकृति निकट आ गई । अब वे उसे साफ तौर पर देख सकते थे । ओह यह तो कोई स्त्री है । कौन है ? न जाने कौन है ? उन्होने तो उसे कभी नही देखा । पर जाने क्यो उसके हाव-भाव इस बात का साक्षात् प्रमाण है कि वह उन्हे पहचानती है और वे भी उसमे कुछ अपनापन पाते है, क्योकि उसकी ओर उनका हृदय जो खिच जाता है, उसकी ओर, उसके चरणो की ओर ।

"तुम कौन हो ?" उन्होने पूछा ।

"मै ! अरे अमृत तुम मुझे नही जानते ?"

"नही, मैने तुम्हे कभी नही देखा ।"

"हाँ, तुम पहचानते भी कैसे, तुमने देखा तो मुझे अवश्य है पर उस अवस्था मे जब कि तुम्हे कुछ ज्ञान नही था, तुम पहचानने की शक्ति नही रखते थे, तुम्हारी स्मरणशक्ति जागृत नही हुई थी ।"

"कब ?" उन्होने आश्चर्य से पूछा ।

"जब तुम उत्पन्न हुए थे । बेटा ! मै तुम्हे तीन दिन का ही तो छोडकर चली आई थी ।"

"क्या तुम मेरी माँ हो ?"

"हाँ बेटा, मैं ही तेरी जननी हूँ। मेरे लाल ! आज मुझे तुझे यमुना-तट पर वैरागी रूप मे देखकर कितना हर्ष हुआ। कितना गर्व है मुझे तुझ पर।"

अमृतचन्द्र जी का मस्तक आदर मे झुक गया।

"बेटा, तू मेरा नही, प्रकृति का पुत्र है, जिसने तुझे पाला है और उस दिन के लिए इतना बडा किया है जब तू भूमि को पापरहित करने की शक्ति प्राप्त कर लेगा, जब तू भटकती मानवता को प्रत्येक व्यक्ति के हृदय मे स्थान दिलायेगा। तुझे ससार मे किसी विशेष कर्तव्य की पूर्ति के लिए भेजा गया है। मेरे लाल ! प्रकृति की आशाओ को निराशा मे परिणत मत होने देना। देखना, मेरी कोख की लाज रखना।" आकृति बोली।

"हाँ, मुझे अपने कर्तव्य का पूर्ण ज्ञान है, पर आज इस प्रकार आपके दर्शन का कारण ?"

"कारण ! कारण जानना चाहते हो, तो सुनो। तुम केवल किसी सम्प्रदाय विशेष के अनुयायियो का पथ-प्रदर्शन करने अवतरित नही हुए। तुम सारी मानवता की जागीर हो। तुम पर सभी का अधिकार है और तुम्हारा कर्तव्य सारे जगत् के प्रति है, मानव शरीर प्राप्त करने वाले प्रत्येक प्राणी के प्रति।"

"पर मैने तो महावीर भगवान् के उपदेशो के प्रसार का व्रत लिया है माँ !"

"भगवान् महावीर और राम मे कोई अन्तर नही बेटा ! तुम मे युग-युग के अन्तर से ही कुछ अन्तर उत्पन्न हुए है। समय-समय पर तुम्हारी आवश्यकता पडी है और किसी विशेष भटकाव का अन्त करने के लिए तुमने किसी विशेष अस्त्र का प्रयोग किया है। अन्तर देखने वालो की दृष्टि का हो सकता है, भावो का नही। सारे समाज को अपनी छत्र-छाया मे लो और कल्याण का पथ दर्शाओ, तुम्हारी विजय होगी। याद रखो, धन पर जब किसी एक व्यक्ति के स्वार्थो की शृङ्खलाएँ पड जाती है तो वह धन नही शोषणयुक्त पूँजी बन जाता है——रक्त के सिक्के। जब बहते पानी के चारो ओर दीवार-शृ खला डालकर उसे एक जगह

ाध दिया जाता है तो वह सड जाता है। जब किन्ही एक धर्मावलम्बियो को ही अपने को सौप दिया जाता है तो अन्य धर्म वाले मानव-समाज से वह कट जाता है। अपने कर्तव्य के चारो ओर सीमाएँ मत बाँधो। हृदय को विशाल बनाओ।" मातेश्वरी की आकृति ने मुनि अमृतचन्द्र जी को समझाया।

वे बोले, "माँ, मै अपने कर्तव्य के क्षेत्र को विकसित करता आ रहा हूँ। मैने मत-पन्थो के झूठे मायाजाल को छोड दिया है, केवल इसलिए कि पाप चाहे वह किसी रूप मे भी हो, मुझे सह्य नही है। पर मन मे बसी भगवान् महावीर की शिक्षाएँ मुझे मानव जाति को सत्य, अहिसा और शान्ति की राह दिखाने को कहती है। मै उन उपदेशो को मोक्ष का एकमात्र पथ मान चुका हूँ।"

"भगवान् महावीर भी तो मानव जाति के लिए एक अवतार हीथे," मातेश्वरी की आकृति ने कहा, "पर जिस-जिस महामानव को अवतार नाम दिया जाता है उनकी शिक्षाएँ केवल एक सम्प्रदायमात्र के लिए नही होती बल्कि वे तो सारे मानव-जगत् के लिए होती है। तुम्हारा कर्तव्य है कि दुनिया को किसी सम्प्रदायविशेष स्वीकार करने की प्रेरणा न देकर सत्य, अहिसा और शान्ति का पाठ सारे जगत् को पढाओ। सम्प्रदायो का झगडा मानव-जाति को विभाजित करके नये उत्पातो को जन्म देता है।"

आकृति ने मुनि जी को आशीर्वाद दिया और वायुमण्डल मे विलीन हो गई। तदुपरान्त न वहाँ आकृति थी, न प्रकाश-पुज। चारो ओर शान्ति व्याप्त थी।

मुनि जी का स्वप्न भग हो गया और न जाने निद्रा भी कहाँ विलीन हो गई। वे उठ बैठे और प्रभु-वन्दना मे खो गये।

दूसरे दिन प्रयत्न करने पर भी वे रात्रि के उस स्वप्न को न भुला सके। सफेद वस्त्रो में लिपटी आकृति उनके नेत्रो के सामने आ खडी होती और उनके कानो मे वे ही शब्द गूज उठते जो उन्होने स्वप्न-लोक मे सुने थे। यह स्वप्न था अथवा भगवत् लीला, वे यही सोचते रहे। आखिर भगवान् मुझसे क्या कराना चाहते है ? सम्प्रदायो की दीवारो को लाँघ जाऊँ ? सम्पूर्ण मानव समाज का हो रहूँ ? पर यह समाज जो

स्वय खण्डो मे विभाजित है, सारे का सारा समाज मेरी ओर कैसे आकर्षित होगा ? केवल मेरी ही क्यो सुनेगा ? मन मे इस प्रश्न का आना था कि उनकी बुद्धि ने तुरन्त उत्तर दिया---सत्य, चाहे वह किसी के कण्ठ से निकले, सारे ससार पर प्रभाव डालता है। सारी मानव जाति चाहे जैन धर्म को न स्वीकार करे पर भगवान् महावीर के उपदेशो की सभी सराहना करते है।

दसवाँ अध्याय

पूतना के ये वंशज

भाषण देने मे तो अमृत मुनि पहले से ही निपुण थे जैसे वक्तृत्व शक्ति उन्हे प्रकृति की ही देन हो। परन्तु अब उनकी भाषण शैली निखरने लगी। उनके शब्दो का जादू निशिदिन द्विगुना, चौगुना होता रहा। जब वे बौहर से एक दिन विश्राम करके अन्य नगरो के लिए विहार कर गये पथ मे ही गुरुदेव ने उन्हे धार्मिक उपदेश देने की अनुमति दे दी। किसी भी मुनि को इतनी शीघ्र इतने कम समय मे ही धर्मोपदेश करने की अनुमति नही मिल जाती, पर गुरुदेव अपने शिष्य की योग्यता और ज्ञान पर गर्व करते थे। उन्हे विश्वास था कि उनका शिष्य पुराने-से-पुराने सन्यासियो तक को शास्त्रार्थ मे पराजित कर सकता है। उनके उपदेश सुनकर अन्य धर्मों के अनुयायी भी उनकी ओर आकर्षित होने गे। उनकी वक्तृत्व-शक्ति का इतना प्रभाव हो गया कि वे राह चलते ोगो को घण्टो अपने उपदेश सुनने के लिए रोक सकते थे।

व्याख्यानो की झडी लगने लगी। रोहतक पहुँच कर उन्होने आठ व्याख्यान दिये और सम्वत् १९९५ का चातुर्मास दादरी, सम्वत् १९९६ का सिरसा और १९९७ का हिसार मनाया।

हिसार मे उनका आगमन हुआ कि जनता मे चहल-पहल मच गई। अनेक नगरो मे अपने उपदेशो की कीर्ति बखेरता हुआ, श्रोताओ के दिल जीतता हुआ यह महान् योगी यहाँ पधारा तो हिसार के जैन समुदाय ने उनके स्वागत मे नेत्र बिछा दिये। चारो ओर जयजयकार, वन्दना और स्वागत की धूम। पर जैन धर्म भी अखण्ड नही। विभाजन और भेदभाव तो हिन्दू जाति के रोम-रोम मे बसा है फिर जैन धर्म वाले ही एक क्यो रहते? हिसार मे श्वेताम्बर, दिगम्बरो मे आपसी खीचतान चल रही थी, कौन श्रेष्ठ और कौन अश्रेष्ठ, कौन सत्य और कौन असत्य पर आधारित झगडे का दावानल अपने पूरे वेग से भड़क रहा

या। अमृत मुनि के हिसार मे पहुँचते ही दिगम्बर मत के मानने वालो के कान खडे हुए। उन्होने समझा कि अमृत मुनि तो उनके हौसले पस्त कर देगा।

चातुर्मास आरम्भ हुआ और मुनि अमृतचन्द्र जी महाराज ने अमृत-वर्षा आरम्भ कर दी। हजारो व्यक्ति शास्त्रो के ज्ञाता और ज्ञान के महान् भण्डार, योग्य, तपस्वी स्वामी अमृतचन्द्र के व्याख्यान की ओर खिचे चले आते। दिगम्बर जैनियो ने इसे अपनी हार समझा और इस हार का कारण थे अमृत मुनि। इसलिए वे उनकी आँखो मे खटकने लगे। हाँ, समस्त मानवता का सन्यासी दिगम्बरो को शत्रु दीख रहा था। कोई इस मुनि के हृदय मे आवे तो उसे ज्ञात हो कि समस्त सम्प्रदायो के समस्त इन्सानो के लिए कितना भ्रातृत्व, 'कितना प्रेम इस मुनि मे भरा है।

'व्याख्यानो की धूम थी। अन्तत हमारे चरित्र-नायक रोग-शय्या पर पड गये। दिगम्बर जैनियो ने आराम की साँस ली। चलो बला टली।

पर यह क्या ? अमृतचन्द्र जी को अब भी चैन नही है। वे रोग-शय्या पर पडे है। डाक्टर की राय है कि वे स्वस्थ होना चाहते है तो कुछ दिनो के लिए पूर्ण विश्राम करे। पर डाक्टर की राय और स्वास्थ्य का किसे ध्यान है ? वे पडे-पडे ही लिखते है, अपने विचारो को कण्ठ से न प्रगट कर लेखनी से प्रगट कर देते है और उनके उपदेश छाप छाप कर बाँट दिये जाते है। तनिक भी चैन नही, विश्राम की किंचित् मात्र भी चिन्ता नही। चिन्ता है तो बस एक बात की कि मानव भटक न जाये। उनके इतने परिश्रम और मस्तिष्क की उलझन से रोग ने भीषण रूप धारण कर लिया। पर स्वाध्याय, चिन्तन और लेखन अभी नही रुका।

भक्तो ने उन्हे कहा कि वे इतना कार्य न करे, पूर्ण आराम चाहिये उन्हे। वे बोले, "मै अपने अन्तिम साँस तक भी आराम नही ले सकता। मैने आराम लेने के लिए सन्यास नही लिया है।"

भक्त तो चुप रह गये पर उनकी इस दशा मे सभी भयभीत अवश्य हो गये और उनकी महानता का जो स्तर भक्तो के मन मे था वह कुछ उच्चता की ओर ही गया।

एक दिन बीमारी ही मे उन्हे दिगम्बर सम्प्रदाय के दो ग्रथो की आवश्यकता हुई। कहाँ से मिले वे ? प्रश्न उठा। लोगो ने बताया कि दिगम्बर जैन मन्दिर से प्राप्त हो सकते है। महाराज ने अपने भक्तों से ग्रथ लाने को कहा। भक्तो ने कहा, "भगवन्! दिगम्बर जैनी आज-कल खार खाये बैठे है उन्हे ग्रथ नही मिल सकेगे।"

महाराज स्वय ही एक अन्य साधु के साथ उसका सहारा लेकर चलते हुए दिगम्बर जैन मन्दिर पहुँचे। वहाँ प० वटुकेश्वरदयाल जी वैद्य रहा करते थे। जो स्थानीय दिगम्बर जैनियो के नेता थे। बडे ही योग्य और चिकित्सा-विज्ञान मे निपुण।

रोगावस्था मे उन्हे अपने यहाँ देखकर वटुकेश्वरदयाल जी को बहुत ही आश्चर्य हुआ। "आज इस अवस्था मे आपने कैसे कष्ट किया स्वामी जी ?" पडित जी बडे भक्ति भाव से बोले।

महाराज ने आने का उद्देश्य बताया। उन्होने ग्रंथ देना स्वीकार कर लिया। आदर-सत्कार से बैठाया और चरणो का स्पर्श कर वे भक्ति-रस मे डूबे आलकारिक सम्बोधनो को प्रयोग करके बोले

"स्वामीजी ? एक बात कहूँ ?"

"कहिए।"

"आपका इलाज कौन कर रहा है ?"

महाराज ने डाक्टर का नाम बताया।

"स्वामी जी! डाक्टरो की औषधियाँ तो अपवित्र होती है। कितनी ही औषधियो मे मदिरा तक का अश होता है। अँग्रेजी दवाइयाँ तो आपके नियमो को खण्डित कर देगी।"

"नही! मेरे विचार मे तो ऐसा नही है। डाक्टर हमे ऐसी कोई औषधि नही देगा जिनसे हमारे नियमो का उल्लघन होता है और न हम ही ऐसी औषधियो को स्वीकार कर सकते है।" महाराज ने कहा।

पण्डित जी ने अपनी बात को सत्य सिद्ध करने के लिए इधर-उधर की कितनी ही बाते कही और अन्त मे बोले, "महाराज! इस ससार मे झूठ, धोखा और फरेब आदमी की नस-नस मे भर गया है। आपको क्या मालूम ? डाक्टर आपके साथ छल कर सकता है और फिर हमारे रहते हुए आप को औषधि की कोई चिन्ता नही होनी चाहिए। आपके

चरणो की कृपा से मै, स्वय यहाँ का एक प्रसिद्ध वैद्य हूँ। आप मेरी औषधि लीजिए। यदि मुझ जैसे तुच्छ व्यक्ति की इतनी ही, सेवा आप स्वीकार कर ले तो मै अपने को धन्य मानूँगा।"

महाराज पहले तो माने नही, पर पडित वटुकेश्वरदयाल भी ठहरे एक चतुर व्यक्ति। उन्होने कहा, "स्वामी जी आप हमारे लिए पूजनीय है, हम जैनियो के रहते आपकी यह बरी दशा हो, यह हम सहन नही कर सकते। आप मेरी औषधि का सेवन तो कीजिए। भगवान् ने चाहा तो आपको मेरी दो गोलियो से ही शान्ति मिल सकेगी।" महाराज का पवित्र हृदय ठहरा। वे समझे कि प० वटुकेश्वरदयाल जी उनकी सेवा ही करना चाहते है और जब उनकी दो गोलियो से ही रोग की ओर से शान्ति मिल सकती है तो फिर हर्ज ही क्या है? पर प्रकृति-पुत्र को यह पता नही कि पण्डित जी अपनी दो गोलियो से ही चिर शान्ति दिलाने की डीग हाँक रहे है।

दो गोलियाँ देते हुए वैद्य जी ने कहा, "गोलियाँ खाते ही छाती पर मिट्टी का लेप करा लीजिए।"

ग्रथ और औषधि लेकर महाराज चले आये। साथ मे ही विराजमान महाराज कपूरचन्द्र जी को जब ज्ञात हुआ कि अमृतचन्द्र जी महाराज प० वटुकेश्वरदयाल से औषधि लाये है, उन्होने कहा, "सम्प्रदायो का आपसी भेदभाव ईर्ष्या और द्वेष का रूप धारण कर चुका है और द्वेष दावानल का रूप ले चुका है। आज-कल आप दिगम्बरो की आँखो का काँटा बने है। द्वेषाग्नि में झुलसते व्यक्ति से सब कुछ सम्भव है ऐसी दशा मे इन गोलियो की डाक्टरी परीक्षा कराये बिना खाना खतरे से खाली नही है।"

"महाराज! आपको क्या सन्देह है इस औषधि के सम्बन्ध मे?" हमारे चरित्र-नायक ने पूछा।

महाराज कपूरचन्द्र जी ने गोलियो को देखकर कहा, "मुझे सन्देह है कि यह विष है।"

"विष!" अमृतचन्द्र जी ने आश्चर्य प्रगट करते हुए कहा, "मेरे विचार से तो प० वटुकेश्वरदयाल जी ऐसा नही कर सकते। उन्होने

तो मुझे औषधि देते समय वह भक्ति दर्शाई है कि उसे ही देखकर मैं इस औषधि पर कोई सन्देह नही कर सकता।"

"अमृतचन्द्र! यह दुनिया छल-फरेब से भरी पडी है। भक्ति-भाव दर्शाना तो बिल्कुल ऐसा ही समझा जा सकता है जैसे कबूतर पकडने के लिए दाना डाल दिया हो। आप यह न भूलिए कि वह एक चतुर व्यक्ति है। वह जानता है कि इतनी भक्ति-भाव दर्शाए बिना आप वर्तमान परिस्थितियो मे उसकी औषधि का सेवन नही कर सकते।" महाराज कपूरचन्द्र जी ने कहा।

"पर मुझे विष देने से उसका क्या लाभ?"

"खीझा हुआ व्यक्ति हानि-लाभ की बात नही सोचा करता," महाराज कपूरचन्द्र जी ने उत्तर दिया। "आपको अपने रास्ते से हटा देने के लिए क्या वे लालायित नही होगे। आपको मालूम ही है कि आपके उपदेशो से प्रभावित होकर कितने ही दिगम्बर जैन हमारी ओर आकर्षित हो गए है और वे देख रहे है कि उनकी सख्या घट रही है।"

"महाराज! यदि मुझे विष द्वारा ही मुक्ति मिलनी है तो भी तो मुझे भय की कोई बात नही है। मृत्यु तो एक दिन आनी ही है। मै मृत्यु से नही घबराता।" अमृतचन्द्र जी अपनी हठ पर अडे रहे। उन्हे विश्वास ही नही आता था कि मत-विभिन्नता मनुष्य को इतना नीच भी बना सकती है कि वह किसी सन्त को विष दे दे।

जब अमृतचन्द्र जी न माने तो महाराज कपूरचन्द्र जी ने उनसे कहा कि वे दोनो गोलियाँ एक साथ न खाएँ। इतनी बात मानने मे अमृतचन्द्र जी भी न हिचके और उन्होने एक गोली खा ली।

अभी गोली को कण्ठ से नीचे गये कुछ ही मिनट हुए है कि अमृतचन्द्र जी के नेत्र झुकने लगे और देखते ही देखते उनकी चेतना लुप्त हो गई।

सभी लोग घबरा गये। सन्देह ने सर उठाया। क्या आज महर्षि दयानन्द के जीवनान्त की घटना दोहराई जायेगी। क्या सुकरात की भाँति ही अमृतचन्द्र जी के जीवन का अन्त हो जायेगा। क्या यह निराला सन्त विषपान करने के उपरान्त कभी सचेत न होगा? भक्त-मण्डली भयभीत थी। शकाओ का ज्वार-भाटा आ रहा था।

चारो ओर लोग दौड पडे । डाक्टर आये । चिकित्सा आरम्भ हुई । भक्तो ने प्रभु-वन्दना की । नारियाँ नेत्रो मे अश्रु-धार लिये आँचल फैला कर भगवान् से मुनि अमृतचन्द्र के जीवन की भिक्षा माँगने लगी । सारा नगर चिन्तित हो गया । वे भी जो मुनि अमृतचन्द्र जी से प्रभावित थे और वे भी जो दिगम्बर जैन थे और भयभीत थे कि यदि सन्त मृत्य को प्राप्त हो गये तो क्या होगा ? खलवली का यह वातावरण ३६ घण्टे चलता रहा । डाक्टरो ने अपने प्रयत्नो को चरम सीमा तक पहुँचा दिया । पर चूँकि प्रकृति-पुत्र तो एक महान् कार्य के लिए जन्मे है, उन्होने नेत्र खोले। भक्तो का सेरो खून वढ गया । नारियाँ गद्गद हो उठी । वालक युवको और वृद्धो के साथ भगवान् की जय-जयकार के साथ-साथ अमृतचन्द्र महाराज की जय-जयकार मनाने लगे ।

नेत्र खुलने पर भक्तो और डाक्टरो ने पूछा, "आपको विप किसने दिया ?"

"विप तो उसे मै कह नही सकता । प० वटुकेश्वरदयाल जी ने दी तो कोई औपधि थी । पर सम्भव है उनसे कोई भूल हो गई हो । जान-बूझकर उन्होने मुझे विष दिया होगा, ऐसी तो सम्भावना नही है ।"

पूज्य अमृतचन्द्र जी के शब्द सुनकर लोग अचरज मे पड गये। वाह री करुणा ! वाह रे सन्त !

लोगो ने कहा, वटुकेश्वरदयाल पर केस चलाया जाय पर अमृतचन्द्र जी महाराज ने उन्हे आज्ञा नही दी । वे वोले, "मेरा कोई शत्रु नही है, मै किसी से प्रतिशोध लेना नही चाहता । प० वटुकेश्वरदयाल ने वही किया जो एक सकुचित विचारो के व्यक्ति से आशा की जा सकती है। भगवान् उसके हृदय मे सत्य को स्थान दे ।"

मुनि अमृतचन्द्र जी की इस महानता और उच्चता को देखकर सारे नगर ने नतमस्तक होकर उनकी विरुदावली गाई । प० वटुकेश्वर-दयाल, जो भय के मारे छुपे-छुपे फिरते थे, दूसरो को अपना मुँह दिखाते भी शरमाने लगे जैसे उन्हे ज्ञान हो कि उनसे कोई भयकर पाप हो गया है।

अमृतचन्द्र जी महाराज को चेतना तो लौट आई पर रोगमुक्त न हुए। वे एक वर्ष तक जीवन व मृत्यु के वीच लटकते रहे। कभी

मृत्यु निकट दिखाई दे जाती तो कभी जीवन के आसार प्रगट हो जाते। पर अमृतचन्द्र जी महाराज को विश्वास था कि मृत्यु अपने कार्य मे सफल नही होगी क्योकि अभी तो ससार को उन्हे बहुत से चमत्कार दिखाने शेष है, अभी तो अधकार की काली घटाएँ मानव समाज पर आच्छादित है, अभी तो छल-फरेब का साम्राज्य है, अभी तो सत्य के नाम पर असत्य विहँस रहा है, अभी तो मानव मानवता के महानतम आदर्श से कोसो दूर है।

मृत्यु खाली हाथ वापिस चली गई और महात्मा अमृतचन्द्र रोग-शय्या से उठ खडे हुए। उन्होने हिसार से विहार किया और पुन. भ्रमण के लिए निकल पडे।

पॉचवॉ चातुर्मास दादरी, छठा गुडगॉवा और सातवाँ बडौत (जि० मेरठ) मे मनाया गया। सभी स्थानो पर विभिन्न सम्प्रदायो के लोग उनके चारो ओर एकत्रित हो जाते, उनके उपदेशो मे जैनो के अतिरिक्त अन्य धर्मावलम्बी भी एकत्रित होते और उनके उपदेशामृत से धन्य होते।

सत्य, अहिसा और शाति ही उनके उपदेशो का निचोड़ था पर वे मानव को ललकार-ललकार कर दानवता, पाप और शोषण के विरुद्ध विद्रोह पताका फहराने और मानवता के आदर्शों का पालन करने के लिए आमन्त्रित करते। उनके कण्ठ से एक ही बात विशेष रूप से निकलती—"इन्सान हो तो सच्चे इन्सान बनो। मानवता ही महान् आदर्श है, और मानव धर्म ही सब से वडा धर्म है। जिसमे इन्सानियत नही है वह अपने को मानव कहलाने का अधिकारी नही है।"

दिल्ली में संगम

प्रकृति-पुत्र की आकर्पण तथा जादू से ओत-प्रोत वाणी का मानव-हृदय पर आश्चर्यजनक प्रभाव हो रहा था। इस प्रभाव को देखकर जैन साधु-समाज भी चकित रह गया। अब उन्हे अनुभव हो रहा था कि महातपस्वी अमृतचन्द्र जी महाराज और उनके परम प्रतापी गुरुदेव कस्तूरचन्द्र जी महाराज के समाज का परित्याग कर देने से जैन साधु-समाज अपने दो महान् रत्नो से हाथ धो बैठा है। उन्हे यह स्पष्ट होता जा रहा था कि इन दो महामुनियो से समाज को असीम शक्ति मिल

सकती है और इन दो महात्माओ की कीर्ति से ही, जैन साधु-समाज मे नये प्राण डाले जा सकते है। दूसरी ओर धर्मपरायण जैन-जनता मुक्त-कण्ठ से मुनि अमृतचन्द्र जी की प्रशसा कर रही थी और यह भी प्रगट होने लगा था कि जनता चाहती है कि जैन साधुओ मे फैला अन्धकार समाप्त करने के लिए इन दो महामुनियो—भास्कर और चन्द्र—के प्रकाश का लाभ उठाया जाय। जनता की माँग और साधु-समाज मे भी अनुभव होने वाली कमी उग्रता से अनुभव होने लगी। कस्तूरचन्द्र जी महाराज और हमारे चरित्र-नायक के जैन साधु-समाज से बाहर आने से रिक्त हुए स्थान की पूर्ति कोई मुनि भी नही कर सकता था। उनके जैसे अलौकिक गुण भी हो किसी मे ?

अन्तत आचार्य काशीराम जी महाराज ने दोनो महात्माओ को दिल्ली निमन्त्रित कर लिया। हमारे चरित्र-नायक को किसी से वैर नही था, वे तो सुधार चाहते थे—साधु-समाज का सुधार। उन्हे न आचार्य जी से कोई शिकायत थी और न समाज से ही कोई शिकवा। वे तो अपने अटल विश्वास और तिमिर को छाँटने की कामना के कारण ही जैन साधु-समाज से बाहर आये थे। उनका समाज का परित्याग बिलकुल वैसा ही था जैसे कि लोक-सभा से कुछ लोग वाक आउट कर जायँ, केवल किसी अनुचित व्यवहार के विरोध मे। और फिर महाराज अमृतचन्द्र जी तो केवल सत्य के लिए ही विद्रोही हुए थे।

हमारे चरित्र-नायक अपने गुरुदेव के साथ दिल्ली पहुँचे और वहाँ उन्होने आचार्य काशीराम जी की सारी बातो को शान्तिपूर्वक सुना। उन्होने कहा, "जैन साधु-समाज को अधोगति से बचाना तो आप भी चाहते है और इसी बलवती इच्छा के लिए तो आपने समाज का परित्याग किया है पर वर्तमान विषाक्त वातावरण को शुद्ध करने के लिए आपकी जैन साधु-समाज को बहुत बडी आवश्यकता है। बाहर रह कर आप से साधु-समाज भी लाभान्वित नही हो पाता और दोषी भी भय-रहित हो गए है। आप यदि समाज मे रहे तो कोई भी दोषी समाज मे चैन की बशी नही बजा सकता। दीवारो से बाहर यदि भास्कर अपनी किरणे बखेरता भी फिरे तो भी मकान के अन्दर व्याप्त अधकार नही दूर हो सकता, उसके लिए तो अन्दर ही प्रकाश की आवश्यकता है।"

आचार्य जी ने उन्हे विश्वास दिलाया कि समाज के शुद्धीकरण के लिए उचित कार्रवाइयाँ की जायेगी और उनके विचारानुसार कार्य किये जायेगे। जगत् को पाप तथा पाखण्ड के चगुल से मुक्ति दिलाने का व्रत धारे हुए महाराज ने साधु-समाज की शुद्धि के लिए समाज मे पुन प्रवेश करना स्वीकार कर लिया। उनकी अहिसक नीति सम्बन्धी उनकी 'आजाद अहिसा' नामक उर्दू कविता के बोल गूँज उठे

मेरी आँखों में तूफाने आतिश की रवानी है,
ज़बाँ में बारिशे रहमो करम शीरी बयानी है।
मेरी इक आँख में शोले है इक आँख में पानी,
मुझे कुदरत ने बख्शे है ये दोनों राजे सुल्तानी।
कही पर राम हूँ, महावीर हूँ और बुद्ध गौतम हूँ,
कहीं पर हूँ युधिष्ठिर कृष्ण, अर्जुन भीम भीष्म हूँ।
म एक पौदा हूँ गुल रखता हूँ बर्गोबार रखता हूँ,
हिफ़ाजत के लिए अपनी मगर कुछ ख़ार रखता हूँ।
मै वह तदबीर हूँ तकदीर जिसके पाँव पड़ती है,
मै वह जंजीर हूँ 'अमृत' जो दुनिया को जकड़ती है॥

अमृतचन्द्र जी और कस्तूरचन्द्र जी महाराज के प्रवेश के समाचार से जैन-समुदाय मे हर्ष की लहर दौड गई और उन साधुओ के दिल दहल गये जो भास्कर की किरणो से घबराते थे। रात्रि का हृदय सूर्य से और चोर का हृदय प्रकाश से घबराता ही है।

महाराज अमृतचन्द्र जी ने नई दिल्ली मे चातुर्मास मनाया। जैन-समुदाय अपने मुनि की अमृतवाणी सुननें के लिए दौड पडा। प्रसिद्ध वक्ता और प्रकाण्ड पण्डित का स्वर समीर की रग-रग मे समा गया।

"मानवता ही महान् आदर्श है, शान्ति, अहिसा और सत्य मानवता के प्राण है; अन्याय अन्याय के द्वारा समाप्त नही किये जा सकते। प्रेम और भ्रातृत्व ही ससार को शान्ति के पथ पर ले जा सकते है। क्षमा तथा करुणा मानव का प्रशसनीय गुण होता है।"

"दूसरो के साथ वह कर्म न करो, जो अपने लिए अच्छा नही समझते।"

मुनिजी के कण्ठ मे मधुरता ने अपनी पराकाष्ठा समर्पित कर दी है। उनके मनमोहक और ज्ञानपूर्ण गीतो को जनता मे बहुत ही पसन्द किया जाता है, इसलिए अपने व्याख्यानो मे वे अपने कवि-हृदय के बोल भी श्रोताओ को सौंप देते है।

ग्यारहवाँ अध्याय

एक अभिन्न सहयोगी

दिल्ली मे एक दिन हमारे चरित्र-नायक का दीक्षा-सस्कार सम्पन्न हुआ था और आज नई दिल्ली मे उन्हे प्रकृति ने एक ऐसा रत्न भेट किया जो उनके जीवन मे एक सहयोगी, एक अच्छे साथी के रूप मे कार्य करेगा। मानो कृष्ण को अर्जुन मिल गया।

यह गौरवर्ण राजकुमार है। हाँ, राजकुमार ही कहिए, कम-से-कम शरीर और नख-शिख तो किसी वैभवशाली राजमहल के चान्द-खण्ड से किसी तरह कम नही है। युवावस्था मे अभी-अभी पदार्पण किया है और इस अवस्था मे प्रेम तथा आसक्ति का भाव विशेषतया राजकुमारो पर अधिक होता ही है पर इस राजकुमार को प्रेम हुआ है साधुवृत्ति से, आसक्ति हुई है वैराग्य के प्रति। साधुवृत्ति की ओर आकृष्ट होने का मुख्य कारण है महाराज अमृतचन्द्र जी की जादूभरी वाणी। हमारे चरित्र-नायक के प्रवचन यदि किसी धर्मपरायण व्यक्ति मे वैराग्य अकुरित कर डाले तो कोई आश्चर्य की तो बात है नही, हाँ प्रसन्नता की ही बात है कि दिल्ली ने एक बार उन्हे ताज दिया था, बाणा दिया, साधुवृत्ति का ताज या बाणा और आज दिल्ली के नये प्रागण नई दिल्ली ने उन्हे एक वैरागी दिया, ऐसा वैरागी जिस पर अमृतचन्द्र जी महाराज को गर्व होगा, गर्व ऐसा साथी पाकर जो उनके मुक्ति-मार्ग को प्रशस्त करने के भारी कार्य मे सदैव सहयोगी होगा, जो उनसे उनकी परछाईं की भाँति ही सहयोग करेगा।

श्रोमीय मुनि 'गौतम' के नाम से पुकारे जाने वाले महात्मा नई दिल्ली के चातुर्मास की ही देन है। एक ऐसी देन है जो कधे से कधा मिलाकर मुनि अमृतचन्द्र जी के साथ मानव-जगत् के कल्याण के लिए जीवन-पथ पर चलता रहेगा, एक महापुरुष के महान् योगी सहचर की नाई।

गूँज उठा गीता का गान

और इन्ही दिनो प्रकृति-पुत्र ने 'गौतम-गीता' रची, जो श्रीमद्भगवद्गीता के जोड का सत्य, अहिसा, शान्ति, सेवा, तपस्या और मोक्ष के ज्ञान से भरपूर एक महान् ग्रथ है और जिसने सदा-सदा के लिए अमृत मुनि को अमर कर दिया है। अमर कर दिया है उस समय तक के लिए, जब तक चाँद मे शीतल चाँदनी बखेरने की शक्ति है, जब तक सूर्य की किरणो का तेज जीवित है, जब तक जगत् अपने चक्र पर घूम रहा है, भूमि है और आकाश है, भूतल पर जब तक एक भी प्राणी है यह ग्रथ उसका पथ दर्शाता रहेगा और इसलिए अमृतमुनि की कीर्ति का भी गुणगान होता ही रहेगा।

नई दिल्ली मे 'गौतम गीता' पूर्ण कर और भावी गौतम मुनि को अपने साथ लेकर उन्होने विहार किया। सम्वत् २००२ का चातुर्मास गुहाना मण्डी (जि० रोहतक) म मनाया। उर्दू व फारसी का उन्हे प्रखर ज्ञान हो चुका था और आजकल वे हिन्दी के साथ-साथ उर्दू की कविता भी करने लगे थे। इसलिए भ्रमण के दिनो मे वे उर्दू व हिन्दी की कविताओ के साथ अपने प्रवचनो को और भी अधिक प्रभावशाली बना पाये। सुनने वाले मत्रमुग्ध होकर सुनते ही रह जाते और उनकी वाणी की ओर अन्य धर्मावलम्बी भी अधिकाधिक सख्या मे आकर्षित हो जाते।

श्री ओमीश गौतम मुनि के रूप में

सन्त के चरण रुके नही। वे अमृत-वाणी वर्षा करके आगे बढते ही जाते और भ्रमण करते-करते वे सोनीपत पहुँच गए। इस समय तक श्री ओमीशचन्द्र जी दीक्षा के योग्य हो चुके थे। अत निश्चय हुआ कि सोनीपत मे ही दीक्षा-सस्कार सम्पन्न हो।

ओमीशचन्द्र जी का जन्म सहारनपुर (उत्तर प्रदेश) के अग्रवाल दिगम्बर जैन परिवार मे हुआ था। आपके स्वर्गीय पिता ला० मित्रसेन जी का स्थानीय जैन बिरादरी मे प्रमुख स्थान था। ओमीश जी ने श्रीमती भक्ति देवी की कोख से जन्म लेकर भक्ति को ही अपना आदर्श बना लिया था। स्वर्गवासी होने से पूर्व ही उनके पिता

जी अपनी सम्पत्ति को अपने दोनो पुत्रो मे विभाजित कर गये थे। श्रोमीश जी के बडे भाई श्री जीयालाल जी ने तो अपनी सम्पत्ति सम्भाल ली और ओमीश जी के नाबालिग होने के कारण उनके भाग की सम्पत्ति ट्रस्टियो के अधिकार मे थी। परन्तु दीक्षा लेने से पूर्व ही ओमीशचन्द्र जी ने अपनी सम्पत्ति को अपने भतीजे के नाम कर दिया और स्वय मुद्रा से खरीदी जा सकने वाली सम्पत्ति से अपना नाता तोडकर ज्ञान की सम्पत्ति के अधिकारी बन गये।

गुरुदेव कस्तूरचन्द्र जी महाराज की इच्छा थी कि ओमीशचन्द्र जी हमारे चरित्र-नायक के शिष्य बने पर अमृतचन्द्र जी महाराज तो ठहरे उच्च विचारो के प्रतीक, उन्होने इसे स्वीकार न किया और अपने गुरुदेव के चरणो मे ही श्रोमीशचन्द्र जी को अपनापन समर्पित कर देने के लिए परामर्श दिया और अन्त मे वे कस्तूरचन्द्र जी महाराज के ही शिष्य बने।

सोनीपत नगरी के इतिहास मे वह दिन अमर रहेगा, जिस दिन श्रोमीशचन्द्र जी का दीक्षा-सस्कार पूर्ण उल्लास और समारोह के साथ मनाया गया। २५ हजार व्यक्तियो की भारी भीड उत्सव मे शरीक हुई। समस्त बाजारो मे हर्ष हिलोरे मार रहा था। सारी नगरी खुशी से झूम उठी थी। सजधज से हाथियो पर दीक्षार्थी का जलूस निकाला गया और दीक्षार्थी के साथ-साथ जलूस में चलने वाली जनता के उत्साह की मत पूछिए, जैसे जनता का सागर उमड पडा था। चारो ओर उत्साह ही उत्साह! दीक्षार्थी के सिर पर रखा हुआ ताज अशोक महान् के ताज मे किसी भाँति कम महत्त्व नही रखता था। इन पक्तियो के लेखक की लेखनी से दिया गया उन्हे राजकुमार का नाम सोनीपत मे सत्य सिद्ध होने लगा, मानो यह अलकार न होकर वास्तविकता हो।

दीक्षा-समारोह के अवसर पर एक विराट् कवि सम्मेलन भी आयोजित हुआ। पजाब के प्रसिद्ध कवियो ने भाग लिया। सारा कार्य-क्रम बडा ही चित्ताकर्षक था।

सोनीपत से विभिन्न क्षेत्रो का भ्रमण करते हुए हमारे चरित्र-नायक बडौत पहुँचे। जहाँ उन्होने सम्वत् २००३ का चातुर्मास बडे समारोहपूर्वक मनाया। चातुर्मास की समाप्ति पर उन्होने विहार किया और अनेक स्थानो पर धर्म-प्रचार करते हुए करनाल पधारे। जनता की भक्तिपूर्ण

प्रार्थना को स्वीकार करके आपने अपना इस वर्ष का चातुर्मास यही व्यतीत किया ।

सेवा-धर्मः परमगहनः

वक्तृत्व-कला मे प्रवीण अमृत मुनि की व्याख्यान-माला चल रही थी । करनाल की जनता मे नवीन दृष्टिकोण उण्डेला जा रहा था । सत्य, अहिसा और शान्ति के पवित्र उसूलो पर मुनि जी नवीन शैली से विचार प्रकट कर रहे थे । चातुर्मास के दिन एक-एक करके कम होते जा रहे थे । उन्ही दिनो भारत खण्डित हुआ । भौगोलिक सीमाएँ विभाजन का शिकार हुई, और उसी के साथ-साथ हृदय भी खण्डित हुए । 'पाकिस्तान हमारे शव पर बनेगा ।' की घोषणा करने वाले अग्रेज साम्राज्य से समझौता कर बैठे । भारत की जनता की भावनाओ की चिन्ता किये बिना, अपनी इच्छा से नेताओ ने पाकिस्तान की माँग स्वीकार कर ली और अहिसा के पुजारियो के समझौते के रक्तिम परिणाम दानवीय कृत्यो के रूप मे प्रगट होने लगे । सतलुज का पानी लाल हो गया । पजाब की पच धाराएँ मानव रक्तवाहिनी बन गई ।

चीत्कार वायु-मण्डल मे मँडराने लगे, चीत्कार जो अनाथ शिशुओ के कण्ठ से निकल रहे थे, चीत्कार जो गगा की मौजो से भी अधिक पवित्र, पूनो की चाँदनी से भी अधिक पवित्र, ललनाओ के मुख से उबल रहे थे, क्योकि उनके सुहाग दिन-दहाडे लूट लिये गये थे, उनकी छातियाँ काट डाली गई थी, वे छातियाँ जिनसे भारत के भावी रत्नो को जीवन-दान, प्राण मिलना था । उनकी आवरू लूट ली गई थी, सरे वाजार उनका नग्न जलूस निकाला गया था, उनके गुप्त अगो मे कृपाण, छुरे, भाले और सगीने खोपी गई थी । वे चीत्कार जो कितने ही फरहाद और राँझाओ के हृदय से फूट पडे थे, उनकी शीरी और हीर छीन ली गई थी ।

वृद्धो को, नवजात शिशुओ को काट डाला गया था । और उस ओर घरो से लपटे उठ रही थी, चीत्कार लपटों से भी अधिक तपते हुए आकाश को स्पर्श कर रहे थे । मानवता का विध्वस हो रहा था । और इस ओर नेता, जो जनता के सेवक, पथप्रदर्शक और रक्षक वनते है, जिन्होने कहा था

श्मशान भले ही बन जाय
बन सकता पाकिस्तान नहीं

ताज पहन रहे थे, राजतिलक के उत्सव मे लीन थे। स्वतन्त्रता के राग अलापे जा रहे थे, दीवाली मनाई जा रही थी। मानवता के शव पर सत्ता हस्तान्तरण का समारोह मनाया जा रहा था।

इस ओर से उस ओर और उस ओर से इस ओर कितने ही परिवार भाग रहे थे। अपनी जन्म-भूमि, अपनी मातृ-भूमि को अन्तिम नमस्कार कह कर। अपनी मातृ-भूमि मे ही लाखो व्यक्ति विदेशी करार दे दिये गये थे।

पकिस्तान की ओर से लुटे-पिटे नर-नारियो से भरी गाडियाँ प्रतिदिन पहुँच रही थी। करनाल मे सरकार की ओर से कैनाल शरणार्थी कैम्प खोला गया था जिसमे देखते ही देखते ५० हजार शरणार्थी एकत्र हो गये थे। करनाल के नागरिक शरणार्थियो से भरी गाडियो पर खाद्य-सामग्रियाँ वितरित करते थे।

चीत्कारो ने अमृत मुनि जी के हृदय पर भी प्रभाव किया और वे दानवता के इस नग्न ताण्डव से विह्वल हो गये। चल पडे उपाश्रय छोड कर स्टेशन की ओर। यात्रियो से ठसाठस भरी, बल्कि लदी गाडियाँ और उसमे करुण क्रन्दन करते नर-नारी-अनाथ बालक देखे तो बरबस उनकी पलके भीग गई। प्रकृति-पुत्र ने शरणार्थी कैम्प की ओर पग उठाये। ५० हजार शरणार्थियो की इस बस्ती मे रुदन क्रन्दन और मृत्यु की काली छाया के अतिरिक्त और क्या था। हिलते-डुलते जीवित शव थे। वे वृद्ध जन थे जिनके नेत्रो की ज्योतियाँ काट डाली गई थी, वे युवक थे जिनकी प्रतिमाएँ पाकिस्तान की भूमि पर सतीत्व के लुटेरो के चगुल मे सिसक रही थी, वे शिशु थे जिनके मुँह के कौर पाकिस्तान मे रह गये थे, जिनके सरक्षक गुण्डो द्वारा मार डाले गये थे, वे भी थे जो रोटी के लिए चीख रहे थे। वे नारियाँ थी जिनमे से कितनियो के सिन्दूर पोछ डाले गए थे, कितनो के माता-पिता का पता नही था, कितनी गर्भवती थी और जिनकी कोख से रक्त-धाराएँ फूट निकली थी, कितनी ही ऐसी भी थी जो प्रसव-पीडा मे तडप रही थी पर जिनके लिए दाई या डाक्टरनी का प्रबन्ध नही था, कितनी ऐसी भी थी जिनके नवजात शिशु भूखे मर गये

थे और कैम्प के पास ही गढ़ो मे नवजात शिशुओ के शव बिल्कुल ऐसे पडे थे जैसे किसी ने सडे हुए खरबूजो का स्टाक फेक दिया हो। प्रकृति-पुत्र ने देखा तो उनका हृदय चीत्कार कर उठा, और उन्होने सकल्प किया कि वे निस्सहाय नर-नारियो और बालको की सेवा मे जुट जायेगे। जब तक कैम्प मे आकर निस्सहाय मनुष्यो की सेवा नही कर लिया करेगे तब तक वे भोजन नही किया करेगे। कोई वस्तु मुँह मे नही डालेगे।

और फिर उनके प्रवचनो का रग ही बदल गया। अब वे बोलते शरणार्थियो की सेवा-सहायता के लिए। उन्होने माताओ—बहनो से कहा, "तुम्हारे पास यदि १० साडियाँ है तो दो उन बहनो के लिए दो जो तुम्हारी तरह लाज ढाँपने का अधिकार रखती है, पर जिन्हे मनुष्य ने नगा घुमाने की परिस्थितियाँ उत्पन्न कर दी है।"

उन्होने जनता से कहा, "अपने मुह मे भोजन का ग्रास डालने से पूर्व यह भी सोचो कि तुम्हारे ही नगर मे कितने ही मनुष्य भूखे भी है।"

यह हलवा खीर को खाते हुए तुमने कभी सोचा
हजारो है कि जो नाने जवीं को भी तरसते है
करोड़ो है जिन्हें तन ढकने को कपड़ा नहीं मिलता
तुम्हारे वास्ते कमख्वाब और अतलस भी सस्ते है
लुटा दो जर गरीबो पर कि वे हकदार है इसके
उन्हीं के वास्ते तुम पर ये जर के मींह बरसते है

उन्होने द्वार-द्वार पर जाकर शरणार्थियो के लिए भिक्षा माँगी। आज तक जो हाथ अपनी क्षुधा-तृप्ति के लिए फैले थे अब सहस्रो के लिए फैलने लगे। सन्यासी अमृत मुनि अब भिक्षुक अमृत-चन्द्र के रूप मे दर-दर डोलने लगे। कितने ही स्वयसेवको को उन्होने साथ लिया और सारे नगर मे अलख जगाई। प्रतिदिन प्रात ही कैम्प मे जाकर कपडे, भोजन और अन्य आवश्यक वस्तुएँ वितरित करवानी आरम्भ कर दी। सामान कम था, शरणार्थियो की सख्या अधिक थी, इसलिए वे प्रतिदिन ऐसे नर, नारियो और बालको के नाम नोट कर लाते जो वास्तव मे निस्सहाय है, जिनकी किसी ने सुध ही न ली थी। कितनी ही जच्चाओ के लिए वे मोई भिजवाते। अमृत मुनि ने चुपचाप सहायता कार्य जारी रखा और बिना ढोल पीटे ही कितनो

की ही सहायता-सेवा की। उन्ही दिनो उन्होने अनुभव किया कि एक ऐसे स्वयसेवक-सगठन की आवश्यकता है जो किसी एक विचारधारा की नीति के पोपण के लिए न होकर केवल मानवता की सेवा के लिए कार्य करे। मुसगठित, व्यवस्थित और अनुशासित स्वयसेवक सेना की आवश्यकता है मानवता के लिए।

उन्ही दिनो की वात है।

उस दिन अमृत मुनि प्रात ही कैम्प की ओर चल पड़े। रास्ते मे पता चला, दो गाडियो की टक्कर होगई है। वे दौड पडे स्टेशन की ओर।

एक माल गाडी और पैसेजर ट्रेन मे टक्कर हो गई थी। माल गाडी मे माल ही नही लदा था वरन् उसके डिब्बो मे और उनके ऊपर सैकडो मानव भी लदे थे।

एक स्थान पर भीड लगी है। पाकिस्तान की ओर से आये व्यक्तियो और करनाल निवासियो की मिली-जुली भीड। और वीच मे सामान के ढेर की भाति पडी हुई लाशे और लाशो मे घायल भी—मृत्यु की बाट जोहते घायल और जीवन के लिए तडपते घायल, और धीरे-धीरे चीखते हुए वालक भी। मानव शरीरो के चारो ओर पडा है सेना तथा पुलिस का घेरा। तीन-चार सौ मानव शरीर जलाये जा रहे है। जलाने के लिए उन पर मिट्टी का तेल छिडका जा रहा है। अभी कुछ देर मे एक दियासलाई की सीक जलेगी और यह ऊँची सयुक्त चिता धू-धू करके धधक उठेगी। भीड मे कितने ही वालक अपने माता-पिता के लिए, नारियाँ अपने सुहाग के लिए और वृद्ध अपने हृदय-पाशो के लिए विलख रहे है। दूसरे लोग इस होली के विरुद्ध वडवडा रहे है पर सगीनो के भय से कोई वोलता नही।

अमृत मुनि पहुँचे। भीड को चीरते हुए आगे पहुँच गये और कनस्तर मे तेल छिडकने वाले को सम्वोधित करते हुए वोले, "यह तेल यदि तुम्हारे ही ऊपर उलट दिया जाय और जो इन कुलमुलाते शरीरो को जलाने के लिए दियासलाई की तीली जलाई जायेगी, वही तीली तुम्हारे शरीर मे लगा दी जाय तो तुम्हे कैसा लगे? क्या तुम्हारा हृदय पत्थर का हो गया है जो तुम इस ढेर में पडे जीवित व्यक्तियो को भी भस्म कर डालने पर उतारु हो।"

और आगे जाकर सगीनो के बीच ही उन्होने एक शव को खीच लिया। उसके नीचे था एक जीवित घायल, जो जीवन के लिए बिलबिला रहा था। फिर क्या था, सारी भीड के हाथ चल पडे। जैसे पहले बधे हों और एक झटके से ही वे बधनमुक्त हो गए हो।

उस ढेर मे से १३ जीवित वृद्ध, ११ जीवित स्त्रियाँ और २७ बालक निकले।

और फिर बालको के माता-पिता की खोज हुई। ७ के संरक्षको का पता न चला तो अमृत मुनि ने जनता मे प्रचार किया, "हे सन्तान के लिए पाषाणी मूर्तियो, साधु-सतो, पण्डो और भगतो आदि को पूजने वालो! सन्तान चाहिए तो इन बालको को सभाल लो। प्रकृति ने तुम्हारे लिए ही इन्हे जन्म दिया है।" उन अनाथ बालको को निस्सन्तान परिवारो ने सभाल लिया।

सेनानी के रूप में

मानवता-प्रचारक के इस सब कार्य से उस विचार की पुष्टि होती चली गई कि एक ऐसा सगठन खडा किया जाय जो केवल मानवता की सेवा के लिए ही हो, किसी दल विशेष अथवा राजनैतिक विचारधारा के प्रचार के लिए नही।

अमृत मुनि ने अपने सगठन का नाम 'सन्मति सघ' रखकर कार्य आरम्भ कर दिया। दो मास के प्रयत्न से १३ शाखाएँ स्थापित हो गई और ५०० स्वयसेवक सगठित हो गये। तेजी से बनते इस सगठन को देखकर पजाब जैन साधु-समाज ईर्ष्या से तपने लगा। 'क्या अमृत मुनि कोई दूसरा गोलवाल्कर बन जायेगा?' यह प्रश्न इस कान से उस कान तक पहुँचने लगा। मानव-धर्म-प्रचारक और प्रसिद्ध वक्ता अब एक सेनानी के रूप मे प्रगट हुए—एक ऐसे सेनानी के रूप मे जो सेवा और मानवता को ही मानव का महान धर्म मानता है, जो राजनीति की दलदल से दूर रहना चाहता है।

बारहवाँ अध्याय

शिमला की ओर

चातुर्मास समाप्त करके प्रकृति-पुत्र ने करनाल से विहार किया। कैथल, कुरुक्षेत्र, अम्बाला आदि क्षेत्रो मे भ्रमण करते हुए मुनिवर पचकुला पहुँच गए क्योकि जैनेन्द्र गुरुकुल का वार्षिक उत्सव होने वाला था और प्रवधको ने हमारे नायक से उक्त समारोह मे सम्मिलित होने की विनती की थी। यह नगर पचधाराओ के तट पर स्थित है और पजाव की नवनिर्मित राजधानी चण्डीगढ के निकट है। यहाँ के जैनेन्द्र गुरुकुल मे हमारे चरित्र-नायक ने गुरुदेव कस्तूरचन्द्र जी महाराज के साथ भाव-चारित्री के रूप मे भ्रमण करते दिनो मे ६ मास तक शिक्षा ग्रहण की थी। यह गुरुकुल जैन शिक्षा-सस्थाओ मे एक प्रशसनीय स्थान प्राप्त किये हुए है। इस गुरुकुल मे शिक्षा का उचित प्रवन्ध है और इसीलिए यह उत्तरोत्तर उन्नति की ओर वढ रहा है। वार्षिकोत्सव भव्य रूप मे मनाया गया और उत्सव मे एक ही आकर्षक व्यक्तित्व था, वह था अमृत मुनि का। उपस्थित जन-समुदाय ने इस अवसर पर अमृत मुनि का भाषण वडे चाव से सुना।

मुनि जी ने कुछ दिनो यहाँ विश्राम किया और वालको को ब्रह्मचर्य-जीवन और महावीर स्वामी के जीवन तथा उनकी शिक्षाओ पर कई उपदेश दिये।

जव उन्होने वहाँ से विहार किया तो वे कई क्षेत्रो का भ्रमण करते हुए कालका पहुँच गये और वहाँ से पहाडी रास्ते से एक ही दिन मे रूमोली जा पहुँचे। प्रसिद्ध वक्ता विमल मुनि जी भी उनके साथ थे।

पहाडी क्षेत्रो का भ्रमण करते, प्राकृतिक नयनाभिराम दृश्यो को देखते अमृत मुनि चल रहे थे शिमला की ओर। धर्मपुरा, कण्डाघाट होते हुए वे एक दिन शिमला पहुँच गए। यह वह स्थान है जिसे अग्रेजो ने एक सुरम्य स्थान वनाया था अपने आराम और विश्राम के लिए। इस नगर मे एक

बार स्वतन्त्रता-सग्राम के दिनों नेताओ ने और अग्रेज साम्राज्यवादियो ने ऐतिहासिक वार्ता की थी । इस नगर मे स्विटजरलैंड के सुरम्य स्थानो की नकल करने का प्रयत्न किया गया है ।

यह भी है एक पंथ

मुनि जी और उनके साथियो ने जैन धर्मशाला मे पडाव डाला। उसी मे तेरहपथी जैन साधु भी ठहरे थे । तेरहपथी साधु स्थानकवासी साधुओ से कितनी ही वातो मे मतभेद रखते है और एक प्रकार से अन्तर की एक चौडी खाई है इनके बीच। जो लोग जैन धर्म के आधीन विभाजित सम्प्रदायो और उनकी भिन्न-भिन्न मान्यताओ के सम्बन्ध मे अनभिज्ञ है यदि वे तेरहपथियो की मान्यताओ के सम्बन्ध मे विस्तार से सुने तो कितनी ही बातो पर उन्हे आश्चर्य होगा और कितनी ही बातो पर उन्हे हठात् खिल-खिलाकर हँसना पडेगा ।

वे मानते है कि प्यासे को पानी पिलाना, गाडी के नीचे दबते बालक को वचाना आदि पाप है । उनका ख्याल है कि बालक को यदि दबने से वचा लिया तो वह वडा होकर और भी पाप करेगा और चूँकि बचाने की जिम्मेदारी उन पर है इसलिए पापो मे भी उनकी ही जिम्मेदारी है। यदि उसे मर जाने दिया जाता तो वह पाप करने को ही न बचता। वे कहते है

जो बिल्ली से चूहा छुड़ावे ।
वह मर करके नरक में जावे ॥

इसके पीछे भी एक कारण है। चूहा विल्ली की खुराक है और यदि कोई उससे उसकी खुराक छुडाता है तो वह बिल्ली की आत्मा को दुखाने का कुकृत्य करता है, और यह तो सरासर हिसा ठहरी।

यह सुनकर तो आप रोमाञ्चित हो जायेगे कि पिछले दिनो तक, यदि ये लोग किसी व्यभिचारी को किसी स्त्री से वलात्कार करते देखते तो भी उसे वचाना पाप समझते रहे, इसका कारण भी वही विचार था कि इससे किसी एक का मन दुखेगा।

इस पथ के साधु अपने सूत्र-ग्रथ गृहस्थियो को नही पढने देते और इस सम्बन्ध मे एक कहावत है कि, 'पढे सुत्तर, तो मरे पुत्तर' । इतना अन्ध-

विश्वास है तेरहपथियों में। पर धीरे-धीरे अब जागृति की लहर इस सम्प्रदाय मे भी दौड रही है। और इस पथ के वर्तमान आचार्य ने अब स्थिति मे बहुत सुधार कर दिया है। धर्मशाला मे ठहरे तेरहपथी साधुओ को अमृत मुनि से छेडखानी करने की सूझी।

मुनि जी के दर्शनार्थ जब नर-नारी पहुँचते, तेरहपथी साधु अपनी ओर से किसी एक व्यक्ति को भेज देते और वह सभी के सामने प्रश्न करता, "महाराज! आप कितनी बार भोजन करते है?"

मुनिवर कहते, "दो बार।"

वह अपने निश्चित कार्यक्रमानुसार कहता, "हमारे महाराज तो दिन मे एक ही बार भोजन करते है।"

इस प्रकार वे साधु मुनिवर के श्रद्धालु भक्तो को निरुत्साहित करने का प्रयास करते।

एक दिन बीता, दो दिन बीते। इसी व्यवहार को होते चार दिन बीत गये। अमृत मुनि समझ गये कि तेरहपथी यो पीछा छोडने वाले नही है। वे अपने ही खुरो मे अपने ही घाव कुरेदना चाहते है। पाँचवे दिन, जब कितने ही दर्शनार्थी मुनि जी के पास बैठ थे, फिर उसी प्रकार एक व्यक्ति आया। उसने वही प्रश्न पूछा, "क्यो महाराज आप दिन मे कितनी बार भोजन करते है?"

"दो बार।"

"हमारे तेरहपथी साधु तो दिन मे एक ही बार आहार करते है।" वह व्यक्ति कहने लगा।

मुनि जी ने तुरन्त उत्तर दिया, "तुम्हारे साधुओ को या तो आहार नही मिलता या पाचन-शक्ति शिथिल है उनकी ब्रह्मचर्य की कमी के कारण।"

उसने यह उत्तर सुनकर अपने साधुओ को जा बताया। उन्होने शास्त्रो को अपनी ढाल बनाने की चेष्टा की और कहा कि शास्त्रो मे एक ही समय भोजन करने को कहा गया है।

और इसी बात को लेकर कि शास्त्र क्या कहते है, शास्त्रार्थ करने की ठन गई। जैन मन्दिर में शास्त्रार्थ होना तय हो गया। निश्चित समय पर प्रकृति-पुत्र अमृतचन्द्र जी महाराज जैन मन्दिर पहुँच गये। काफी

जनता उपस्थित थी। प्रतीक्षा करते घण्टो वीत गये परन्तु तेरहपथी साधु अमोलकचन्द्र जी महाराज, जो उनसे शास्त्रार्थ करने वाले थे, वहाँ न पहुँचे। अन्त मे जनता के आग्रह पर मुनि जी ने १।। घण्टे तक व्याख्यान दिया और यह कहकर चले आये कि जब भी अमोलकचन्द्र जी महाराज यहाँ शास्त्रार्थ के लिए पधारे, मै उसी समय आकर शास्त्रार्थ कर सकता हूँ। किन्तु तेरहपथी जैन साधुओ ने शास्त्रार्थ को टालने मे ही भलाई समझी।

एक दिन अमृत मनि अन्य स्थानकवासी जैन साधुओ के साथ जाखू रोड पर भ्रमणार्थ जा निकले। सडक सीधी १३ मील ऊँचे पर पहुँचती है और सीधी चढाई है। ऊपर हनूमान् जी का मन्दिर है। अमृत मुनि हनूमान् जी के मन्दिर की ओर चढाई पर जा रहे थे, बीच मे उन्होने देखा कि एक साधु पेड की जड से लकडी काट रहा है। उन्होने पूछा, "कहिए महाराज आप यह क्या कर रहे है ?"

साधु ने कुल्हाडा रोक कर कहा,

राम लखन दशरथ
डण्ड पेल कसरत

साधु के उत्तर को सुनकर अमृत मुनि के साथी जैन मुनि हँस पडे और वह साधु फिर फुर्ती से कुल्हाडा चलाने लगा।

अहंकार टूटा

हनूमान् मन्दिर के चबूतरे के साथ ही सडक है और सडक के उस ओर एक गहरा गड्ढा है, सैकडो फीट गहरा। कोई ऊपर से उसमे गिर पडे तो प्राण-पखेरू उडे विना न रहे। जब मुनि-गण वहाँ पहुँचे तो पास ही उन्हे एक सूट-बूट से सजे वावू साहव अपनी पत्नी, वालक और नौकर के साथ घूमते मिले। अनायास ही विमल मुनि ने उनसे पूछ लिया, "लालाजी आप कहाँ के रहने वाले है ?"

'लालाजी' का सम्वोधन उसे इतना बुरा लगा कि चलती मशीनगन की भाँति उसके मुख से धडाधड 'लालाजी' शब्द और उससे सम्वोधित किये जाने वाले लोगो और मुनि जी के लिये गालियाँ निकलने लगी। जितनी गालियाँ वह एक स्वाँस मे दे सकता था, दे डाली। विमल मुनि को वडा

आश्चर्य हुआ। वे बोले, "मैंने तो आपसे केवल यह पूछा था कि लालाजी आप कहाँ के रहने वाले है, इस पर आप इतने क्रुद्ध हो गये आपको "
उस व्यक्ति का सारा मुँह लाल हो गया, क्रोध मे आँखें जल उठी, बीच ही मे गालियो की बौछार करने लगा और उसने विमल मुनि का हाथ पकड लिया। हमारे चरित्र-नायक को आशका हो गई कि कही वह मुनि जी को गड्ढे की ओर धक्का न दे दे। इसलिये वे आगे बढकर बोले, "बाबू! आपको यदि इनके शब्दो से चोट लगी है तो ये अपने शब्द वापिस ले लेते है। हम सभी लज्जित है कि आपको एक साधु के बोल से दुःख पहुँचा।"

उस व्यक्ति ने विमल मुनि का हाथ छोड दिया और चुप हो गया।

नीचे की ओर उतरने की इच्छा हुई तो फिर यह आशका हो गई कि कही वह व्यक्ति पीछे से कोई पत्थर आदि न गिरा दे क्योकि ऐसा कर दे तो सिवाय गड्ढे मे जाकर दम तोड देने के और कुछ न बन सकेगा। ठीक यही आशका उस व्यक्ति को हो गई। इसलिये न तो मुनिगण पहले नीचे की ओर उतरने को तैयार होते थे और न वह ही व्यक्ति। दोनो पक्ष एक दूसरे की प्रतीक्षा में कि पहले वे चले तो पीछे हम चले, बैठ गये। और इस प्रकार बैठे-बैठे कितना ही समय बीत गया। दिन छिपने को आया, उस गृहस्थी को पहले न उतरते देख विवश होकर हमारे चरित्र-नायक ने अपने सगी साधुओ से उतर चलने को कहा और स्वय पीछे-पीछे चले। उन ही के पीछे वह व्यक्ति भी अपनी पत्नी और बालक आदि के साथ चला। उतरते-उतरते जब वे इस उतराई को समाप्त करने ही वाले थे, उस व्यक्ति का क्वार्टर आ गया। उसका नौकर तो उसकी पत्नी और बालक के साथ क्वार्टर में चला गया और स्वयं उसने दौडकर पुन विमल मुनि का हाथ पकड लिया और बोला, "मोढे! अब बताऊँ तुझे मैं लाला हूँ या कोई और?" मुनिगण भी आवेश मे आ गए और देखते-ही-देखते कितने ही लोग एकत्र हो गए। आखिर लोगो ने बीच-बिचाव कर दिया। बात समाप्त हो गई। परन्तु न जाने किसने रलाराम जी रिटायर्ड जज (लाहौर वाले) से कह दिया कि उनके मुनियो के साथ उक्त व्यक्ति का झगडा हो पडा था। जैनियो मे क्रोध की लहर दौड गई और वह व्यक्ति प्रतिहिंसा के भय से घबरा कर दो-तीन बार मुनि

जी के पास गया और अपनी उद्दण्डता के लिए क्षमा माँगी। अमृत मुनि जी ने उसे उपदेश दिया कि "क्रोध कितने ही अनर्थों की जड़ है। कभी कोई ऐसी बात दूसरे के लिए मत करो जो तुम अपने लिए अच्छी नही समझते हो। यह ध्यान मे रखो कि तुम श्रेष्ठ प्राणी हो और तुम्हारे साथ जिसका वास्ता पडा है वह भी तुम्हारी ही तरह मानव है।"

वह व्यक्ति मुनि जी का आशीर्वाद लेकर चला गया। वह था एक पुलिस इन्स्पैक्टर जो रोहतक की ओर किसी ग्राम के जाट परिवार में जन्मा था।

शिमला मे अमृत मुनि ने कई भाषण दिये जिनसे जनता बहुत प्रभावित हुई और किसी को भी यह समझते देर न लगी कि अमृत मुनि के पास ज्ञान का भण्डार है, उनकी वाणी मे ओज है और भाषण-शैली मे गजब का जादू भरा है।

रूढ़िवाद पर चोट

शिमला से कालका, अम्बाला, कुरुक्षेत्र आदि होते हुए अमृत मुनि अपने सहयोगी सर्वश्री गौतम मुनि और गुरुदेव कस्तूरचन्द्र जी महाराज के साथ कैथल पधारे। कैथल प्रवेश पर जनता की भारी भीड थी। अभूतपूर्व स्वागत-समारोह और उनके प्रति जनता की श्रद्धा इस बात का ज्वलन्त प्रमाण थी कि अमृत मुनि जैन साधुओ मे अपना एक प्रमुख स्थान रखते है।

अमृतचन्द्र जी ने जनता के आग्रह पर सम्वत् २००५ का चातुर्मास कैथल मे ही मनाना स्वीकार कर लिया। जनता का मानो सौभाग्य ही जाग उठा हो गद्गद हो उठी। धर्मोपदेशो की अमृत वर्षा आरम्भ हो गई और धर्मपरायण जनता वाह-वाह कर उठी। चारो ओर अमृत मुनि ही अमृत मुनि की चर्चा थी।

कैथल मे आज सम्वत्सरी पर्व है। सम्वत्सरी की छटा ही निराली है। प्रत्येक भक्तजन के हृदय मे उत्साह है और हर्ष है। सभी भागे फिरते है, शानदार प्रबन्ध जो करना है। पर्व के आठो दिन तो प्रभावना बाँटी गई थी और आज तो लोक-सिंधु उमड पडा था। धर्मोपदेश सुनने के लिये आई इतनी अपार भीड ! अन्य धर्मावलम्बी भी

आये। लोग दाँतो तले उँगली दबा गये। कितना यश है अमृत मुनि का, कितनी ज्योति है उनके उपदेशो की, कितना माधुर्य है उनकी वाणी मे, और कितना मोह लिया है जनता को उनके तपोबल ने। भीड मे थाली फेंक दो तो सिरो-ही-सिरो पर चली जाये, भूमि पर गिरने का नाम ही न ले।

प्रश्न था इतनी अपार भीड मुनिदेव की अमृतवाणी कैसे सुनेगी? सभा-आयोजको को चिन्ता ने आ घेरा। अब क्या होगा, जैन साधुओ के लिये ध्वनि-विस्तारक यन्त्र प्रयोग करना अनुचित जो है। भीड मे से प्रत्येक व्यक्ति ने महाराज का उपदेश सुन पाने के लिये आगे पहुँचने का प्रयत्न करना आरम्भ कर दिया। प्रत्येक सबसे आगे होना चाहता था ताकि वह महाराज-श्री के निकट रहे और साफ-साफ सुन सके।

प्रतीक्षा की घडियाँ धक्कम-धक्के मे समाप्त हो गई और वह अमृत मुनि जी अपने गुरुभाई गौतम मुनि के साथ सभास्थल पर पधार रहे है। लोगो ने जय-जयकार मनाई। नारो से आकाश गूँज उठा। सभास्थल पर आते ही धक्कम-धक्का और अपार भीड देख कर मुनिजी ने स्वय चिन्ता प्रकट की और अन्य कोई उपाय न देखकर उन्होने ध्वनि-विस्तारक यन्त्र के लगाने की अनुमति दे दी। अपने इस कदम के लिए स्पष्टीकरण देते हुए वे बोले कि ध्वनि-विस्तारक यन्त्र के प्रयोग करने मे कोई हिंसा नही होती है वरन् हिंसा तो इस समय लाउड-स्पीकर प्रयोग न करने से हो जायेगी। क्योकि आप लोगो मे से प्रत्येक मेरी आवाज़ सुनना चाहेगा, इसलिए आगे आने के लिए धक्कम-धक्का होगी। इसे बचाने के लिए ध्वनि-विस्तारक यन्त्र (लाउड स्पीकर) प्रयोग करना पड रहा है और वह उचित ही है।

मुनि जी की वाणी मे एक जादू है जो विपक्षियो से भी अपनी बात का समर्थन करा लेता है। चूँकि वे पोगापंथी साधु न होकर क्रान्तिकारी साधु है, जो सारे समाज मे परिवर्तन लाने के लिए तडपते रहते है, इसलिए वे किसी ऐसे बन्धन को नही मान सकते जो लोकहित मे न हो, जो भ्रान्तियो पर आधारित हो और जो प्रगति के इस युग में प्रतिक्रियावादी पथ पर ले जाने का द्योतक हो। मुनिजी का यह कदम एक रूढिवादी भ्रान्ति पर चोट थी।

चातुर्मास समाप्त हुआ और महाराज ने विहार किया। जनता सजल नेत्रो से उन्हे विदा देकर वापिस चली गई पर जैसे कैथल से ऋतुराज रूठ गए हो, पतझड आ गया हो, चारो ओर वीरानी सी छा गई। भक्त-जनो के वदन पर व्याकुलता के आसार उभर आये। उनके अधरो की मुस्कान तो नगर से बाहर चली गई थी, फिर वे मुस्कराये कैसे ?

मुनि चले : पीड़ित रो पड़े

आज सारा कैथल जब विछोह के आघात से पीडित है, एक निर्धन ब्राह्मण अपने घर मे मुह लपेटे रो रहा है। कौन जाने उसे क्या दु ख है, कौन जाने उसे क्या आघात पहुँचा है। कोई उसके मन मे झाँक कर देखे। उसका दु.ख समझे। उसे याद आ रहा है वह दिन, जब उसने अपनी दु ख-गाथा महाराज को सुनाई थी और महाराज ने उसकी पुत्री के विवाह के लिए किसी धनाढ्य व्यक्ति से एक धन-राशि दिला दी थी और उसे स्मरण है आज तक वे दिन जब उस पर कोई भी मुसीबत आई वह गुरुदेव के सामने गया और अपनी व्यथा सुना डाली। गुरुदेव (अमृतमुनि) ने उसकी प्रत्येक समस्या को हल करने के प्रयत्न किये। अमृतचन्द्र जी के रहते उसके भगवान् भूमि पर आ गये थे और आज उनके जाते वह फिर निस्सहाय हो गया था।

एक ओर एक बाप रो रहा है—कई बच्चो का बाप। जो आज तक अपने बालको की शिक्षा के लिए अमृतमुनि की कृपा से कितनी ही सहायता प्राप्त कर चुका था और आज वह भी निस्सहाय हो गया है।

ऐसे कितने ही रो रहे हैं। क्योकि अमृतमुनि दुखियो और निर्धनो के गुरु ही नही, मित्र और भाई भी है, भगवान् भी है और सहयोगी भी। वे जहाँ जाते है वहाँ के कितने ही निस्सहायो के भगवान् उनसे जा मिलते है और जहाँ से विहार कर जाते है कितने ही निस्सहाय पुन निस्सहाय हो जाते है।

कैथल से विहार करके वे सीवन समाना होते हुए पटियाला पधारे। पटियाला एक ऐतिहासिक नगर है, पेप्सू की राजधानी। जैन समुदाय ने महाराज का हार्दिक अभिनन्दन किया। दर्शन के लिए प्रतिदिन अपार भीड रहने लगी। इस भीड मे ऐसे लोग भी होते जो उन्हें जैन मुनि ही

का परदाफाश होने के भय से छोटे सन्तो को सता रहे है, ताकि जनता की दृष्टि उनकी ओर जा ही न सके।

अमृतमुनि ने खोज की तो उन्हे पता चला कि कुछ बडे सन्त साधु-समाज के सिर पर एक असह्य बोझ बने हुए है। उनमे साधारण साधु के गुणो तक का अभाव है, वे अहवृत्ति मे अपन को डुबो चुके है और वे पहले तो शिष्य-लोभ के वशीभूत होकर छोटे-छोटे बालको तथा युवको को मायाजाल मे फाँसकर साधु बना लेते है और जब कभी उन नये साधुओ से उन्हे अपने दोष के निरावरण होने का भय हो जाता है वे उन्हे ही समाज से बाहर निकाल फेकने के लिए षड्यन्त्र करने लगते है।

समस्त पजाब के जैन साधु-समाज मे इस परिस्थिति से एक भूकम्प सा आ गया था। छोटे सन्त त्राहि-त्राहि कर रहे थे। ऐसे समय पूज्य अमृत-चन्द्र जी ने अपने गुरुदेव के साथ छोटे सन्तो की पैरवी और बडे कहे जाने वाले सन्तो की अन्यायपूर्ण नीति की भर्त्सना करनी आरम्भ कर दी।

एक ऐसे ही छोटे सन्त को जैन साधु-समाज के आचार्य ने उनके सरक्षण के लिए भी भेजा जिसका बाना बडे सन्तो ने ही छिनवा दिया था पर जब उक्त सन्त ने कुछ बडे सन्तो के विरुद्ध लिखित बयान देने आरम्भ कर दिये तो बडे सन्तो का सिहासन डगमग-डगमग डोलने लगा और आचार्य ने हमारे चरित्र-नायक के गुरुदेव को उस सन्त के वहिष्कृत कर डालने का आदेश दे दिया।

इसी प्रकार की अन्य कितनी ही ऐसी घटनाएँ हुई जो जैन साधु-समाज के लिए कलक की वात थी। अव यह स्पष्ट हो गया कि कुछ वडे सन्त साधु-समाज का अभिशाप वने है वे अपने महत्त्वाकाक्षा के भार से मारे सन्त-समाज को ही दवा [illegible] हते है [illegible]
दोषो पर परदा डालने के लिए मदान्ध [illegible] सन्तो
शिकार वनाना चाहते है। अमृतचन्द्र जी [illegible] ति
उन्होने इन सारे कृत्यो का [illegible]
तथाकथित वडे सन्तो की [illegible]

अन्ततः जैन [illegible]

आमन्त्रित किया गया जिसमें इस विस्फोटक स्थिति को संभालने के उपायों पर विचार करना निश्चित हुआ था। हमारे चरित्र-नायक को भी उक्त सम्मेलन में विशेष निमन्त्रण पर बुलाया गया। सम्मेलन में हमारे चरित्र नायक की यह मन्त्रणा सभी को माननी पड़ी कि समाज का वातावरण कुछ सन्तों के कारण, विषाक्त होता जा रहा है और कुछ सन्त अपने गठजोड़ से इकट्ठा कर छोटे सन्तों पर अत्याचार कर रहे हैं। सम्मेलन ने निश्चय किया कि एक सन्तशुद्धि-मण्डल का निर्माण किया जाय जो समाज में गन्दगी उत्पन्न करने वाले सन्तों का पता लगाएँ और दोषी सन्तों को उचित दण्ड दिलाने की व्यवस्था करें। सन्तशुद्धि-मण्डल निर्वाचित हुआ और उसका अध्यक्ष पद श्री अमृतचन्द्र जी महाराज को ही सौंपा गया। वे इस पद को लेने के लिए कदापि तैयार नहीं थे परन्तु समाज के अन्य सदस्यों ने उन्हें विवश कर दिया कि वे इस पद का भार सम्भालें ही।

उन्होंने अपनी स्वीकृति देते हुए कहा कि सम्मेलन में उपस्थित सभी सज्जन कान खोल कर सुन लें, कि आप लोग हमें न्यायाधीश का कार्य सौंप रहे हैं और जो न्याय की कुर्सी पर बैठकर पक्षपात करता है वह अपने कर्तव्य से गिर जाता है, वह महान् पापी होता है, इसलिए मैं स्पष्टतया घोषणा करता हूँ कि सन्तशुद्धि-मण्डल समाज के सभी नागरिकों और दुराचारियों के कुकृत्यों की छानबीन करेगा, और यदि किसी के सम्बन्ध में भी कोई ऐसी शिकायत मिली जो साधुनीति के प्रतिकूल है, उसे दण्ड दिया जायेगा और दण्ड देते समय छोटे-बड़े सन्त में कोई भेद नहीं समझा जायगा। हमारे हाथ में न्याय की तराजू देते हुए खूब सोच लीजिए ताकि भविष्य में आप किसी प्रकार की शिकायत न कर सकें। क्योंकि मैं जानता हूँ कि आप में से कितने ही ऐसे सन्त हैं जो दानवीय कृत्य करते हैं जिन्हें कभी क्षमा नहीं किया जा सकता।

मुनि-श्री के शब्दों से कुछ सन्तों का दिल दहल गया। सत्य की चोट असत्य के लिए असह्य होती ही है। कानाफूसी चलती रही, चलती रही, पर किसी को यह साहस न हुआ कि अब अमृत मुनि का विरोध कर सकता। छोटे सन्तों में हर्ष की लहर दौड़ गई। मानो न्याय जागृत हो गया है। अन्याय अपनी जगह कम्पित हुआ।

अभी अमृत मुनि को सप्तऋषि-मण्डल का अध्यक्ष हुए दो ही दिन हुए थे कि बडे-बडे महत्त्वाकाक्षी सन्त घबडा उठे। क्योकि मण्डल का कार्य आरम्भ हो गया था और कुछ बडे सन्तो के दोष सामने आने लगे थे। अपने विषय मे अनावरण होते सत्य को सुनकर कुछ बडे सन्त तिल-मिला गये और वही अधिकार जो दो दिन पूर्व मण्डल और उसके अध्यक्ष को उन्होने दिया था, अब उनके लिए आपत्ति-जनक हो गया। अमृत मुनि समझ गये कि बडे सन्तो मे न्याय को सहन करने की प्रवृत्ति का अभाव है, वे अपनी अन्यायपूर्ण नीति का विरोध सहन नही कर सकते और न उनमे अपने चरित्र मे सशोधन करने की इच्छा ही है। वे तो अपनी उसी बेढगी चाल पर चलते रहने के इच्छुक है और सप्तऋषि-मण्डल एक बेकार की कमेटी बन कर रह जायेगा। इसलिए क्षुब्ध होकर उन्होने वही अपने पद से त्यागपत्र दे दिया और लुधियाना से विहार कर दिया।

गुरुदेव कस्तूरचद्र जी चातुर्मास मनाने के लिए धुरी चले गये और हमारे चरित्रनायक जी सुनाम पहुँचे, जहाँ उन्हे चातुर्मास मनाना था और जहाँ की जनता उनके दर्शन के लिए पहले ही से लालायित थी।

तेरहवाँ अध्याय

पांचजन्य बज उठा

बड़े सन्तो की छोटे सन्तो के प्रति दमन-नीति उसी प्रकार चल रही थी। हमारे चरित्र-नायक ने अनुभव किया कि ऐसे विषाक्त वातावरण में रहने से उनकी तपस्या में ही झंझटें उत्पन्न होती हैं और दूषित वातावरण उन्हें न अपने चिन्तन में ही लगने देता है और न स्थिति सुधारने के प्रयत्न ही सफल होने हैं इसलिए विवश होकर उन्होंने गुरुदेव को एक पत्र द्वारा समाज छोड़ने का सुझाव दिया। बुरी में गुरुदेव ने जैन साधु-समाज के पास अपना लिखित त्यागपत्र भेज दिया, जिसके उत्तर में समाज की ओर से अधिकारी वर्ग ने उनसे त्यागपत्र वापिस लेने की प्रार्थना की। पर गुरुदेव ने कहा कि "यह वातावरण किसी सन्यासी के लिए उपयुक्त नहीं है। इसमें पाप पनप सकता है, धर्म नहीं। जहाँ दोषियो को शरण दी जाती हो और छोटे सन्तो का उद्धार करने की अपेक्षा उनका तिरस्कार किया जाता हो, वहाँ मुझ जैसे शान्तिप्रिय सत्य, अहिंसा और मानवता के उपासक का रहना असम्भव है। मैंने जो निर्णय किया है वह एक सत्याग्रह का रूप है। मैं अपने निर्णय से डिगूँगा नहीं। उस समय तक नहीं डिगूँगा, जब तक बड़े सन्त अपनी नीति में परिवर्तन न करें और पापियों को दण्ड देने की आवश्यकता अनुभव न की जाय।"

मुनि अमृतचन्द्र जी द्वारा असत्य के विरुद्ध जलाई गई विद्रोहाग्नि धू-धू करके धधक उठी और धधकती रही। छोटे सन्त हमारे चरित्र-नायक की ओर नेतृत्व के लिए देखने लगे और उन्होंने एकता तथा मानवता का शंख बजाया।

"साम्प्रदायिकता के बन्धन से मुक्त होकर मानवता की सेवा में लग जाओ। प्रत्येक जीव के साथ प्रेम करो और मानव को सच्चा मानव बनाने के लिए प्रयत्नशील हो।"

पाञ्चजन्य बज चुका था। अमृतमुनि मानवता के लिए चातुर्मास

मे भाषण पर भाषण कर रहे थे। जनता और जैन साधु-समाज के कितने ही सन्त उनकी ओर आकर्षित होते जा रहे थे। परन्तु दूसरी ओर धर्म के ठेकेदारो के हृदय मे द्वेष का दावानल भडक रहा था। मुनिजी के विरुद्ध षड्यन्त्र रचे जा रहे थे।

प्रकृति-पुत्र पर आक्रमण

प्रकृति-पुत्र को क्या पता कि विरोधी उन्हे अपने पथ की चट्टान समझ रहे है और इस चट्टान को गिराने की युक्तियाँ हो रही है। वे तो सत्य भगवान् की उपासना मे रत थे, वे तो दानवता के विरुद्ध मानवता के प्रचार मे लगे थे।

एक दिन वे अपने भक्तो के बीच धर्मोपदेश मे लगे थे कि उन्हे वाहर से आये एक व्यक्ति ने सूचना दी कि कुछ लोग लुधियाना से उन पर आक्रमण करने के लिए भेजे गये है जो उसी गाडी से यहाँ आये है जिससे वह पहुँचा है। भक्तो मे क्रोध दौड़ गया। उन्होने प्रहारियो का डटकर मुकाबला करने की सोच ली।

प्रहार करने वाले पाँच-छ. आदमी ज्योही मुनिजी के पास पहुँचे, उन्होने उनके चेहरे पर आते-जाते मनोभावो से समाचार की सत्यता का पता लगा लिया। ज्योही उन्होने अनाप-सनाप वकना आरम्भ किया तथा प्रहार करने का असफल प्रयत्न किया, भक्त-मण्डली बिगड पडी। देखते-ही-देखते सैकडो व्यक्ति एकत्रित हो गए। सभी ने एक स्वर से आक्रमणकारियो की भर्त्सना की।

चोट खाये हुए नागो की भाति वे लोग भी प्रतिशोध की अग्नि मे झुलसते हुए स्थानक से वाहर निकले।

पर जैसे खिस्याई बिल्ली खम्भा नोचने लगती है, आक्रमणकारियो ने नगर मे गन्दा प्रचार आरम्भ कर दिया। सत्य के सम्मुख असत्य का प्रलाप, प्रकाश को धूमिल करने के लिये अहकार का त्राहिमाम्। चीखने-चिल्लाने की सारी योजनाये परिणामहीन हो कर रह गईं। कुत्ते भौंकते रहे और कारवाँ निकल गया।

ज्योही चातुर्मास समाप्त हुआ प्रकृति-पुत्र ने सुनाम से विहार किया। कैथल पधारे, तो यहाँ उन्होने विरोधियो के प्रचार को वडी तीव्र

गति से बढते हुए पाया। पर उनके जो बुद्धिमान् श्रद्धालु भक्त थे उन पर इस दूषित प्रचार का कोई प्रभाव नही होने वाला था। चन्द्रमा पर धूल फेकने से वह धूमिल नही हुआ करता। मुनि जी का उपासना और उपदेशामृत वर्षा करने का कार्यक्रम चलता ही रहा। कितने भी विरोधी तूफान आये योद्धा अपनी डगर से हिला नही करते। अमृत मुनि जैन साधु-समाज मे अलग थे इसलिये धर्म के अन्धे ठेकेदारो का प्रचार था कि जैन जनता उनके दर्शनार्थ न जाय, उनके भाषण न सुने। पर अमृतवाणी का आकर्षण तो कोई छीन नही सकता। उन बेचारो को यह ज्ञात नही कि अमृत मुनि जनता मे इसलिये नही पूजे जाते कि वे जैन मुनि है, बल्कि इसलिये पुजते है कि उनके पास विद्वत्ता है, आत्मबल है, ब्रह्मचर्य का तेज है, ज्ञान है और भगवान् महावीर का सच्चा उपदेश है, जो किसी सम्प्रदाय विशेष के लिए ही नही, अपितु सारे मानव-जगत् के लिए है।

अब हमारे चरित्र-नायक को अपने उस स्वप्न की बात याद आई जो उन्होने बौहर मे देखा था। स्वप्न की स्मृतियाँ उनके मस्तिष्क मे जाग उठी और वे अपनी वर्तमान परिस्थिति मे गद्‌गद हो उठे। न जाने यह मातेश्वरी के आशीर्वाद और उसकी इच्छा का ही फल है क्या? जो उसके चारो ओर सम्प्रदाय की खडी दीवार गिर गई। अब तो वे एक सम्प्रदाय के न होकर पूरे मानव-जगत् के इष्टदेव थे। वे सारी मानवता को ही उपदेश दे सकते थे और उनके चरणो मे प्रत्येक धर्म के अनुयायी पहुँच सकते थे।

कैथल से महामुनि अमृतचन्द्र जी विहार करके करनाल पहुँचे और फिर कुछ दिनो पश्चात् गुरुदेव की आज्ञा से उनके दर्शनार्थ वे पुन कैथल पधारे। आजकल अमृतमुनि साम्प्रदायिकता के विरुद्ध मानव-जाति मे एकता और प्रेम उत्पन्न करने के लिए व्याख्यान कर रहे थे। उनकी वाणी का ओज वृद्धि की ओर जा रहा था। समूचा जैन साधु-समाज उनके विरुद्ध प्रचार मे जुटा था पर अमृतमुनि न जैन साधु-समाज के विरुद्ध ही बोलते थे और न जैन सम्प्रदाय के ही। वे तो भगवान् महावीर के उपदेशो का प्रचार करने और सत्य, अहिंसा और शान्ति के लिए मानव-हृदय में प्रेम जागृत करने के लिए ही बोलते थे। इसीलिए उनके

बिगुल बजायेगा, एक ऐसा पर्व जो पथ-भ्रष्ट सन्यासियो के अन्यायो मे सन्यासियो का पिड छुडायेगा। एक नया आयोजन हो रहा था। कैथल के इतिहास मे एक अनोखी घटना घटने जा रही थी। भक्त-मण्डली ने सारे साधन जुटाये। तैयारियाँ पूर्ण होते-होते वह दिन भी आ पहुँचा, जब कि विद्रोही समाज को सगठन की डोर मे बाँधना था।

उस दिन सहस्रो लोग महामुनियो के दर्शनार्थ एकत्र हो गये। पजाब की प्रसिद्ध भजन-मण्डलियो ने अपनी सगीतकला का प्रदर्शन आरम्भ कर दिया। जय-जयकारो से सारा नगर गूँज उठा।

इस अवसर पर उन दिनो के पजाब के मुख्य मन्त्री श्री गोपीचन्द्र भार्गव तथा अन्य प्रतिष्ठित लोग पधारे थे। मुनियो का जलूस निकला तो सारा वातावरण नारो मे डूब गया। सगीत के स्वर शीतल समीर मे घुल गये और मस्त बनाने वाले वाद्य यन्त्रो की ध्वनि ने चारो ओर मस्ती बखेर दी। लोग झूम उठे। गद्गद हुए भक्तजन मुनियो की कीर्ति का गुणगान करने लगे।

सभास्थल पर नर-नारियो की भीड है। चारो ओर उत्साह है। सब आत्म-विभोर है। सभामण्डप मे तिल धरने को स्थान नही। इस पर्व के चित्र लिये जा रहे है। नेता और मुनिगण आचार्य और उपाध्याय पदो की आवश्यकता, साधुसमाज की महत्ता और सुधार की आवश्यकता पर अपने विचार प्रकट कर रहे है।

दूसरी ओर धर्म के ठेकेदार अपनी ढपली अलग ही बजा रहे है। अनाप-शनाप प्रचार कर रहे है। पर बढती हुई बाढ को बाढ के अवगुणो का बखान करने से नही रोका जा सकता। यह बाढ तो सत्य-सिन्धु की बाढ है, जलसागर मे आया तूफान, विरोधो के तिनको से कैसे रुके। आज प्रकृति विहँस रही है। आज असत्य, पाप और छल के मुकाबले मे सत्य, अहिंसा और पुण्य की सेनाएँ सज रही है।

इस समारोह मे हमारे चरित्र-नायक का एक विशेष स्थान है, ऐसा स्थान जो भुलाया नही जा सकता, ऐसा स्थान जो केवल पुण्य आत्माओ को ही प्राप्त होता है। जनता के नेत्र अमृत मुनि द्वारा जैन साधु-समाज मे चल रहे पक्षपात को तोडने के लिए एक नयी राह दिखाई गई है और उस नयी राह का आज उद्घाटन हो रहा है।

इस अवसर पर जैन मुनि हमारे चरित्र-नायक को उचित सम्मानित स्थान देने के लिए आतुर है। जनता उन्हे प्रतिष्ठित करने को लालायित है। पर अमृत मुनि ने विद्रोह-पथ अपने सम्मान के लिये तो नही अपनाया। वे पदो का मोह तो नही करते। वे तो एक धारा का श्रीगणेश करना चाहते है। भगीरथ ने गगा बहाई जो भारत के शरीर की उष्णता को समाप्त करे, जो सूखे हुए स्थानो को हरे-भरे उपवनो मे परिवर्तित कर दे, जो प्यासी धरती को अमृत दान करे। हमारे चरित्र-नायक ने भी यह नयी भागीरथी उतारी, ताकि पवित्र सन्देशो की प्यासी जनता को अमृतपान कराया जा सके और इस नई भागीरथी मे डुबकी लगाकर साधुजन अपने को पवित्र कर सके।

श्री कपूरचन्द्र जी महाराज आचार्य पद के लिये निर्वाचित हुए और श्री अमृत मुनि जी को 'उपाध्याय पद' दिया गया। उन्हे सरस्वती का सरक्षक बनाया गया। अमृत मुनि की जय के गगन-भेदी नारो से सारा वातावरण गूंज उठा। विरोधियो की सारी योजनाये असफल हुई, उनकी योजना थी इस उत्सव के रग मे भग घोलने की। वे इस आयोजना को असफल करने के लिये प्रयत्नशील थे। लाउड-स्पीकरो से शोर मचाया। जनता को समारोह का बहिष्कार करने को उकसाया, पर वे हाथ मलते ही रह गये।

महान सेवाव्रती

'सेवा' हमारे चरित्र-नायक के अन्य महान् गुणो मे से एक है। उन्हे सेवा-कार्यो मे जितना आनन्द मिलता है, उतना अन्य कार्यो मे नही। इसलिये कितने ही ऐसे कार्य वे सदा अपने हाथो मे लिये रहते है जिनका स्वय उनके जीवन से कोई सम्बन्ध नही होता, पर दूसरे मनुष्यो के जीवन के लिये ही वे सुखप्रद एव आनन्दमय होते है। दूसरो की सेवा मे वे अपने को झोक देते है और बदले मे वे कुछ भी नही चाहते, धन्यवाद के दो बोल भी नही। इसीलिए कभी-कभी तो ऐसा लगता है कि अमृतमुनि का परिवार बहुत बड़ा है, जिसके प्रति उनके कर्तव्यो की सूची बहुत लम्बी है, पर अधिकारो का जैसे प्रश्न ही नही उठता। इसी सेवाभाव के कारण कितने ही लोग उनसे अपनी दुःख-गाथाएँ निस्सकोच सुना डालते है और

सहायता के नाम पर वे उनकी महान् सेवाये कर डालते है, पर दूसरे लोगो को इस बारे मे कुछ भी ज्ञान नही हो पाता।

महान् आत्माओ के जीवन मे इस गुण का बहुत महत्त्व होता है।

"सेवाधर्म परमगहनो योगिनामप्यगम्य. ।"

अर्थात् सेवा-धर्म की महिमा का पार बडे-बडे योगीजन भी नही पा सकते।

इस ज्ञान को दृष्टिगोचर रखते हुए हमारे चरित्र-नायक ने तुच्छ-से-तुच्छ व्यक्ति से लेकर महान् व्यक्तियो की सेवाये की है और इसी कारण उनकी लोकप्रियता को कभी किसी विरोधी प्रचार के कारण भी कोई आँच नही आती। अवतारो के नाम और धर्म की आड मे, साधु बाने के बोर्ड से जीवन व्यतीत करने वाले और धर्मपरायण जनता से पैर पुजवाने वाले सन्त नामधारियो की भारत मे कमी नही है पर हमारे चरित्र-नायक जैसे सन्त की भाँति जीवन-पथ पर बढने वाले सन्त ढूंढे भी नही मिलेगे, क्योकि जैन-धर्म की आड लिये बिना, जैन साधु-समाज के निरन्तर विरोधी एव दूषित प्रचार के बावजूद जनता को उनसे विमुख नही किया जा सका और ऐसी जनता जो जैन-धर्म मे अन्धविश्वास रखती है। इस आकर्षण मे ज्ञान, आत्मबल और सेवा-धर्म की जगमग ज्योति का बडा स्थान है।

एक बार मुनि जी को लोगो ने बताया कि उक्त व्यक्ति उनके विरुद्ध विषैला प्रचार कर रहा है। मुनि जी बोले, "यह तो उसकी जैन साधु-समाज के प्रति अगाध आस्था एव श्रद्धा का प्रमाण है। उसे मुझसे कोई शत्रुता तो नही है, जिस दिन सत्य का उसे पता चलेगा, वह आप सब लोगो से अधिक मेरे विचारो का प्रशसक होगा। क्योकि वह पगु नही क्रियाशील व्यक्ति है।"

कुछ दिनो के उपरान्त सभी को यह देखकर आश्चर्य हुआ कि वास्तव मे वही व्यक्ति उनका प्रबल समर्थक था। पर किसी को इसका कारण ज्ञान नही हुआ।

बात यह थी कि उक्त व्यक्ति एक प्रतिष्ठित व्यापारी था। अनायास ही व्यापारी को आर्थिक हानियो-पर-हानियाँ होने लगी। व्यापारी को बडी चिन्ता हुई। चिन्ताओ मे घुलता-घुलता ही वह अपना स्वास्थ्य

खो बैठा। उक्त व्यक्ति के सगे-सम्बन्धी मुनिजी की सेवा मे पहुँचा करते थे। वे सदा ही उनसे उस व्यक्ति के प्रति घृणा व्यक्त किया करते, कारण वही कि वह उनके विचारो का कट्टर विरोधी है।

मुनि जी प्रतिदिन उस व्यक्ति की दशा के बारे मे पूछताछ किया करते थे। जब दशा चिन्ताजनक दीख पडी, मुनि जी ने उसके सम्बन्धियो को बुलाकर समझाया कि वे उसके प्रति उदासीनता न दर्शाएँ और शक्ति-भर सेवा करके उसे काल का ग्रास होने से बचाएँ।

दूसरी ओर अपनी भक्त-मण्डली के व्यापारियो से उसकी सहायता कर उसके नष्ट होते व्यापार को बचाने तथा उसे इस स्थिति से उबारने का उपदेश दिया। अपने साथी सन्त को प्रतिदिन उसके पास भेजकर उसे उचित परामर्श दिये तथा धैर्य व सान्त्वना दिलाई। देखते-ही-देखते वह पूर्ण स्वस्थ भी हो गया क्योकि उसका डूबता व्यापार सँभलने लगा था और आर्थिक हानियो से निकलने के साधन उसे मुनि जी की भक्त-मण्डली के व्यापारियो से मिल चुके थे। स्वस्थ होने पर उसे इस परिवर्तन का रहस्य ज्ञात हुआ और वह कृतज्ञता प्रगट करने जब मुनि जी के पास पहुँचा तो वे बोले, "लक्ष्मी के प्रति इतना मोह कि प्राणान्त कर डालने की दशा उत्पन्न हो गई, यह अच्छा नही है। आप जैसे धर्मपरायण व्यक्ति को इतना मोह नही चाहिए। महावीर स्वामी की शिक्षाओ पर ठण्डे दिल से विचार करो। मेरा तुम्हारे प्रति कोई एहसान नही है। मै चाहता हूँ तुम जीवित रहो और सुखी रहो ताकि मेरी स्वस्थ आलोचनाएँ होती रहे और मै आलोचनाओ के अकुश मे ही अपने पथ से न डिगूँ।"

उक्त व्यक्ति समझदार एव बुद्धिमान् था। वह मुनि जी की महानता का प्रशसक हो गया और उसने पूछा, "क्या अब मुझे अन्य जैन-मुनियो के दर्शन करने नही जाना चाहिये?"

अमृत मुनि बोले, "ज्ञानियो के पास जाने मे कभी हानि नही होती। कुछ-न-कुछ ग्रहण ही होता है।"

पास रहने वाले, प्रतिदिन दर्शनार्थ आने वाले और किसी भी सम्प्रदाय से सम्बन्ध रखने वाले परिचित व्यक्तियो से वे अपना घनिष्ठ सम्बन्ध बना लेते है, उनकी दशाओ के प्रति अपने को जागरूक रखते है

और जव कभी अवसर आता है, अपने उचित परामर्श देकर उन्हे सकटो से उवारने से नही चूकते। कोई वीमार हो, कोई चिन्तित एव व्यथित हो, उनकी सेवाएँ उसके लिये प्राप्त हो जाती है। जिसका कोई नही, उसके अमृत मुनि है।

'वरनाला' से वयोवृद्ध सन्त श्री ताराचन्द जी महाराज का पत्र मिला कि–"भटिण्डा मे मेरी आँखो का आपरेशन होना है, अत मेरी सेवा के लिए दो मुनियो की अत्यन्त आवश्यकता है। इसके लिए मै पजाव सम्प्रदाय (जैन साधु-समाज) के आचार्य, उपाध्याय, युवाचार्य आदि प्रमुख मुनिराजो के पास अनेको सूचनाये भेज चुका हूँ, पर इधर से कोई भी आश्वासन नही मिला। अन्त मे मै सव ओर से निराश होकर आपको सूचना दे रहा हूँ। आशा है, इस परिस्थिति मे आप अपने सन्त सेवा मे भेजकर मुझे अवश्य ही सहयोग देगे।"

पत्र अमृत मुनि के प्रयत्नो से सगठित नव साधु-समाज के आचार्य के नाम था और आचार्य तथा अन्य साधुगण उपस्थित थ। पत्र सुनकर सवने जैन साधु-समाज पजाव की आलोचनाये आरम्भ कर दी और कुछ सोचने लगे कौन जाय सेवा के लिये। पर सेवाव्रती उपाध्याय जी की ओर दृष्टि जो गई, तो सवने देखा वे इसके लिये तैयार ही वैठे है। वे वोले, "यह तो ऐसी वात नही कि खोजना ही पडे। मेरे रहते आपको सेवाकार्य के लिए अन्य किसकी आवश्यकता है।" मै ताराचन्द्र जी महाराज की सेवा के लिए जाऊँगा।

उन्होने जाने का प्रवन्ध करना शुरू कर दिया, पर कैथल की जनता ने 'गुरु-भवन' निर्माण के लिए किये गये अपने निर्णय को अन्तिम रूप देने और कुछ आवश्यक परामर्श के लिए उनसे विहार न करने का आग्रह किया। भक्तो के आग्रह को वे न टाल सके और कुछ दिन के लिए उन्होने विहार का कार्यक्रम स्थगित कर दिया।

अमृतचन्द्र जी महाराज का अध्ययन चलता ही रहा, साथ-साथ भक्त-मण्डली को उपदेश वे प्रतिदिन करते। पर धीरे-धीरे वह दिन आ पहुँचा जव वे भक्त-जनो का आग्रह टाल कर भी विहार करने ही लगे।

सैकडो व्यक्ति जलूस वनाकर उनके साथ-साथ चले। जय-जयकारो

से बाजार गूँज उठे। अनेको व्यक्ति उन्हे सात-आठ मील दूर तक विदा करने के लिए आये। लोगो के नेत्र डबडबा रहे थे। पर अमृतमुनि के मुख पर स्वाभाविक मुस्कान थी।

मूँदडी, चन्दाना, सजूमा, क्लेथ, नरवाना, बरेटा मण्डी और बुढलाडा मण्डी होते हुए अमृतमुनि भटिण्डा पहुँचे। भटिण्डा पहुँचने का समाचार मिलते ही नगर की जनता मे उत्साह ठाठे मारने लगा। सैकडो भक्त उनके दर्शनो के लिए नगर से बाहर पहुँचे और उत्साहजनक स्वागत के साथ उनका नगर मे प्रवेश हुआ। जैन सभा के प्रान्तीय पदाधिकारी नगर मे जनता को मुनि जी के दर्शन न करने का प्रचार कराते रहे, पर उनका दूषित प्रचार भी धर्मपरायण जनता को उनके चरणो मे जाने से न रोक पाया।

वयोवृद्ध सन्यासी ताराचन्द्र जी ने जैन साधु-समाज के घृणित प्रचार और असभ्य व्यवहार को देखकर समाज से त्याग-पत्र दे दिया, पर अमृतमुनि ने कहा कि हमारे आपकी सेवा मे आने का अर्थ यह नही है कि हम आपको समाज को त्यागकर अपने साथ लेने के इच्छुक है। आप चाहे हमारे विरोधी क्यो न हो, हमारा कर्तव्य है मुनिजनो की सेवा करना। अपना कर्तव्य हम फिर भी निभायेगे। ऐसे समय मे जब कि हम आपकी सेवा के लिए पहुँचे है, आपके त्याग-पत्र का अर्थ यह निकाला जायगा कि हमारे प्रभाव के कारण आप त्याग-पत्र दे रहे है। इसलिए आप ऐसा न करे। पर ताराचन्द्र जी महाराज ने अपना निर्णय न बदला।

उनकी चिकित्सा आरम्भ हुई और जब तक चिकित्सा चलती रही हमारे चरित्र-नायक उनकी सेवा मे कुशल सेवक की नाई लगे रहे। और अन्त मे मुनि ताराचन्द्र जी कह ही उठे, "अमृतमुनि! तुम धन्य हो। तुम्हारा सेवाभाव बडे-से-बडे विरोधी का मन भी जीत सकता है।'

पर अमृत मुनि का उत्तर उनके उच्च विचारो का प्रतीक था, "मुनिवर! मै किसी की सेवा उसे जीत लेने के लिए तो नही करता। सेवा तो अपना कर्तव्य जानकर करता हूँ।"

इधर सेवा-धर्म निभाया जा रहा था उधर अमृत मुनि के विरुद्ध प्रचार किया जा रहा था। विरोधियो का सबसे बडा आरोप यह था

कि वे जैन साधु-समाज का परित्याग कर चुके है। उनका उद्देश्य था कि जनता मुनि जी के पास न जाय। उनकी कथा न सुने। उनका उपदेश सुनने न जाय। पर इस विरोध का प्रभाव कुछ उलटा हो रहा था, भक्तजनो की सख्या मे निरन्तर वृद्धि होती रही। क्योकि अमृत मुनि न किसी को धर्मविमुख ही करने के लिए प्रयत्न-शील थे और न जैन धर्म व जैन साधु-समाज के विरोध मे ही एक शब्द बोलते थे। वे तो उसी प्रकार महावीर भगवान् के उपदेशो का प्रचार अबाध गति से कर रहे थे। साधारण व्यक्ति यह समझने मे असमर्थ था कि जब अमृत मुनि बात वही कहते है जो महावीर स्वामी कहते थे तो फिर जैन साधु-समाज अथवा जैन-सभा उनका विरोध क्यो करती है। यह झझट जनता की समझ मे नही आया और उन्हे लगा कि अमृत मुनि का पलडा भारी है।

अमृत मुनि ने कई बार भटिण्डा से विहार करने का इरादा किया पर भक्तजन उन्हें विहार ही न करने देते थे। मुनि जी के प्रति जनता की इतनी श्रद्धा विरोधियो के हृदय पर सॉप बनकर लोटने लगी।

पर मुनि जी अधिक दिन किसी नगर मे डेरा डालने के विरोधी है, अन्तत सवा दो मास उपरान्त उन्होने विहार कर ही दिया। सारा नगर मुनिजी को विदाई देने के लिए उमड पडा। विराट् जलूस उनकी जय-जयकार करते हुए बाजारो की सडको पर निकल पडा और सैकडो व्यक्ति उन्हे सजल नेत्रो से बिदा करने नगर से बाहर आये।

पुनः यात्रा पर

मुनि जी कैथल निवासियो के आग्रह पर चातुर्मास कैथल मे ही मनाने का निश्चय कर चुके थे इसलिए उन्होने भटिण्डा से कैथल की ओर ही पग बढाये। सारे दिन पग उठते रहे। सूर्य आग्नेय नेत्रो से पृथ्वी को जलाये डाल रहा था। पापो के बोझ से दबी भूमि जलते तवे की भॉति जल रही थी। प्यासे पशु-पक्षी जलाशयो की ओर दौड रहे थे। वृक्षो की छॉव भी मूल्यवान् हो गई थी। कुत्ते जीभ निकाले तर की खोज मे घूम रहे थे। सूर्य के क्रुद्ध व्यवहार से तग आ क नहाये मजदूर वृक्षो की छॉव मे चले आ रहे थे और उन के लिए बडे सरदार [illegible] और नमकहरा

धित कर रहे थे। चारो ओर गर्मी की दिल दहला देने वाली लपटे उठ रही थी पर हमारे चरित्र-नायक जलती भूमि पर पग रखते हुए अपने पथ पर जा रहे थे। न सूर्य के आग्नेय किरण-वाण उन्हे परेशान कर रहे थे और न पसीने से तर शरीर ही उनके साहस पर कोई चोट कर पा रहा था। क्योकि वे तो अपनी स्वाभाविक दार्शनिको की-सी मुद्रा मे विचारो मे उलझे हुए चले जा रहे थे।

चलते-चलते दिन की घडियाँ एक-एक करके कम होती गई। सूर्य की किरणो की अग्नि-शक्ति का ह्रास होने लगा और धीरे-धीरे पश्चिम की ओर क्षितिज पर आकाश की थाली रक्त से लबालब हो गई। साय ने अपने डेरे डाल दिये थे।

पक्षी अपने घोसलो की ओर चल पडे। चरवाहे पशुओ को हाँकते हुए घरो की ओर चल दिये। और तभी हमारे चरित्र-नायक ने फूस मण्डी मे प्रवेश किया।

रात्रि की स्याही उभर आई और उन्होने स्टेशन पर आज की मजिल की इतिश्री की। अन्धकार ने पृथ्वी को अपने आँचल मे समेटना आरम्भ कर दिया और हमारे चरित्र-नायक सोचते रहे, अन्धकार कब तक मानव-जगत् पर छाया रहेगा? अन्धकार कब तक मनुष्य को पथ-भ्रष्ट करता रहेगा? मनुष्य के ज्ञान-नेत्र कब खुलेगे?

और फिर यह निराले सन्त गा उठे

उस घर जा ओरी निन्दरिया, जा घर राम नाम नहिं भावे।
उठे अवेरे, सोए सवेरे, निन्दा करे पराई
वह घर तोकूं सोप्या बावरी, चली जा बिना बुलाई।।
या जइयो तू राज द्वारे या रसिया रस भोगी
हमरा पीछा छोड़ बावरी, हम है रमते जोगी।

अभी पक्षियो का कलरव भी आरम्भ नही हुआ। मुनि जी के नेत्रो से निदिया लोप हो गई और वे प्रभु-वन्दना मे लग गये। मौन बैठे रहे। बस, अधर फडफडा रहे है।

पक्षियो ने ईश्वर-उपासना आरम्भ कर दी। इस डाल से उस डाल पर फुदक-फुदककर कलरव कर रहे है और ईश्वर का गुण-गान चल रहा है। सोते प्राणियो को अपनी चहचहाहट से जगा रहे है।

हमारे सन्त सोते मानव के लिए तपस्या मे लीन है। कितना ममय बीत गया पर, वे उपासना ही मे लगे हे।

सूर्य ने दूर क्षितिज पर स्वर्णिम किरणे वखेर दी और हमारे चरित्र-नायक के मधुर कण्ठ से राग फूट पडा।

मन बिच मनमोहन बसा ले, जंगला च की टोलना।
हर वेले हर अन्दरो ही पा ले जगला च की टोलना॥

शीतल समीर मे घुलकर सन्त-ध्वनि सारे वातावरण मे तैरने लगी।

देख तेरा दिल दिन रात जो धडकदा,
रात जो धड़कदा।
इक इक पाप तेरा सिने च रडकदा,
सिने च रड़कदा।
दिल शीशे वागू साफ बनाले, जगला च की टोलना।

कलरव करते पक्षी, जगल की ओर जाती गौएँ और खेतो की ओर वढते कृपकजन मुनि जी के मधुर राग की ओर कान लगाने लगे। मुनि जी अपने राग मे मस्त है। कृष्ण की वाँसुरी की तान जैसे पशु-पक्षी और प्राणियो के पैर वाँध देती थी उसी प्रकार मुनि जी के तरगित स्वर उन्हे अपने आकर्पण-पाश मे वाँध लेने मे सफल हुए। राग चलता रहा और सूर्य अपना मुख मुनि जी के दर्शनो के लिए ऊपर उठाने लगा। जैसे उसे भी मुनि जी के राग ने आकर्पित कर लिया हो। वायु ने फिर राग के शब्द वखेरने आरम्भ कर दिये।

भुक्खा है प्रेम दा वो दिल विच मथ ले,
दिल विच मथ ले।
तू भगती दी नत्थ पाके प्रेम विच नत्थ ले,
प्रेम विच नत्थ ले॥
सगो पिच्छे-पिच्छे ओसनूं फिरा ले, जगला च की टोलना।

सन्त जी की लय-मे-लय मिलकर एक चरवाहा स्वय ही गा उठा,

मन विच मन मोहन बसा ले जगला च की टोलना।
हर वेले हर अन्दरो ही पाले जगलां च की टोलना॥

पहले सन्त गा रहे थे अव अनेको गाने लगे। यह राग की नही मुनि अमृतचन्द्र जी के मधुर कण्ठ और उनकी शैली की मनमोहकता है, जो

जाते लोगो को अपने सुर-से-सुर मिलाने पर विवश कर देती है। मुनि जी के दिव्य गुण और उनकी प्रतिभा सुनसान जगलो मे भी प्राण डाल सकती है, तो मुर्दा दिलो को पुलकित कर डालना तो उनके लिए साधारण सी वात है।

विहार का समय हो गया और फिर दर्शनार्थियो को आशीर्वाद देकर वे अपने लक्ष्य की ओर बढने लगे। इसी प्रकार सूर्य की आग्नेय किरणो की परवाह किए बिना ही वे पसीने मे नहाये हुए पगडण्डियो और सडको को पीछे छोडते हुए आगे बढ रहे है। यह भुच्चो मण्डी है। सूर्य देव का रथ पश्चिम क्षितिज को पार कर चुका है। मुनि जी का आज का सफर समाप्त हुआ और स्टेशन पर उपासना के लिये वैठ गये। भगवान् की उपासना और उसके उपरान्त चिन्तन। भिक्षा ही उनकी उदर-पूर्ति का साधन है। आन-की-आन मे कितने ही दर्शनार्थी एकत्रित हो गये। अमृत मुनि के नाम मे ही जादू है, जो सुनता है वही दर्शनो को दौड पडता है और फिर मुनि जी उपदेशामृत की वर्षा करने लगते है। लोग कृतकृत्य हो जाते है और उनसे कुछ दिनो इसी नगर मे विश्राम करने के लिए प्रार्थनाएँ होने लगी। अमृत मुनि अपनी विवशता प्रगट करते है, लोगो के नेत्रो मे गगाजल उमड आता है। पर मोह-वन्धनो को तोडकर विरक्ति के पथ पर जाने वाले को उन अश्रुबिन्दुओ से क्या लेना ? वे फिर सूर्य-किरणो के साथ अपने भक्तिराग की ध्वनि वखेरने लगते है। वातावरण को झूमता छोडकर वे चल पडते है। उनके राग की ध्वनि अभी तक गूँज रही है

प्रेम हो तो, प्रभु भजन का प्रेम होना चाहिए।
जो बने विषयो के प्रेमी उनको रोना चाहिए॥

धरती पापो की गरमी से जल रही है और शान्ति एव अहिसा के देवता के चरण-कमलो को स्पर्श कर जलती धरती गद्‌गद हो उठती है। मील के चिन्हो को पीछे छोडते हुए मुनिदेव आगे जा रहे है। पर उनके मस्तिष्क मे मानव-कल्याण के उपायो का चिन्तन चल रहा है। उनके विचारो का तार नही टूटता, न लुओ से, न भूमि पर चढे ज्वर के आभास से।

उनका जीवन विरोधो की लुओ से टकराते हुए वीत रहा है। मन

शीतल है, इसलिए लुओ का कोई प्रभाव उन पर होने वाला ही नही है। सूर्य देवता के रथ के पहियो के साथ-साथ प्रकृति-पुत्र के पाँव उठ रहे है और प्रात मध्याह्न मे, मध्याह्न साय मे परिवर्तित होने लगा। 'लहरा मोहब्बत' का स्टेशन निकट आ रहा था और आज मुनि जी रात्रि को यही विश्राम करेगे। चरण स्टेशन पर रुके। अन्य दिनो की भाँति भिक्षा के लिए निकले और वापिस आकर पुन उपासना मे बैठ गये। नेत्र खुले और मौन टूटा तो कितने ही दर्शनार्थियो को उपदेशामृत का प्याला पाया। मुनि जी बोलने लगे

"यह कभी मत भूलो कि सर्वप्रथम तुम इन्सान हो और इन्सानियत का भी एक आदर्श है। उस आदर्श से गिर गये तो फिर न मोक्ष मिल सकता है न भगवान्। सत्य से दूर रहने वाला इन्सान नही। इन्सानियत शान्ति, अहिसा और सत्य के उसूलो पर आधारित है।"

फिर राष्ट्रीय समस्याओ पर आये

"भगवान् महावीरकी जन्म-भूमि को यह गौरव प्राप्त है कि उसने कभी किसी देश पर आक्रमण नही किया। उसकी नीति शान्ति और मित्रता की रही है और भारतवासियो का चरित्र भगवान् महावीर के बताये हुए सत्य, अहिसा और शान्ति के उसूलो से ओत-प्रोत हुआ, तभी वे सारे ससार के आदर्श-मानव बने। पर आज भारतवासियो के दिल घृणा, भेदभाव और ईर्ष्या से भर गये है इसलिए भारत सबसे दु खी देश है। चारो ओर भूख का दावानल, बेरोजगारी का बवण्डर, चारो ओर घूँसखोरी, स्वार्थ-लिप्सा और पक्षपात का बोलबाला है। क्योकि देश इन्सानियत से दूर हो गया है। प्रेम और भ्रातृत्व भारतवासियो के लिए उपदेशो और धर्मग्रथो की बाते हो गई है। देश को इस अधोगति से बचाना है तो मानवता को अपना आदर्श बनाना होगा, सम्प्रदायो के घरौंदे गिराने होगे। यदि भगवान् महावीर के बताये हुए नियमो को हम अपने जीवन का आधार बना ले तो ये समस्याएँ आन-की-आन मे हल हो सकती है। जिस दिन ऐसा होगा, यह शान्ति-प्रिय देश सारे ससार का नेतृत्व करेगा। हमारे देश को अणु-बमो की आवश्यकता नही है, प्रेम और शान्ति के महान् गुणो की आवश्यकता है।"

रात्रि अपनी घडियाँ गिन रही थी और श्रोता मुनि जी के प्रवचन सुनते जा रहे थे, सुनते ही रहना चाहते थे।

पक्षियो के पखो की फडफडाहट के साथ मुनि जी के होट भी फडफडा रहे थे और ज्योही सूर्य-किरणे भूमि को स्वर्ण-स्नान कराने लगी, मुनिदेव शीतल समीर को मधुर राग से स्नान कराने लगे

अगर भगवान के चरणो में तेरा प्यार हो जाता।
तो इस ससार-सागर से तेरा उद्धार हो जाता॥

× × ×

चढ़ाते देवता तेरे चरण की धूलि मस्तक पर।
अगर भगवान की भक्ति में मन इकतार हो जाता॥

दिन के चरणो के साथ-साथ प्रकृति-पुत्र के चरण भी चलने लगे। प्रात मध्याह्न की ओर दौडी और मध्याह्न ने सध्या की गोदी मे विश्राम किया। मण्डी हण्डयाया आ गई। अमृत मुनि जी ने रात्रि यही व्यतीत की। दूसरी साय उन्हे बरनाला मे हुई। मुनि जी के आगमन का समाचार विद्युद्-गति से सारे नगर मे दौड गया। दर्शनार्थियो की भीड लग गई।

भक्त जनो की प्रार्थना पर उन्होने दूसरे दिन जन-सभा मे व्याख्यान करना स्वीकार कर लिया और दूसरे दिन भजनोपरान्त उनका भाषण आरम्भ हुआ।

जनता उमड पडी। उनमे जैन-धर्म के अनुयायियो से अन्य धर्माव-लम्बियो की सख्या अधिक है। प्रसिद्ध वक्ता अपने भाषण से जनता को प्रभावित करते चले जाते है।

उनके भाषण मे उत्साह है, ओज है, हास्य है, कथाएँ है ज्ञान है और मानव-धर्म का रहस्य कूट-कूटकर भरा है। लोग कहते है, यह सन्त निराला है जो वह मानवता को खण्डो मे वभाजित करना नही चाहता, केवल मानवता का उपासक है। मानवता का उपासक है, इसीलिए महान् है। जय-जयकारो से सभास्थल गूँज उठा।

भक्त जनो की प्रार्थना पर मुनि जी ने बरनाला मे कुछ दिन और रुकना स्वीकार कर लिया। एक व्याख्यान और हुआ। पजाब जैन-सभा के विरोध के बावजूद जनता मुनि जी की अमृतवाणी सुनने अधिकाधिक

मख्या म पहुँच रही है, यह इस वात का प्रमाण है कि सत्य कभी नही झुकता।

एक दिन जैन भाई एकत्र होकर उनके पास पहुँचे। वोले, "मुनिदेव हम आपके प्रवचन सुनना चाहते है पर पजाव जैन-सभा हमे आपके पास आने और प्रवचन सुनने से रोकती है। अव आप ही कोई उपाय वताये।"

मुनि जी शान्ति के दूत ठहरे। वे वोले, "उपाय तो आसान है, मै आपका नगर छोडकर चला जाऊँ तो आपका धर्म-सकट दूर हो जाय। मै कल ही यहाँ से चला जाऊँगा।"

अमृत मुनि की वात सुनकर आगन्तुक व्याकुल हो गये। उन्होने कहा—"हम यह नही चाहते कि आप चले जायँ।"

पर अमृत मुनि ने दृढ निश्चय कर लिया था। वे दूसरे दिन विहार करने लगे तो नगर के प्रतिष्ठित जनो ने पैर पकड लिये और विहार न करने की प्रार्थना की। मुनि जी ने कहा, "मै आप लोगो को सकट मे नही डालना चाहता। मै तो सकटो से उवारने के लिए प्रयत्नशील हूँ। इसलिए आपके नगर से जाना ही होगा।"

और उठा हुआ कदम रुका नही। वे चल पडे अपने लक्ष्य की ओर, क्योकि उन्हें कैथल की जनता पुकार रही थी।

चौदहवाँ अध्याय

पग बढ़ते ही रहे

फिर उसी प्रकार यात्रा पर चल पडे अमृत मुनि। जहाँ से गुजरते, दर्शनार्थियो की भीड लग जाती। जो आया है उसे जाना भी है। जिसका आदि है उसका अन्त भी अवश्यम्भावी है। इसी उसूल पर दिन-रात चलते है। अभी प्रात थी, तो फिर मध्याह्न आया और धीरे-धीरे सध्या-काल भी आ गया। रात्रि को शेखे स्टेशन पर विश्राम किया और दूसरे दिन धुरी पहुँच गये। धुरी की जनता ने तो पैर ही पकड लिये और कहते है भगवान् भक्तो के वश मे आ ही जाते है। मुनि जी श्रद्धा-भक्ति से किया गया आग्रह टाल न सके और उन्हे लगभग एक सप्ताह वही विश्राम करना पडा। नाम विश्राम का है, पर वास्तव मे विश्राम उन्हे कौन करने देता है, दर्शनार्थियो से पीछा छुटता है तो फिर उपासना, चिन्तन और अध्ययन आ घेरते है।

एक सप्ताह उपरान्त वे सगरूर होते हुए सुनाम पधारे। यहाँ की जनता ने प्रात और साय दो बार व्याख्यानो का प्रबन्ध किया और अमृत मुनि के प्रवचनो मे श्रोताओ की सख्या प्रतिदिन बढती रही। इतना प्रेम दर्शाया जनता ने कि मुनि जी को यहाँ कई दिन ठहरना पडा और विहार के समय सहस्रो नर-नारी उन्हे विदा करने आये। कुछ लोग तो सात-आठ मील तक उनके साथ ही चले। जनता की इतनी श्रद्धा मुनि जी के प्रभावशाली व्यक्तित्व और उच्च विचारो के प्रभाव की प्रतीक थी।

वे जाखल मण्डी पहुँच गये। जनता द्वारा शानदार स्वागत हुआ। सारी मण्डी अमृत मुनि की जय-जयकारो से गूँज उठी। नगरवासियो की प्रार्थना पर वे यहाँ एक सप्ताह ठहरे और मूनक, टुहाना, नरवाना, क्लैथ आदि अनेक स्थानो पर विश्राम करते हुए वे कैथल पहुँच गये। बडी धूमधाम से नगर मे प्रवेश हुआ। जय-जयकारो से सारा नगर गूँज उठा। नारियाँ स्वागत-

गान गा रही थी और भक्त जनो की भारी भीड उनके पीछे-पीछे चल रही थी। यह वही नगर है जहाँ उन्हे उपाध्याय पद से विभूषित किया गया था।

चातुर्मास आरम्भ हुआ, कथाएँ आरम्भ हुई, मुनि जी के उपदेश आरम्भ हो गये। जनता किसी के रोके भी उनके उपदेश सुनने जाने से नही रुकती, यह प्रकृति-पुत्र की विद्वत्ता, तपस्या और उच्चता का प्रमाण है। कदाचित् ससार मे कोई ही ऐसा मुनि हुआ हो जो जिस धर्म के नियमो और आदर्शो का प्रचार करे उसी धर्म के लोग जनता को उसके पास जाने से रोके, पर जनता रुक ही न पाये। सत्य और ईर्ष्या मे ठन गई। अमृत मुनि अपने विचारो पर दृढ रहकर जनता को सत्य पर अडिग रहने की शिक्षा देते रहे और पजाब जैन-सभा ने लोगो को मुनि जी का प्रचार न सुनने के लिए उभारना जारी रखा।

चातुर्मास मे प्रवचन चलते रहे। लोग बिना किसी विरोधी प्रचार की परवाह किये धर्म-लाभ उठाते रहे।

अन्तत एक दिन चातुर्मास भी समाप्त हो गया। धीरे-धीरे वह दिन भी आ गया जब भक्तो की इच्छाओ के विरुद्ध मुनि जी ने अपना विहार करने का निर्णय कर ही लिया। भक्तजनो ने लाख सिर पटका लेकिन मुनि जी के मुख से एक ही बात निकली

वर्षेऽधिक चतुर्मासात्, स्थान सतां न सङ्गतम्।
अहेतुकोऽन्यकालीनो मासाद्वास परो नहि॥

अर्थात् एक वर्ष मे चतुर्मास से अधिक, एक स्थान पर साधुओ को निवास नही करना चाहिए। तथा अन्य आठ महीनो मे भी, बिना कारण एक मास से अधिक नही ठहरना चाहिए।

भक्त जन कहने लगे कि बिना कारण के ही तो अधिक नही ठहरना चाहिए, पर जब हम भक्त जन आपको विवश कर रहे है तो फिर एक कारण तो बन ही जाता है।

अमृत मुनि जी ने 'गौतम गीता' का दूसरा श्लोक सुनाया

अवरुद्ध जल सौम्य निर्मल कलुषायते।
अत साधुजनै सम्यग् विहर्त्तव्य सदा भुवि॥

अर्थात् हे सौम्य! रुका हुआ पानी जिस प्रकार कलुषित हो जाता

है, उसी प्रकार साधु के एक स्थान पर अधिक ठहरने से दोप लगता है। अत साधुजनो को नियमानुसार विचरते ही रहना चाहिये।

भक्त जन बोले, "पर गुरु जी! गगाजल यदि किसी बरतन मे भर कर बहुत दिनों तक रख दे, वह नही सडता। इसी प्रकार आप तो गंगा-जल की भाँति पवित्र है, आपको रुकने से दोष लगने का प्रश्न नही उठना चाहिये।

मुनिवर के अधरो पर हास्य निखर आया। वे बोले, "गगा को यदि एक स्थान पर बाँध दिया जाय और इस प्रकार शेष भूमि को उससे लाभान्वित होने से रोक दिया जाय तो गगा स्वय कलुषित हो जायेगी।" और वे अपने निश्चय पर अडे ही रहे।

विहार का दिन आ ही गया था। नगर-निवासी एक बडी सख्या मे अपने गुरुदेव को विदा देने के लिए एकत्र हो गये। नारियाँ विदाई गीत गाने लगी, पुरुष वर्ग अमृत मुनि और महावीर स्वामी की जय के नारे लगाने लगा। सैकड़ो व्यक्ति नगर से कई मील दूर तक गुरुदेव को विदा देने गये और सजल नेत्र लेकर लौट आये।

अमृत-प्रचार

अमृत मुनि जी ने पानीपत की ओर प्रस्थान किया था। वे सडको और पगडण्डियो से होते हुए चले जा रहे थे। जैन-धर्म के उसूलो को मानने के कारण उन्हे बहुत सी बातो का ध्यान रखना होता है। हरी शाक-सब्जी तो वे खा ही नही सकते, पर पथ पर पडने वाले हरे-भरे लह-लहाते पौधो से अपने चरण बचाते हुए चलते है। कीडे-मकौडो की हत्या न हो जाय, कही कोई हिंसक कदम न उठ जाय, किसी के मन को ठेस न पहुँच जाय, यात्रा मे कितनी ही ऐसी-ऐसी बातो को ध्यान मे रखना होता है। वे कही भी जाँय, खरीद कर तो कोई वस्तु खानी नही है। वे मुद्रा के सर्वथा त्यागी है इसलिए पैसा उनके पास है ही नही, इसलिए वे हर वस्तु, जो उनके लिए आवश्यक होती है, माँगते ही है।

पथ पर भिक्षा करते और सहयात्रियो को उपदेश देते चलते है, जब कोई अन्य गृहस्थ यात्री साथ नही होता, वे चिन्तन मे रम जाते है। पूण्डरी तथा अन्य क्षेत्रो मे भ्रमण करते हुए करनाल पहुँचे। इन दिनो

पजाब जैन-सभा ने एक प्रस्ताव द्वारा यह निर्णय कर लिया था कि अमृत मुनि को कोई भिक्षा न दे। भोजन तो दूर की बात रही, पानी तक न दिया जाय और ठहरने को स्थान न दिया जाय। अपने इस प्रस्ताव को सारे प्रान्त मे प्रचारित कर रखा था। करनाल पहुँचने पर पीछे छूटे दूसरे नगरो की भाँति पता चला कि उनके विरुद्ध पहले से ही काफी प्रचार है। पर उनके ललाट पर विद्यमान तेज, उनकी वाणी का माधुर्य, वाक्पटुता, विद्वत्ता और मैत्रीभाव अनायास ही परिचय प्राप्त व्यक्ति पर अपनी अमिट छाप छोड जाता है, और फिर उनके भक्त जन तो प्रत्येक नगर मे है। अमृत मुनि के आगमन के समाचार से भक्त जनो एव विरोधियो सभी मे हलचल हो गई और देखते-ही-देखते दर्शनार्थियो की बडी भीड हो गई। प्रतिदिन प्रवचनो का कार्यक्रम चलने लगा। एक दिन मुस्कराकर उन्होने एक व्यक्ति से पूछा, "तुम तो जैन हो और जैन-सभा का निर्णय तुम्हे मालूम ही है, फिर भी तुम मुझे भिक्षा देते हो और मेर उपदेश भी सुनने आते हो। ऐसा क्यो है?"

वह व्यक्ति बोला, "महाराज हमे तो अमृतवाणी मे श्रद्धा है, हम आते है आपके आशीर्वाद के लिए। आपसे जैन-सभा का वैर हो, हमारा नही। भगवान् महावीर ने तो सभी जीवो से प्रेम करने की शिक्षा दी है, फिर हम आपसे घृणा कैसे करे। आपका तो व्यक्तित्व ही ऐसा है कि हमारे पग स्वयमेव ही आपके चरणो की ओर उठने लगते है। हम विवश है।"

मुनि जी बोले, "देखता हूँ, भगवान् महावीर के उपदेशो का जैन-धर्म के ठेकेदारो से तुम पर अधिक प्रभाव है। याद रखो, जो धर्म किसी से घृणा करने की शिक्षा देता है, वह धर्म नही पाखण्ड है। जो इन्सान दूसरे इन्सान से घृणा करता है वह इन्सान नही है। भगवान् महावीर की आत्मा की आवाज को तुमने परखा है, तुम्हारा कल्याण अवश्य होगा।"

वह व्यक्ति मुनि जी की बात को सुनकर गद्‌गद हो उठा। मुनि जी सोचने लगे, यह व्यक्ति उन सन्तो से सहस्र गुना श्रेष्ठ है जो सन्यासी है पर घृणा जिनकी सखी है।

हरिद्वार की ओर

अमृत मुनि जी को उपदेश करते कई दिन हो चुके थे। उन्होने निर्णय किया कि हरिद्वार की ओर चला जाय। हरिद्वार हिन्दुओ का प्रसिद्ध तीर्थ स्थान है, पर उस ओर जैन-साधु नही जाते। हमारे चरित्र-नायक अपने विचारो और कर्मों मे क्रान्तिकारी है, इसलिए हरिद्वार की ओर भ्रमण करने का ध्यान आते ही पथ पर आने वाली कठिनाइयो पर विचार करते हुए भी उन्होने हरिद्वार की ओर ही अग्रसर होने का निर्णय कर लिया। उनके साथ परम सहयोगी सन्यासी 'गौतम' मुनि भी थे। निर्णय होना था कि विहार का कार्यक्रम बन गया। करनाल निवासियो ने चाहा कि मुनिवर अभी कुछ दिनो और यहाँ रुके पर निर्णय हो चुका था इसलिए विदाई का ही प्रबन्ध करना पडा। नगर के सैकडो नर-नारी बाजारो मे जय-जयकार करते हुए उनके पीछे-पीछे चले और मुनिवर करनाल नगर से बाहर हरिद्वार की ओर पहुँचने के लिए उपयुक्त पथ पर आ गये।

ज्यो-ज्यो हरिद्वार की ओर बढते जाते थे, कठिनाइयो मे वृद्धि होती जाती थी क्योकि जैन-समुदाय हरिद्वार की ओर नगण्य सख्या मे है। बस्तियो, नगरो और रास्तो को पार करते हुए मुनि जी 'लाडवा' पहुँच गये। यहाँ से हरिद्वार की ओर जाने वाले सन्यासियो का ताता आरम्भ हो जाता है।

नगरवासियो को प्रतिदिन सन्यासियो के दर्शन करने को मिलते थे और परिवर्तन-चक्र के साथ हिन्दू जाति की मान्यताओ मे भी धर्म के अन्य अगो की भाँति ही परिवर्तन आया है। साधु-सन्यासी भी परिवर्तन-चक्र से अपने को नही बचा सके और समाज मे पाप, भ्रष्टाचार तथा दरिद्रता आने के साथ-साथ सन्यासियो मे भी अपने अवगुणो का प्रादुर्भाव हुआ है, मानो समाज का पूर्णतया प्रतिविम्ब सन्यासी-जीवन के दर्पण मे देखा जा सकता हो। सम्भव है कभी किसी युग मे सन्यासी जीवन श्रेष्ठतम रहा हो और ब्रह्मचर्य, त्याग, तपस्या और लोकसेवा उस जीवन के मुख्य अग रहे हो। सुनते है कि एक युग था, जब यह सम्भावना वास्तविकता का रूप धारण किये थी पर वह वास्तविकता

आज के युग मे कल्पना बन कर रह गई है। हमारे चरित्र-नायक और अन्य कुछ सन्यासियो ने तो आज भी सतयुग नामक युग की उन याम्नविकताओ की पताका फहरा रखी है पर वर्तमान युग की वास्तविकता यह बनकर रह गई है कि भारत मे शोपक और शोपित की भाँति एक सन्यासी वर्ग भी बन गया है। लाडवा के नगर-निवासियो के मस्तिष्क मे सन्यासियो को देखते-देखते यह विचार घर कर गया है कि सन्यासी के वेश मे अधिकतर उदरपूर्ति और अपनी अन्य कामनाओ की पूर्ति के लोभी लोग विचरते फिरते है।

इसलिए जब हमारे चरित्र-नायक लाडवा के बाजार से निकले, लोगो ने आवाजे कसनी आरम्भ कर दी, "लो भाई, खाने-पीने का यह कोई नया पथ निकला है।" लाडवावासियो ने किसी सन्यासी का यह रूप प्रथम बार ही देखा था इसलिए वे इसे नया पथ समझ रहे थे और अब उनके दिमाग मे यह बात आती ही नही थी कि कोई सन्यासी विद्वान्, त्यागी, तपस्वी और ज्ञानी भी हो सकता है। क्योकि उनके नगर से तो वही सन्यासी गुजरे थे जो पुण्य के नाम पर पाप और मोक्ष के नाम पर फरेब को अपना पेशा बनाये हुए है अथवा भगवान् के नाम पर लोगो को मूर्ख बनाकर रुपया ऐठते है। अभी उस दिन तो एक साधु इस नगर मे पधारे थे। उनके केश पीछे कमर पर बिखरे थे। सारा शरीर राख मे छुपा था और एक लँगोट ही उनके शरीर पर एकमात्र वस्त्र था। हाथ मे कमण्डल और एक बगल मे मृगछाला थी। उन्होने बताया कि वे एक महान् योगी है, उनकी आयु १५० वर्ष है और हिमालय की गुफाओ मे वे बीसो वर्ष तक तपस्या करते रहे है। उन्हे अन्त मे भगवान् ने वरदान दिया है कि वह लोहे पर हाथ रख दे तो चाँदी हो जाय ओर चाँदी पर हाथ रख दे तो सोना बन जाय और यदि कही सोने पर हाथ पड जाय तो वह द्विगुना, चौगुना बन जाय। एक लोभी व्यापारी उनसे फँस गया। तीन-चार दिन पश्चात् ही वे सन्यासी जी चाँदी को सोना और सोने का द्विगुना बनाते-बनाते हजारो रुपये के आभूपण लेकर चम्पत हो गये थे। ऐसी कितनी ही घटनाएँ होती रहती है, लोग सन्यासियो से ऊब चुके है, फिर भी ऐसे पाखण्डियो के जाल मे फँस जाते है।

सन्यासियो के प्रति फैली हुई आम भावना हमारे चरित्र-नायक के

लिए भी व्यक्त की जाने लगी। सारे नगर मे जैन-सम्प्रदाय के लोग नही है। कोई नही जानता कि अमृत मुनि और उनके साथी गौतम मुनि ने मुँह पर सफेद पट्टी क्यो बाँध रखी है। वे सन्यासी किस मत के है, इसलिए आँख फैलाकर आश्चर्य से उनकी ओर देखते है।

मुनि जी को बात खटक गई। वे समझ गये कि यह क्षेत्र महावीर स्वामी के उपदेशो से खाली है। बाजारो और गलियो मे जाकर इस वातावरण का आधार मालूम किया तो पता चला कि इस नगर मे साधु-सन्यासियो ने धर्मपरायण जनता के हृदय को कितनी ठेस पहुँचाई है और यह भी कि जैन साधु प्रथम बार ही इस नगर मे देखे गये है। अमृत मुनि ने निश्चय किया कि इस बजर भूमि मे भी सत्य, शान्ति और अहिसा के ज्ञान का बीजारोपण करना है।

वे निकल पडे सडको और गलियो मे। चौराहो पर खडे हो-होकर उपदेश करना आरम्भ कर दिया। नगरवासियो ने तो आज तक खाऊ-पीर सन्यासी देखे थे किसी प्रकार के प्रचारक के रूप मे नही। चौराहों पर ही भीड़ होने लगी और एक-दो दिन पश्चात् ही सैकडो व्यक्ति उनके प्रवचन सुनने के लिए एकत्र होने लगे। अब उन्हे गलियो मे जाकर अपने विचार सुनाने की आवश्यकता नही रह गई थी। दर्शनार्थी और ज्ञान-पिपासु उनके पास ही एकत्रित होने लगे और नगर मे समाचार रुई की आग की भाँति फैल गया कि अमृत मुनि नाम के एक सन्यासी मानवता का सन्देश लेकर इस नगर मे पधारे है जो पानी तक की भिक्षा माँगते है।

फिर क्या था, नगरवासी इस नये सन्यासी को देखने के लिए ब्रह्मपुत्र मे आती भयकर बाढ की भाँति उमड पडे। बिना बुलाये ही विराट् सभाएँ होने लगी। अमृत मुनि कथाओ और गानो से रगे व्याख्यान कर जनता का ध्यान मानव-धर्म की ओर आकृष्ट करने लगे। कितने ही लोग उनके भक्त हो गये और कितनो ने ही उनके भाषणो से प्रभावित होकर अवगुणो को तिलाजलि दे दी। इस प्रकार थोडे से ही विश्राम ने इस नगर मे अमृत मुनि के पाण्डित्य का डका बजा दिया। इससे सन्यासियो के सम्बन्ध मे इस नगर के निवासियो का दृष्टिकोण भी कुछ उदार हुआ। वे

सोचने लगे कि कुछ साधु ऐसे भी है जो मानव-जगत् की मुक्ति के लिए तपस्या कर रहे है ।

अपने नियमानुसार उन्होने आखिर एक दिन विहार किया तो भक्त जन रास्ता रोककर खडे हो गये । कुछ दिनो और उसी नगर मे विश्राम करने की विनती की । पर मुनि जी को तो हरिद्वार पहुँचने की जल्दी थी । यात्रा वडी लम्वी थी । इसलिए उन्होने कहा, "सज्जनो ! ज्ञान की एक चिंगारी ही पुण्य की ज्वाला धधका देती है । यदि महावीर स्वामी के उन उपदेशो पर तुमने अमल किया, जो इस लघु समय मे मैंने तुम्हे बताए है, तो मुझ जैसे कितने ही साधुजनो को तुम लोग अपनी ओर खीच लोगे । मेरे यहाँ अधिक दिन विश्राम करने से ही तुम्हे मोक्ष प्राप्त नही हो जायेगा, मोक्ष के लिए जीवन-पर्यन्त साधना की आवश्यकता है । वह साधना गृहस्थ जीवन मे भी चल सकती है । यदि मेरे प्रति आपको श्रद्धा है तो मेरे वताये हुए मार्ग पर निर्विघ्न चलते रहना ।"

साधु-सन्तो से ऊवा हुआ नगर अमृत मुनि की विदाई के समय 'अमृत मुनि की जय' के नारो से गूँज उठा । यह इस नगर के इतिहास मे एक अनोखी घटना थी, जिसकी ओर आकर्षित हुए विना कोई न रह सका । अमृत मुनि की विद्वत्ता और तपस्या ने इस नगर पर जो अमिट छाप छोडी थी, वह नगर निवासियो के लिए चिरस्मरणीय हो गई ।

त्याग, तपस्या और ज्ञान की पताका लहराते हुए अमृत मुनि अपने लक्ष्य की ओर वढे । अव कोई ऐसा नगर या देहात नही था, जहाँ किसी जैन मुनि ने कभी प्रवेश न किया हो । सारे रास्ते लोग उन्हे अचम्भे से देखते और अन्य सन्यासियो की भाँति ही उन्हे दण्डवत् होती । प्रत्येक स्थान पर उन्हे नये-नये अनुभव हुए और प्रत्येक स्थान की महावीर स्वामी के उपदेशो की दृष्टि से बजर भूमि मे उन्हे शान्ति, अहिंसा और सत्य का बीजारोपण करना पडता । साधुओ की कुटियो मे उन्हे विश्राम करना पडता––उन साधुओ की कुटियो में जिनके विचार और आचार हमारे चरित्र-नायक से बिल्कुल भिन्न थे । कोई-कोई सन्यासी अपनी कुटिया को एक गृहस्थ की भाँति वनाये हुए था, उसमें खाद्य पदार्थों और अन्य वस्तुओ का भण्डार रहना और कोई-कोई साधु अपने पास सुलफा-तम्बाखू का भण्डार सजोए होता । जब ऐसे साधुओ को अमृत मुनि के दर्शन होते

तथा उनके जीवन के सम्बन्ध मे जानकारी होती, वह आत्म-ग्लानि तो अनुभव करते ही, पर उनका मस्तक अमृत मुनि के सम्मान मे झुक जाता। 'धन्य हो अमृत मुनि, तुम धन्य हो' यही शब्द उन्हे अनेको साधुओ से सुनने को मिलते।

कभी-कभी यात्रा मे उन्हे भूखा-प्यासा रहना पडता, क्योकि उन्हें उपयुक्त पानी और उपयुक्त भोजन, जैसा उन्हे मिलना चाहिए, भिक्षा मे नही मिल पाता था। पर यात्रा की इन कठिनाइयो से भी उन्होने साहस नही त्यागा। वे अपनी मजिल पर बढते ही रहे। हरिद्वार पहुँचने का लक्ष्य ह तो हरिद्वार ही पहुँचा जायेगा।

कभी-कभी पथ की कठिनाइयो को भूलने के लिए उनके सहयोगी गुरुभाई गौतम मुनि अपने मधुर कण्ठ से राग छेड देते

झूठ को आजमा चुका सच को भी आजमाके देख।
पाप के जाल से निकल धर्म की ओर आके देख॥

पथिक कान लगाकर सुनने लगते। वे कदम बढाना भूल जाते और गौतम मुनि तान छेडते ही रहते

शान्ति की खोज में कहीं मृग की तरह न दौड़ तू।
बाहर की आँख बन्द कर दिल की नजर उठा के देख॥

और फिर प्रकृति-पुत्र भी उसमे अपनी वाणी मिला देते।

देह अमर हो या न हो, जीवन अमर हो जायेगा।
अमृत का जाम पी के देख, औरो को भी पिलाके देख॥

मुनिजनो का राग चल रहा है और दूसरी ओर शिकारियो के भय से भागते हुए मृग चौकडी भरना भूलकर 'अमृत का राग' सुनने के लिए रुक जाते।

कई क्षेत्रो मे विचरण करते हुए प्रकृति-पुत्र जगाधरी पहुँचे। जैन समुदाय ने उनका हार्दिक स्वागत किया। वे उपदेशामृत की वर्षा करते हुए सरसावा पहुँचे। अमृतमुनि पर रास्ते की थकान भी कोई प्रभाव नही डालती। वे जिस नगर मे पहुँचते है वहाँ मानव-धर्म का सन्देश और भगवान् महावीर की शिक्षाओ का प्रचार किये विना उन्हे चैन ही नहीं आती। इसलिए प्रत्येक नगर मे उनका नाम जनता के कानो तक पहुँच

जाता है और जो एक बार भाषण सुन लेता है, उसी के मन मे मुनि जी के प्रति श्रद्धा अकुरित हो जाती है।

सरसावा मे प्रवचन करके अपनी विद्वत्ता की ज्योति से बुझे हुए दिलो को प्रकाशमान करके वे सहारनपुर पहुँच गये। यह नगर उत्तर प्रदेश के मस्तक पर एक रत्न की भाँति जगमग-जगमग दमक रहा है। उत्तर प्रदेश के जैन-जगत् मे इसे 'दिगम्बर जैन विलायत' के नाम से पुकारा जाता है क्योकि सहारनपुर मे लगभग १५०० दिगम्बर जैन परिवार बसते है और स्थानकवासियो की सख्या अति न्यून है। सहारनपुर हमारे चरित्र-नायक अमृत मुनि के सहयात्री ओमीश मुनि जी की जन्म-भूमि भी है, इसलिए इस नगर मे हमारे चरित्र-नायक और उनके सहयात्री गौतम मुनि जी के लिए एक विशेष आकर्षण भी होना ही चाहिये। अपनी जन्म-भूमि को देखकर अपने भूले हुए दिनो की कितनी ही स्मृतियाँ किसके मस्तिष्क मे जागृत नही हो जाती। पर ओमीश मुनि तो अब एक वैरागी है। मानव स्वभावानुसार उनके मन मे भी उन गलियो को देखने की इच्छा उभरी होगी जो शिशुकाल और किशोरावस्था मे उनके क्रीडा-स्थल थे। हो सकता है कितनी मधुर यादे भी उन गलियो से सम्बन्धित हो। पर ओमीशचन्द्र जी अब गौतम मुनि है, मोह-माया के बन्धनो को वे तिलाजलि दे चुके है इसलिए वे स्मृतियाँ आज उन्हे सता नही सकती।

हमारे चरित्र-नायक और ओमीश मुनि के लिए सहारनपुर मे कितना ही आकर्षण क्यो न हो, पर भेदभाव के इस समाज मे भेदभाव मनुष्यता से आगे आ गया है। होना तो यह चाहिए कि पहले मानवता अथवा मनुष्यता, तत्पश्चात् कोई सम्प्रदाय का रोग, और रोग न हो तो विशुद्ध मानवता ही मानव का आदर्श रह जाय। पर यहाँ समाज और मानव मस्तिष्क इतना विकृत हो चुका है कि भेदभाव और सम्प्रदायवाद पहले है और यदि मानवता का कोई अश है भी तो वह उसके बाद है। इसीलिए मुनियो के सामने ठहरने का प्रश्न जटिल हो गया। दिगम्बर जैनी ठहरे स्थानकवासियो के विरोधी और स्थानकवासी एक तो है ही बहुत कम, दूसरे ऐसी अवस्था मे नही कि मकान का प्रबन्ध कर सके। ज्यो-त्यो करके हमारे चरित्र-नायक को 'सरस्वती भवन' मे स्थान मिल गया। रात्रि को प्रवचन हुए। मुनि जी ने भगवान् महावीर की शिक्षाओ को दृढता-पूर्वक

रखा और पाषाणी मूर्तियो के सामने सर पटकने के विरुद्ध आवाज बुलन्द की। प्रकाण्ड विद्वान् और प्रसिद्ध वक्ता होने के कारण उनकी बात मनुष्य के हृदय पर सीधी चोट करती थी। दिगम्वर जैनियो को सूझ गई कि यदि अमृत मुनि सहारनपुर मे कुछ दिन भी ठहर गये तो मूर्ति-पूजको के मन डॉवाडोल हो जायेगे। सम्भव है दिगम्बर जैनियो के मस्तिष्क मे उनकी दलीले इतनी घर कर जायँ कि वे दिगम्बर जैनियों के विश्वास मे ही सन्देह करने लगे। इसलिए हमारे चरित्र-नायक और उनके सहयोगी गौतम मुनि जी से सरस्वती भवन रिक्त करा लेने मे ही उन्होने अपना कल्याण समझा और अभी एक रात्रि भी पूरी न व्यतीत हुई थी कि चार वजे ही उन्हे आदेश मिल गया कि वे सरस्वती भवन से चले जायँ। सकीर्णता के इस प्रदर्शन पर भी मुनि जी को कोई खेद नही हुआ। वे वहाँ से चले आये। दो-चार स्थानक-वासियो ने उनका प्रबन्ध गन्दे नाले पर स्थित धर्मशाला मे कर दिया। पर इससे पूर्व कि उन रिक्त कमरो मे जो मुनिजनो के लिए स्थानक-वासियो ने खोजे थे, दिगम्बर जैनियो की कृपा से कुछ स्त्रियो को ठहरा दिया गया।

अमृत मुनि वहाँ से भी लौट आये और साहस नही त्यागा। वरन् निश्चय किया कि चाहे रात्रि किसी वृक्ष के नीचे ही व्यतीत करनी पडे, वे सहारनपुर मे अपना प्रचार अवश्य करेगे। उनके इस निश्चय की पूर्ति के लिए प्रकृति ने तुरन्त ही साधन जुटा दिये।

एक व्यक्ति ने अनायास ही आकर पूछा, "आप यहाँ कैसे खडे है ?"

"ठहरने के लिए कोई स्थान ही नही मिलता ?"

"पर आप तो रात्रि को सरस्वती भवन मे ठहरे हुए थे, वहाँ से आप लोग क्यो चले आये ?" उक्त व्यक्ति ने प्रश्न किया।

"स्वय नही आये", मुनि जी बोले, "बल्कि हमे निकाल दिया गया है।"

"पर क्यो ?"

"दिगम्वर जैनी भाई हमारे प्रचार से भयभीत हो गये है। वह व्यक्ति स्वय एक दिगम्वर जैनी था। पर मुनिजनो का आदर-सत्कार करना उसका स्वभाव था। वह उन्हे अपने साथ ले गया और कवाडी वाजार तथा मोरगज के वीचोवीच स्थित मकान मे उन्हे ठहरा दिया।

फिर क्या था। एक मास तक मुनि जी मुक्त कण्ठ से प्रवचन करते

रहे। धीरे-धीरे दिगम्बर जैनी और अजैनी जनता उनकी ओर आकर्षित हुई। यहाँ भी अपनी सफलता का जय-घोष करते हुए मुनि जी रुडकी की ओर चल पडे। शान्ति और अहिंसा के राग और प्रवचन बखेरते हुए अमृत मुनि जी रुडकी पहुँच गये।

रुडकी उत्तर प्रदेश का एक प्रसिद्ध नगर है। यह नगर भारत को प्रति वर्ष कितने ही इंजीनियर और ओवरसियर भेंट करता है, और उस समय जबकि भारत नवनिर्माण के पथ पर अग्रसर हो रहा है, इंजीनियरो की देश को बडी आवश्यकता है। इसलिए रुडकी देश की एक महान् सेवा कर रहा है। इससे भी महत्त्वपूर्ण बात यहाँ हाईड्रो-इलेक्ट्रिक का उत्पादन है। और गंगा नहर ने इस नगर को एक नव आकर्षण बख्श दिया है। नहर का एक पुल दर्शनीय है, और जितना दर्शनीय उतना ही आश्चर्यजनक। पानी के सर पर से पानी ले जाना इस पुल की विशेषता है, पुल मे से जल बिन्दु टपकते रहते है और कहते है कि यदि जलबिन्दु टपकना बंद हो जाय तो यह पुल नष्ट हो जायेगा। जो भी हो, रुडकी निशि-दिन उन्नति की ओर जा रहा है। रुडकी पहुँचकर मुनि जी ने उन सभी स्थानो को देखा जो दर्शनीय थे क्योकि वे सदा ही आश्चर्य-जनक और महत्त्वपूर्ण स्थानो एव वस्तुओ को देखने के लिए उत्सुक रहते है।

रुडकी मे जैन सम्प्रदाय के भी प्रतिष्ठित लोग है। मुनि जी के रुडकी प्रवेश से ही उन लोगो मे प्रसन्नता की लहर दौड गई और उनका यथोचित सम्मान हुआ। मुनि जी ने व्याख्यान भी दिये जिनसे उनका जनता पर बहुत प्रभाव हुआ।

रुडकी से मुनि जी ज्वालापुर की ओर चल पडे। यह वह रास्ता है जिस पर कितने ही धर्मपरम्परा के लोगो और सन्यासियो के पैर पडते है पर जैन-साधुओ का इस ओर जाना कदाचित् बिल्कुल ही नही होता।

ज्वालापुर मे भी कितने ही प्रतिष्ठित जैनी रहते है। जब उन्हे मनि जी के आगमन का समाचार मिला वे पुलकित हो उठे। नागरिको ने स्वागत मे नेत्र बिछा दिये और उनके प्रवचनो का समुचित प्रबन्ध भी कर दिया।

अमृत मुनि जी के प्रवचनो का आरम्भ होना था कि चारो ओर उनकी

ख्याति फैल गई। ज्वालापुर साधु-सन्यासियो और धर्मपरायण व्यक्तियो का प्रमुख अड्डा है। यहाँ पोगापथी कितने ही साधु देखे जाते है, परन्तु अमृत मुनि जी की विद्वत्ता और योग्यता ने इतना प्रभाव डाला कि गैर जैनी जनता भी मुक्तकण्ठ से उनकी प्रशसा करने लगी। चर्चा उन विद्वानो तक पहुँची जो साधु-समाज से बिल्कुल भी विश्वास नही करते। गुरुकुल के छात्र, अध्यापक, प्रसिद्ध डाक्टर, आयुर्वेदाचार्य, व्यापारी, युवक, वृद्ध और नारियाँ प्रत्येक वर्ग और प्रत्येक धर्म के अनुयायी मुनि जी के दर्शनार्थ पहुँचे। कितने ही लोगो ने उनसे शास्त्रार्थ किया और सभी ने अनुभव किया कि ज्वालापुर मे प्रथम बार इतने विद्वान् और तत्त्वज्ञानी सन्यासी के दर्शन हुए है। ख्याति एवं कीर्ति केवल ज्वालापुर तक ही सीमित न रही। बात कनखल तक पहुँची और श्री भगवन्त राय जी जैन (स्वर्ग-वासी), जो उन दिनो आयुर्वेद मण्डल के प्रधान तथा प्रसिद्ध एव प्रतिष्ठित व्यक्ति थे, तथा महत करतारदास जी मुनि जी के दर्शन करने आये। महत जी त्याग की प्रतिमूर्ति थे। उन्होने अपना सारा भवन निर्धन लोगो व फकीरो को दे रखा था और अपने पास केवल लकडी का कमण्डल भर रखते थे। दोनो ही कनखल की प्रसिद्ध विभूतियो मे से थे। उन्होने मुनि जी के दर्शन करने के उपरान्त उनसे कनखल पधारने की प्रार्थना की।

मुनि जी ने कहा, "हम तो कल ही कनखल की ओर जा रहे है।"

दोनो सज्जन गद्गद् हो उठे।

दूसरे दिन जब ज्वालापुर से विहार करके वे कनखल की ओर चले, सैकडो व्यक्ति साथ थे और ज्यो ही वे लोग विदा देकर ज्वालापुर की ओर लौटे तथा हमारे चरित्र-नायक ने ज्वालापुर की सीमा पार कर कनखल की सीमा मे प्रवेश किया, उन्हे 'अमृत मुनि की जय' के नारो की तीव्र ध्वनि सुनाई दी। हजारो कण्ठो से निकलने वाले गगनभेदी नारे निकट से निकट होते जा रहे थे। अमृत मुनि जी को पहले तो अपने कानो पर ही विश्वास न हुआ पर ज्यो ही स्वागतकर्ताओ का जलूस निकट आया उन्हे तब विश्वास हुआ कि कनखल निवासी भव्य स्वागत के लिए आ रहे है।

यह भी कोई कम आश्चर्य की बात न थी क्योंकि कनखल एक प्रकार

से साधु-सन्तो, बल्कि साधु-नामधारी महतो की जायदाद है, और ऐसे महतो की जो वैभव की शृ खलाओ मे बन्दी रहने पर भी वैराग्य का आडम्बर करते है, जहाँ जैन धर्मावलम्बी बहुत ही कम सख्या मे बसते है, पर वही की जनता 'अमृत मुनि की जय' के गगनभेदी नारे लगाती जैन मुनि के स्वागतार्थ उमड पडी है। जनता की ओर से किया जाने वाला यह स्वागत इस बात का ज्वलन्त प्रमाण है कि कनखलवासी विद्वान् सन्तो का हार्दिक अभिनन्दन करने मे अन्य नगरो से आगे है। पर मुद्रा मे भगवान् के दर्शन करने वाले, लक्ष्मी के साथ निशि-दिन विलास मे डूबे हुए तथा उच्च अट्टालिकाओ मे वैभव के सुरो पर रास-लीला रचाने वाले तथाकथित साधु-सन्त-महन्त नामधारी लक्ष्मीपति जिस नगर के स्वामी हो, जहाँ प्रतिदिन स्वर्ग के नाम पर और सन्तति-दान के लिए व्यभिचार फूलता-फलता है, उस नगर के निवासी तो सन्यासी और वैरागी नाम से भी ऊब गये होगें, पर हमारे चरित्र-नायक के स्वागतार्थ इतनी बडी भीड का एकत्रित हो जाना उनके हिये मे विद्वत्ता तथा ज्ञान के लिए समुचित आदर तथा सम्मान और उनकी ज्ञान-पिपासा के उग्र-रूप का ही प्रदर्शक है।

हमारे चरित्र-नायक अपने साथी 'गौतम' मुनि के साथ पग बढा रहे है और उनमे भी तेज कदम उठ रहे है उनकी ओर कनखल-वासियो के, जैसे कनखल स्वय उनके चरणो मे आ रहा हो। स्वागतकर्ताओ के हाथो मे पुष्प मालाएँ है, चेहरो पर उत्साह और हर्ष की छटा है, कण्ठ मे जय-जयकार की ध्वनि है, नेत्रो मे अभिनन्दन का भाव छल-छला रहा है। उनमे वृद्धजन है, युवक है और किशोरावस्था के खिलते पुष्प भी। उनमे वे भी है जिन्हे महावीर स्वामी के उपदेशो मे आस्था है, वे भी है जिन्हे महावीर स्वामी जैसे महात्माओ के प्रति आदर भाव है और ऐसे भी है जिन्हे न महावीर स्वामी के आदर्शो और उपदेशो का ही ज्ञान है और न जिन्हे महावीर स्वामी के जीवन का ही कोई ज्ञान। उनमे वे भी है जो समझते है कि भारत माँ की कोख से जन्मे सभी सन्यासियो ने मानव कल्याण के लिए उचित मार्गो का निर्देशन किया है और महावीर स्वामी भी उन्ही मे से एक है और ऐसे भी है कि महावीर स्वामी के उपदेशो को किंचिन्मात्र परवाह नही करते, वरन् अमृत मुनि जी की विद्वत्ता की

प्रशसा से प्रभावित होकर ही चले आये है। महन्त और साधु भी है ऐसे महन्त भी जो गद्दीधारी है, गद्दी के नाम पर किसी स्त्री से अपना सम्बन्ध न जोड कर सभी सुन्दर स्त्रियो की ओर प्यासे नेत्रो से देखते है और गद्दी के नाम पर बडी सम्पत्ति के स्वामी है, जिन्ह धन-दौलत चाहिये और इस भूमि पर ही जिनके लिए स्वर्ग उतर आया है। वे महन्त भगवान् और परलोक सुधारने के नाम पर जनता को बेदर्दी से लूटते है। और वे साधु है जो केवल भगवान् नाम और उसके गुणो को सहस्र वार प्रतिदिन रटते रहने मे ही मानव-जीवन का कल्याण मानते है और ऐसे साधु भी जो ससार से विरक्त हो चुके है पर पेट की ज्वाला शान्त करने के लिए ससार की ओर आशा भरे नेत्रो से देखते भी है।

भिन्न-भिन्न मतो, भिन्न-भिन्न वर्गो और विभिन्न दृष्टिकोण लेकर आये इन स्वागतकर्ताओ का समूह अमृत मुनि जी की ओर बढ रहा है और जब हमारे चरित्र-नायक के पास यह समूह पहुँचता है, जनसमूह का प्रत्येक प्राणी इस प्रयत्न मे दूसरो को पीछे धकेलने लगता है कि उसके हाथ की पुष्प-मालाएँ मुनि जी के गले मे पहले पडे। पुष्पो की बौछार होते ही हमारे चरित्र-नायक तनिक पीछे हटे। जैन-साधुओ के लिए बनाये गये कडे नियमो मे से एक यह भी तो है कि वे पुष्पो का स्पर्श नही करते। जन-समूह पुष्प-वर्षा न करे इसलिए उन्होने दोनो हाथ उठा लिये पुष्प वर्षा रोकने के सकेत के लिए। क्योकि इतनी भीड मे उनकी आवाज तो सबके कानो मे पहुँच नही सकती।

किसी ने सकेत को देखकर कहा, "भाई आहिस्ते से पुष्प गिराओ, धीरे से मालाएँ पहनाओ। तुम लोग पुष्प-वर्षा कर रहे हो या पुष्प-प्रहार कर रहे हो। चोट न लगे।"

दूसरे कई और बोल पडे, "हाँ जी, सभ्यता से काम क्यो नही लेते आप लोग।"

पर वहाँ तो कोई नही सुनता। मुनि जी बेचारे पुष्प-पखडियो को अपने शरीर से गिराने के लिए प्रयत्नशील है, और इस कार्य मे हाथ बटा रहे है स्वर्गीय भगवन्त राय जी जैन पर। पुष्प वर्षा होती ही रही।

भगवन्त राय जी जैन ने तो पहले ही इन लोगो को समझाया था कि मुनि जी पर पुष्प-वर्षा करना ठीक नही है, पर किसी ने उनकी सुनी

भी हो। अब वे बेचारे बडे लज्जित थे। उन्होने मुनि जी से क्षमा याचना की। पर मुनिवर बोल उठे, "इसमे आप का तो दोष नही। यह तो जन-समुदाय की स्वागत-रीति का दोष है। पर श्रद्धालु जनो को भी क्या मालूम होगा कि हम पुष्प-वर्षा को उचित नही मानते। यह सब जानते तो महावीर स्वामी के उपदेशो के प्रचार की इतनी आवश्यकता न होती।"

मुनि जी को जय-जयकार के नारो के बीच कनखल ले जाया गया। नगर मे उनके उपदेशो का विशेष प्रबन्ध किया गया। मुनि जी ने यहाँ देखा कि यहाँ की भव्य अट्टालिकाओ को महन्त जनो ने कुटी का नाम दे रखा है। यहाँ की कुटी ही अट्टालिका है और अट्टालिकाओ को कही डेरा भी कहा जाता है। उनकी समझ मे न आया कि सम्पत्ति और धन-दौलत से जब इतना मोह है तो ये लोग अपने को साधु कह कर साधु-वृत्ति ही को क्यो बदनाम करने पर तुले है।

साधुओं के भी नेत्र खुले

व्याख्यान-माला आरम्भ हुई। सहस्रो श्रोता एकत्रित हो जाते और मुनि जी के प्रवचनो को हृदयगम करने का प्रयास करते। देखते ही देखते कनखल में मुनि जी की विद्वत्ता का फरैरा फहराने लगा। कितने ही साधु-सन्त तथा महन्त भी प्रवचन सुनने के लिए पहुँचने लगे। कितने ही साधु-महन्तो को अपने कृत्यो पर लज्जा आने लगी और वे अनुभव करने लगे कि मुनिवर की शिक्षाओ को यदि अपने जीवन मे न उतारा तो उन्हे अपने को वैरागी घोषित करने के पाप का प्रायश्चित्त किए न बनेगा। कनखल मे स्वामी सर्वेशानन्द और चैतन्य गिरि जी डेरो के स्वामी थे और सम्पत्ति को भोगने मे ही लिप्त थे। मुनि जी के उपदेशो से उनके नेत्रो पर पडी वैभव की चकाचौध छँट गई और उन्होने उपदेशो से ही प्रभावित हो कर अपने डेरे और अन्य सम्पत्ति त्याग दी और काठ के कमण्डल के अतिरिक्त अन्य कुछ भी अपने पास न रखा। सच्चे वैरागी का रूप धारण कर लिया।

मुनि जी की ख्याति हिम-गिरि की उपत्यका में पुष्पो की सुगध की भाँति बस गई और बात बाबा काली कम्बली वाले तक पहुँची। उन्होने कनखल मे ही मुनि जी के पास ऋषिकेश मे दर्शन देने का निमन्त्रण भेजा।

व्याख्यान-माला का अन्तिम अध्याय समाप्त कर मुनि जी ने कनखल से हरिद्वार होते हुए ऋषिकेश की ओर प्रस्थान किया। विदाई के उस दृश्य की मत पूछिए। एक दिन जो लोग मुनि जी की ख्याति सुनकर आदर का भाव लिये स्वागतार्थ आये थे आज असीम श्रद्धा मन मे सजोए उन्हे विदा करने हेतु पहुँचे थे अतएव उस दिन और आज के दृश्य मे आकाश-पाताल का अन्तर था। जनसमूह ने श्रद्धापूर्वक मुनि जी के चरण छुए, जय-जयकार मनाई और भीगे नेत्रो से उन्हे विदा दी।

पन्द्रहवाँ अध्याय

कनखल से ऋषिकेश

ज्ञान और पाण्डित्य का अभूतपूर्व प्रभाव कनखल नगरी पर डालते हुए हमारे चरित्र-नायक ने प्रस्थान किया। उनकी इस यात्रा से यह स्पष्ट होता जा रहा है कि हिन्दुओ के इन तीर्थ-स्थानो पर यदि विद्वान् तथा ज्ञानवान् सन्तो का आगमन हो, तो अन्ध-विश्वास के बादल इन स्थानो से भी छँट सकते है। अपने सहयोगी गौतम मुनि के साथ मुनिवर ऋषिकेश की ओर बढ रहे है। बाबा काली कम्बली वाले की ओर से सत्य-नारायण के मन्दिर मे मुनि जी के भोजनादि का भव्य प्रबन्ध किया गया था। भोजन तथा मिष्ठान्न आदि बनाने वाले ब्राह्मण तथा अन्य कर्मचारी मुनि जी की प्रतीक्षा मे थे। मुनि जी के चरण जब तक मन्दिर मे नही पहुँचे, वे सभी लोग भूखे थे और बाबा काली कम्बली वाले के आदेशानुसार अपने सभी नाना प्रकार के भोजन और मिष्टान्नो को सम्भाले मुनि जी की बाट जोह रहे थे। ज्यो ही मुनि जी ने मन्दिर मे प्रवेश किया, कर्मचारी इधर से उधर उनको भोजन लगाने के लिए दौड पडे, क्योकि उन्हे आदेश मिला था कि मुनि जी का भव्य सत्कार किया जाय, ऐसा सत्कार कि मुनि जी प्रसन्न हो जायँ।

पर मुनिजी के सहयात्री गौतम मुनि जी ने ब्राह्मण को पास बुलाकर पूछा, "यह सारा भण्डार किसके लिए है ?"

"भगवन् ! सारा प्रबन्ध आप ही के निमित्त है।" ब्राह्मण बोला।

"क्या आप लोग प्रतिदिन ऐसा ही भोजन करते है, क्या ऐसे ही मिष्टान्न आप लोग खाते है ?" फिर प्रश्न हुआ।

"नही प्रभु ! हम तो मजदूर ठहरे। रूखी-सूखी रोटी ही मिल जाय तो बहुत है।"

"तो फिर आप लोगो ने हमारे लिए इतना व्यय क्यो किया ?"

"बाबा काली कम्बली वाले के आदेशानुसार उनके धन से ही यह सब कुछ किया गया है महाराज !" ब्राह्मण ने उत्तर दिया।

मुनिवर बोले, "पर ब्राह्मण बन्धु ! हम तो ऐसा आहार स्वीकार नही करते जो विशेषतया हमारे ही निमित्त तैयार किया गया हो। हम तो वही भोजन भिक्षा मे स्वीकार कर सकते है जो गृहस्थी दैनिक रीति से अपने लिए बनाता है। हम यह मालपुआ और मिष्टान्न आदि स्वीकार नही करेगे।"

"पर भगवन् !" ब्राह्मण कहने लगा, "यदि आपने इस भोजन को न लिया तो मालिक हम पर रुष्ट हो जायेगे और सम्भव है हमे अपनी नौकरी से भी हाथ धोना पडे।"

"ब्राह्मण ! हम तो यह कभी स्वीकार कर ही नही सकते।" मुनि जी ने कहा, "तुम्हारे मालिक को हमारे नियमो का ज्ञान नही है, इसलिए वे भी भ्रान्ति का शिकार हुए है। हम स्वय उनसे यह सभी बाते कह देगे।"

"पर मुनिवर ! यदि आपने यह भोजन स्वीकार न किया तो फिर आप खायँगे क्या ?" ब्राह्मण ने पूछा।

"यदि यहाँ उपस्थित कर्मचारियो मे से किसी ने अपने लिए अपना स्वाभाविक भोजन बनाया हो तो उससे हम कुछ जो उससे बचता हो, भिक्षा मे ले सकते है।"

मुनि जी की बात सुनकर ब्राह्मण का मस्तक आदर, सम्मान और श्रद्धा से झुक गया और मुनियो ने रूखा-सूखा भोजन खाकर ही सुख की साँस ली।

सत्यनारायण के मन्दिर मे जो आया और जिसने भी यह बात सुनी वह मुनि जी के दर्शन किये बिना न रहा। क्योकि यह बात तो उन सभी के लिए विस्मयपूर्ण ही थी। क्योंकि उन्होने ऐसे साधु तो बहुत से देखे है जो तीर्थयात्रा के लिए आये राजा-महाराजो और धन्ना सेठो से बडी-बड़ी धनराशियाँ दान मे स्वीकार कर वैभवशाली जीवन बिताने लगते है अथवा प्रतिदिन बीसो चिलमे सुल्फे की उड़ाते है पर ऐसे सन्तो के दर्शन उन्हे कभी-कभी ही होते है जो धन के मोह से रहित है और जो तपस्या को ही अपना एकमात्र उद्देश्य बनाए हुए है।

दर्शनार्थियो ने मुनि जी को प्रवचन करने के लिए बाध्य किया तो

मुनि जी ने भगवान् महावीर के बनाए मानवता के उच्च सिद्धान्तो पर प्रकाश डाला और यह भी बताया कि सच्चा साधु कौन है ? वे बोले

साध्नोति पर साध्य तपश्चर्यादिसाधनै ।
साधकस्तत्त्वमर्मज्ञ "साधु"रित्यभिधीयते ॥

अर्थात् ! जो तपश्चर्यादि साधनो से परम साध्य की साधना करता है वही तत्व-मर्मज्ञ साधक साधु कहलाता है ।

और

क्षुत्तृट्शीतोष्ण दुर्दशमशकाचैल्यकाऽरति ।
नारीचर्या निषद्याख्य-शय्याऽऽक्रोशवधानि च ॥
याचनालाभ सरोग-तृण स्पर्शमलान्यपि ।
सुसत्कार-पुरस्कार-प्रज्ञाऽज्ञानानि दर्शनम् ॥
एतेषा परिसोढारो वोढारो गुणसहते ।
शास्त्रावगाहनासक्ता साधवो मुनिसत्तम ॥

अर्थात्—हे मुनिसत्तम ! क्षुधा, तृषा, शीत, उष्ण, दशमशक, अचेल, अरति, स्त्री, चर्या, निषद्या, शय्या, आक्रोश, वध, याचना, अलाभ, रोग, तृण स्पर्श मल, सत्कार पुरस्कार, प्रज्ञा, अज्ञान, दर्शन इन २२ परिषहो के सहन करने वाले और महान् गुणो के धारी परम शास्त्राभ्यासी मुनिराज होते है ।

व्याख्यान की समाप्ति पर लोगो ने अनेको प्रश्न पूछे जिनका उन्होने सन्तोषजनक उत्तर दिया ।

तदुपरान्त वे ऋषिकेश के लिए चल पडे और वहाँ पहुँचकर बाबा काली कम्बली वाले के अतिथि विश्रामालय मे ठहरे और ऋषिकेश का भ्रमण किया । मन्दिरो और साधुओ की कुटियाएँ देखी । प्रसिद्ध गीता-भवन मे गये और उसका निरीक्षण कर उनके मुख से निकला, "अति सुन्दर ! पर यदि लोग गीता-भवन की दीवारो पर अकित श्लोको को अपने हृदय पटल पर अकित कर ले तभी काम चलेगा ।"

पहाडियो की चोटियो तक हमारे चरित्र-नायक पहुँचे । उन्होने सुना था कि पहाडो की गुफाओ मे कितने ही पहुँचे हुए साधु रहते है । वे उनके दर्शन करने को लालायित थे इसलिए प्रत्येक कन्दरा, प्रत्येक गुफा और जहाँ तक वे जा सके वहाँ तक की प्रत्येक चोटी को उन्होने छान मारा ।

प्राकृतिक सौंदर्य और सुरम्य दृश्य देखते-देखते वे कभी-कभी ऊब जाते तो घण्टो भागीरथी के तट पर बैठकर उसके पवित्र जल की ओर ही निहारते रहते ।

पाषाणों से ऊब उठे

आखिर एक दिन उनका मन पाषाणो की चोटियो से ऊब गया । वे उठे और वापिस चल खडे हुए । हरिद्वार के प्रत्येक मन्दिर, धर्मशाला आदि को देखा । प्रत्येक स्थान के बारे मे लोक-कथाओ और दतकथाओ को सुना, साधु सन्तो से मिले। धर्मपरायण जनता को उपदेश किये और फिर पजाब की ओर वापिस चले।

पत्थरो की छातियो से मुनि जी के नगे पैर धूलि मे उतर आये । प्रवचन करते, लोगो को सच्ची साधु-वृत्ति का ज्ञान देते, मानव-धर्म का प्रचार करते और शान्ति एव अहिंसा का मन्त्र फूँकते मुनिवर अपने पथ पर चले जा रहे थे। जहाँ पहुँचते, वही अपने ज्ञान की कीर्ति बखेर देते । सैकडो लोग भक्त वन गये और मुनि जी चलते ही रहे । गन्नौर आकर जनता की प्रार्थना पर इस वर्ष का चातुर्मास व्यतीत करने लगे । मुनि जी का चतुर्मास उनके प्रत्येक वर्प का एक प्रमुख काल होता है, जब उन का स्वाध्याय, तपस्या और उपदेशो का कार्यक्रम वढ जाता है और उन्हे किंचित् मात्र अवकाश नही मिलता । चार मास मे ही गन्नौर के सैकडो नरनारी उनके शिष्य हो गये । पर वे कहते रहे, "मुझे शिष्यो की भीड नही चाहिये । जगत् मे मै तो सच्चे मानव को देखने के लिए उतावला हो रहा हूँ। जो सच्चा मानव है, जो मानवता के सभी नियमो को अपने जीवन मे उतार चुका है वह मेरा प्रिय है, मेरा मित्र और भाई है। जो मानव धर्म को नही समझता और जो सही अर्थो मे मानव की श्रेणी मे नही आता, उससे मेरा कोई सम्बन्ध नही हो सकता ।"

चातुर्मास समाप्त होते ही वे सोनीपत चले गये और वहाँ से दिल्ली की ओर चल पडे ।

दिल्ली हमारे चरित्र-नायक के जीवन-इतिहास मे एक विशेप स्थान रखती है । दीक्षा-सस्कार से लेकर "गौतम गीता' की रचना और ओमीग मुनि जैसे सहयोगी का मिलन मुनि जी को सदा ही स्मरण रहते है । अभी वे सब्जी मण्डी के घण्टाघर से कुछ दूर ही थे कि दिल्ली के प्रति-

ष्ठित व सम्मानित जैनियो का एक पच-मण्डल उन्हे मिला और उन्हे बताया कि दिल्ली मे उन्हे ठहरने के लिए कोई जैन स्थानक नही मिलेगा। मुनि जी बोले, "हम यहाँ, भगवान् महावीर के अमर उपदेशो और मानव धर्म के अखण्ड सिद्धान्तो के प्रचारार्थ आये है और विना अपना कर्त्तव्य पूर्ण किये हम वापिस नही जायेगे। यदि कोई भी ठहरने नही देगा तो दिन मे प्रचार करके रात्रि को किसी वृक्ष के नीचे विश्राम कर लिया करेगे। कदाचित् जैन-सभा हमसे वृक्षो की छाया तो नही छीन सकेगी?"

पच-मण्डल ने हाथ जोडकर कहा, "पर मुनिवर! जैन-सभा के निश्चयानुसार जैन घरो से आपको भिक्षा भी नही मिलेगी?"

मुनि जी के अधरो पर मुस्कान खेल गई। "पर आहार तो सभी इन्सान करते है जैनी भी गैर-जैनी भी। मै तो सम्प्रदाय के वन्धन तोड चुका हूँ और यदि भिक्षा भी नही मिली तो जब तक तन साथ देगा, भूखा भी प्रचार करूँगा। किन्तु मेरा विश्वास है कि दिल्ली मानवता-रहित नही है। सत्य के लिए कुछ जैनियो के द्वार भले ही वन्द हो जायँ पर यहाँ तो लाखो गैर-जैनी इन्सान भी है। मुझे घृणा के उपासको के आश्रय की आवश्यकता नही है।"

प्रतिनिधि-मण्डल लज्जित होकर चला गया और मुनिवर आगे वढ गये। गोरा कोठी, सब्जी मण्डी, के प्रमुख स्वामी सेठ वगेश्वर नाथ जी ने उनका हार्दिक स्वागत किया और उन्हे अपनी कोठी मे ले गये।

मुनि जी ने प्रचार कार्य आरम्भ कर दिया। वे अट्टालिकाओ की गलियो से निकल कर मजदूरो और श्रमजीवियो के मुहल्लो मे पहुँचे। कुछ युवको ने ध्वनि-विस्तारक यन्त्र और मच आदि का प्रवन्ध अपने हाथ मे ले लिया और वे निर्धन जनता को अपने उपदेश सुनाने लगे। अट्टालिकाओ को छोड उन्होने धर्मशालाओं मे विश्राम करना आरम्भ कर दिया। कभी अहीरो की धर्मशाला मे ठहरे तो कभी किसी दूसरी मे। और जैन-सभा द्वारा लगाये गये प्रतिवन्धो के वावजूद जैन धर्मावलम्वी उनकी ओर आकर्षित हुए विना न रह सके।

मुनि जी के अलौकिक गुणो, घोर तपस्या और विद्वत्ता से प्रभावित होकर शनै शनै भारी जैन-समुदाय उनका भक्त हो गया और दिल्ली

मे मुनि जी की विद्वत्ता का इतना रग चढा कि जैन-सभा के अधिकारी वर्ग को अपनी असफलता स्वीकार ही करनी पडी। सभी साधारण जन चकित थे कि जब मुनि जी महावीर स्वामी के बताये गये मार्ग को ही प्रशस्त करने मे तल्लीन है, जब शान्ति, अहिसा और सत्य ही उनके प्रचार के आधार है तब जैन-सभा उनके विरुद्ध प्रचार मे क्यो लगी है?

एकता के लिए

मुहल्ले-मुहल्ले मे मानव धर्म का प्रचार चल रहा है। अमृत मुनि जी को फुरसत नही है, पजाब एस० एस० जैन-सभा के विषाक्त प्रचार की ओर दृष्टिपात करने की। उन्ही दिनो समाचार मिला कि स्थानकवासी जैनियो मे एकता की भावना जागृत हुई है। स्थानकवासी जैनी भी तो कितने ही सम्प्रदायो मे विभाजित है। उन्हे होश आया सारे सम्प्रदायो को मिला कर एक सघ बनाने का। और इसके लिए सभी सम्प्रदायो के प्रतिनिधियो का अखिल भारतीय सम्मेलन सादडी (मारवाड) मे आयोजित किये जाने की घोषणा हो गई। सम्प्रदायो पर विचार होने लगा तो अमृत मुनि जी के साधु-समाज का भी प्रश्न उठा। मुनि जी से कहा गया कि आप भी उक्त सम्मेलन मे भाग लें। अभी वे कोई उत्तर नही दे पाये थे कि पजाब एस० एस० जैन सभा ने अपनी रिपोर्ट प्रकाशित करके घोषणा की कि यदि सादडी सम्मेलन मे जैन-समाज पजाब से पृथक् रहे हुए मुनियो को भी निमन्त्रित किया गया तो पजाब एस० एस० जैन-सभा सम्मेलन को कोई सहयोग नही दे सकेगी।

सम्मेलन मे शामिल होने का परामर्श देने वालो से मुनि जी बोले, "मै एकता चाहता हूँ। सम्प्रदायो के गोरख-धधो का मै विरोधी हूँ। यदि उस सम्मेलन मे मेरे जाने से एक प्रान्त शामिल नही होता तो मेरा व्यक्तित्व एकता मे बाधक हो जाता है। इसलिए मै वहाँ नही जाऊँगा।" अमृत मुनि जी सम्मेलन मे नही गये। पजाब एस० एस० जैन-सभा ने उसे अपनी विजय समझी होगी पर यह विजय थी अमृत मुनि जी की, एकता की भावना की हठवादिता पर। उस सम्मेलन मे सब सम्प्रदायो को मिला कर एक 'श्रमण सघ' बनाया गया।

दिल्ली मे अमृत मुनि जी की वाणी गूँज उठी और मानव धर्म के नौ अखण्ड सिद्धान्तो का अभूतपूर्व प्रचार हुआ।

दिल्ली प्रवास की यह एक खूबी और भी थी कि मुनि अमृतचन्द्र जी ने जैनियो मे विद्यमान दिगम्बर एव स्थानकवासियो के भेदभाव को भी क्रियात्मक रूप मे मिटाने का प्रयास किया। दिगम्बर आचार्य सूर्य-सागर जी उन दिनो दिल्ली मे ही विराजमान थे। स्थानकवासी मुनि होते हुए भी मुनि अमृतचन्द्र जी ने सूर्यसागर जी के साथ कई बार प्रवचन किये। जिससे जैन-समुदाय मे चलने वाला भेदभाव भी जनता के मस्तिष्क से दूर होने लगा।

दो मास पश्चात् सारी दिल्ली एक प्रकार से उनके चरणो मे नत-मस्तक हो गई। पर यह सत्य की विजय थी। विजय-श्री की पताका लहरा कर मुनि जी ने दिल्ली से विहार किया। विदाई समारोह पर दिल्ली के ११० प्रतिष्ठित जैनियो ने जैन-समाज की ओर से अभिनन्दन पत्र भेट किया और सैकडो व्यक्ति दिल्ली की सीमा से बाहर तक मुनि जी के साथ आये। जब लोग वापिस जाने लगे तो उनके नेत्र छलछला आये और उन्होने मुनिदेव से फिर शीघ्र ही दर्शन देने की प्रार्थना की।

यमुना की कलकल करती लहरे आज कुछ व्याकुल है, जैसे उनके हिये में कोई टीस हो, वह चचलपन और वह चुहल आज उनमे प्रगट नही होती, गम्भीर पर व्याकुल। बगुले और सारस जो कलतक यमुना तीर पर अपने श्वेत पख फड-फडा कर तरगित लहरो के मस्त राग पर रत लगा रहे थे, आज कुछ उदास है, टटीरी आज तडप रही है। चारो ओर उदासीनता है, सारा वातावरण ही व्यथित है।

पर इन सभी को व्याकुल छोड कर हमारे चरित्र-नायक बढ रहे है अपने पथ पर, अपनी यात्रा पर। यह है वह यात्रा जो कब समाप्त होगी, कोई नही जानता, क्योकि मुनि जी के हिये मे विद्यमान मानवता सारे जगत् मे अपनी विजय-पताका फहराने के लिए रुकरपबद्ध है, और इसी लिए वह मुनि जी के पैरो मे अपने पुनीत सघर्ष के लिए जगती के रण-क्षेत्र मे इधर से उधर दौड रही है। रास्ते मे पडाव आ सकते है पर यात्रा यो समाप्त होने वाली नही है, क्योकि अभी तो लक्ष्य दूर है।

दिल्ली पीछे छूट चुकी है और ज्यो-ज्यो मुनि जी बढते जाते है, दिल्ली दूर रहती जाती है। जब मानव-जगत् के शोषणकर अधिनियमो की छत्र-छाया म लक्ष्मीपति अपने सत्कर्मो के भोग के नाम पर भव्य

भवनो मे आनन्दरत है, प्रकृति-पुत्र रेत और ककडो पर पैर रखते हुए चिन्तन मे लीन पथ-भ्रष्ट मानव को जागृत करने के लिए जा रहे है। एक ओर उन्हे मनुष्य मे व्याप्त क्रोध, मोह, लोभ आदि दुर्गुणो के रोगो को अपने ज्ञान-दान की अग्नि से भस्म करना पडता है और दूसरी ओर अपने पथ पर आते विरोधो के तूफानो से टकराना पडता है। और इस सब के साथ-साथ उन्हे अपनी तपस्या को भी जारी रखना होता है। इतना महान् कार्य और कृतघ्न मनुष्य की क्रूरता के कारण उनके स्वास्थ्य की शिथिलता। समझ मे नही आता, प्रकृति-पुत्र कैसे सब कुछ करने मे समर्थ होते है। जब से उन्हे विष दिया गया है तभी से वे जवानी मे ही वृद्धावस्था की-सी कमजोरी के शिकार हो गये है। पर चेहरे पर तेज उनकी ब्रह्मचर्य शक्ति को अबतक प्रशस्त किये है। रोग भले ही उनके तन का पीछा न छोडे पर मन और मस्तिष्क पर उनका कोई प्रभाव नही होता। साहस उनमे बला का है। जिस काम को करने के लिए पग उठाते है, ससार की कोई भी शक्ति उन्हे उसे पूर्ण किये बिना नही रोक पाती।

गाँधी और अमृत मुनि

दो मास तक प्रचार कार्य मे लगे रहने के कारण उनके स्वास्थ्य पर बहुत ही प्रभाव हुआ है, पर वे बिना किसी प्रकार की चिन्ता और शिथिलता के यात्रा पर जा रहे है। एक दिन महात्मा गाँधी भी इसी प्रकार घृणा की ज्वाला मे भस्म होती मानवता को बचाने के लिए पैदल निकल पडे थे। पर गाँधी जी की पैदल यात्रा को राजनीति के क्षेत्र मे उपलब्ध साधनो ने राष्ट्रव्यापी महत्त्व दे दिया था। सारे देश मे पत्रो और दलो ने उसका प्रचार किया था। पर सन्त अमृतचन्द्र जी है कि नगे पैरो हजारो मील की यात्रा करते है, पर कही ढोल नही पिटवाते, उनकी यात्रा की रिपोर्ट पत्रो मे मोटे-मोटे अक्षरो मे नही छपती। क्योकि वे किसी की सत्ता के लिए संघर्षरत नही हैं, किसी दल के नेता नही है और जिसकी सत्ता के लिए सघर्षरत है, वह है लावारिस और अनाथ। इस अनाथ को सनाथ करने के लिए ही मुनि जी ने बीडा उठाया है! मानवता अनाथ ही तो है, आज इसकी परवाह किसे है। मानवता के

लिए कितने पत्र प्रकाशित होते है ? आज तो मानवता का नारो के लिए प्रयोग भले ही कर लिया जाय, उसे प्रत्येक मनुष्य के जीवन मे उतारने के लिए कार्य करने वालो को सत्ता की चकाचौंध मे भटके हुए लोग भला कितना महत्त्व देते है ? अमृत मुनि भी यदि किसी राजनैतिक उद्देश्य को लेकर निकले होते तो उनकी भी देश मे धूम होती। पर शान्ति के पुजारी अमृत मुनि शान्ति से अपने महान् उद्देश्य की प्राप्ति के लिए तपस्या कर रहे है। उन्हे न अपने विज्ञापन की आवश्यकता है और न अपनी धूम की। ऊँचाखेडा, नरेला, सोनीपत,गन्नौर, सम्भालका, पानीपत घरौण्डा और करनाल आदि अनेक ग्रामो तथा शहरो मे धर्म-प्रचार करते हुए मुनि जी कुरुक्षेत्र पधारे ।

जहाँ गीता का जन्म हुआ

यह कुरुक्षेत्र है । भारत के प्राचीन इतिहास का एक प्रमुख अध्याय इस स्थान से सम्बन्धित है । कुरुक्षेत्र का भारतीय सभ्यता और सस्कृति के क्षेत्र मे भी एक ऐतिहासिक स्थान है । और हिन्दू-सभ्यता तथा सस्कृति की एक हृदयस्पर्शी घटना इस नगर से सम्बन्धित है। महाभारत का युद्ध, कौरवो पाण्डवो का प्रसिद्ध एव ऐतिहासिक युद्ध, इसी क्षेत्र मे हुआ था और यही पर अर्जुन ने यह कहकर तीर-कमान डाल दिया था कि---

दृष्ट्वेम स्वजनं कृष्ण युयुत्सु समुपस्थितम् ।
सीदन्ति मम गात्राणि मुख च परिशुष्यति ।।
वेपथुश्च शरीरे मे रोमहर्षश्च जायते ।

हे कृष्ण ! इस युद्ध की इच्छा वाले खडे हुए स्वजन समुदाय को देखकर मेरे अग शिथिल हुए जाते है और मुख भी सूखा जाता है और मेरे शरीर मे कम्प तथा रोमाच होता है ।

न काङक्षे विजय कृष्ण न च राज्य सुखानि च ।

और हे कृष्ण ! मै विजय को नही चाहता, और राज्य तथा सुखो को भी नही चाहता ।

येषामर्थे काङिक्षत नो राज्य भोगा सुखानि च ।
त इमेऽवस्थिता युद्धे प्राणास्त्यक्त्वा धनानि च ।।

क्योकि हमे जिनके लिए राज्य, भोग और सुखादिक इच्छित है वे ही ये सब धन और जीवन की आशा को त्याग कर युद्ध मे खडे है।

आचार्याः पितरः पुत्रास्तथैव च पितामहाः।
मातुलाः श्वशुराः पौत्राः श्यालाः संबन्धिनस्तथा ॥

जो कि, गुरुजन, ताऊ, चाचे, लडके और वैसे ही दादा, मामा, ससुर, पोते, साले तथा और भी सम्बन्धी लोग है।

अर्जुन का यह निराशाजनक उत्तर सुनकर श्रीकृष्ण ने, जो उनके सारथि थे, अर्जुन को युद्ध को तैयार करने के लिए एक उपदेश दिया जो भगवद्गीता के रूप मे आज भी अमर है और जिसे बडे आदर की दृष्टि से देखा जाता है।

इसलिए कुरुक्षेत्र तीर्थ बन गया है। जिसकी भूमि मे हमारे पूर्वजो का रक्त बहा था। भारत के महान योद्धाओ के रक्त की निधि को यह भूमि आज तक अपने मे समाये हुए है।

इसी पुण्य भूमि मे उस वर्ष सूर्य-ग्रहण का मेला था। जो सूर्य-ग्रहण होने पर कभी-कभी ही लगता है और इसीलिए हिन्दू जनता की दृष्टि मे बहुत ही पुण्य पर्व माना जाता है। मुक्ति और मोक्ष की इच्छुक जनता लाखो की सख्या मे उस अवसर पर एकत्रित होती है। कुरुक्षेत्र के इस मेले पर भी लाखो नर-नारी भारत के कोने-कोने से एकत्रित हुए थे। सूर्य-ग्रहण के अवसर पर हमारे चरित्र-नायक भी उस मेले मे पहुँचे। जैन मुनि प्राय ऐसे मेलो से दूर ही रहते है। परन्तु हमारे चरित्र-नायक जो अपने स्वर्णिम असूलो का प्रचार करना अपना सबसे प्रमुख कर्तव्य मानते है, उस मेले मे प्रचारार्थ पहुँच ही गये क्योकि वे मानते है कि लाखो की सख्या मे एकत्रित होने वाली जनता को यदि अपने प्रचार से वचित रखा जायेगा तो भोली जनता को अपने मनमोहक नारो और लच्छेदार भाषणो से अपनी ओर आकर्षित करने वाले लोग अपनी झूठी कल्पनाओ मे फाँसकर पथभ्रष्ट करने का प्रयत्न करेगे इसलिये यह आवश्यक है कि इन मेलो मे पहुँच कर भगवान् महावीर के शान्ति, अहिसा और सत्य के उपदेशो को जनता तक पहुँचाया जाय। मुनि जी ने कुरुक्षेत्र के अल्पसख्यक जैन समुदाय से कहकर मेले मे अपना एक छोटा-सा कैम्प लगवा लिया। पर चूँकि उक्त कैम्प बहुत ही छोटा था और लाखो की सख्या मे आई जनता

मे उस अकेले कैम्प से अपना प्रचार नही किया जा सकता था इसलिए वे अपने सहयोगी गौतम मुनि जी के साथ मेले में निकल जाते और स्थान-स्थान पर रुक कर भाषण करते।

इस प्रकार सारे मेले मे वे प्रचार करने मे सफल हो गये। वे अपने प्रचार मे इस बात पर विशेष जोर देते कि कुरुक्षेत्र की इस पवित्र भूमि मे आप अपने किसी एक अवगुण से मुक्ति प्राप्त कर ले, आप मास-भक्षण और मद्यपान इन दो मे से जो भी आपकी आदत बन गया है, उसे अवश्य ही त्याग दे। उन्होने अपने पूर्वनिश्चित कार्यक्रम के अनुसार इन दो बातो को ही अपना लक्ष्य बनाया और जुट पडे जनता को अपनी ओर आकर्षित करके इन अवगुणो से उसका पीछा छुडाने मे। मेले के निकट ही कुछ लोग मछलियाँ पकडते और उन्हे भून-भून कर खाते थे। अमृत मुनि जी और उनके सहयोगी गौतम मुनि जी ने वहाँ धरना दे दिया। 'कुरुक्षेत्र के इस पवित्र स्थान से यह कलक समाप्त करो,' उनकी वाणी गूंज उठी। धरना देना था और साथ ही मे उन्हे अपने उपदेशो से सुपथ पर लाने के लिए भी परिश्रम करना था कि वे मासाहारी भी अपने उस कुकृत्य को बन्द कर देने पर विवश हो गए।

लाखो नर-नारियो की भीड और प्रचार मे लगे है केवल दो मुनि। यह असीम साहस की ही बात तो है। उस मेले मे कितने ही धर्म पथियो के प्रचार कैम्प लगे थे पर सभी अपने-अपने धर्म के गुणो और अन्य धर्मो के अवगुणो के बखान मे लगे थे। किसी को वहाँ चलते कुकृत्यो की ओर ध्यान देने की आवश्यकता ही महसूस नही होती थी। पर अमृत मुनि जी थे कि लोगो से बात-चीत कर उन्हे सुपथ पर लाने, माँस और मदिरा का त्याग करने के लिए तैयार करते और शान्ति तथा अहिंसा का अमृत-जाम पिलाते।

मुनि जी ने देखा कि कुरुक्षेत्र के तालाब मे लगभग ५० हजार नारियाँ बिल्कुल अर्धनग्न अवस्था मे कीचड में स्नान कर रही है और वासना के नशे मे चूर प्यासी नजरो का निशाना बन रही है। उनके मुख से निकल पडा, "ओह ! यह दुर्दशा, अधविश्वास का इतना काला परदा, मनुष्य की यह अधोगति।"

निकट मे ही आर्यसमाज का कैम्प लगा था। एक दिन घरौंडा

गुरुकुल के आचार्य स्वामी परमेश्वरानन्द जी भाषण कर रहे थे। वे एक ही साँस मे आर्यसमाज के अतिरिक्त अन्य सभी मतो का खण्डन करते जाते थे और वे जैन-धर्म पर भी बरस पड़े। जैन मुनियो को भी उन्होने खरी-खरी सुनाईं। खण्डन करते समय वे कुछ ऐसे शब्द कह बैठे जो सत्य से कोसो दूर थे। मुनि जी को बडा विचार हुआ। स्वामी कहे जाने वाले विद्वान् पुरुष ने ऐसी बाते कह डाली जो कोरा झूठ ही कहा जा सकता है। मुनि जी ने निश्चय कर लिया कि वे स्वामी परमेश्वरानन्द जी से इस बारे मे अवश्य वार्ता करेंगे। कोई गैर जिम्मेदार व्यक्ति ऐसा कह देता तो कदाचित् उन्हे इतना दुख न होता, पर कहने वाले तो थे एक साधु श्रेणी के भद्र पुरुष। भाषण के उपरान्त ही स्वामी जी मुनि जी के कैम्प की ओर से निकल रहे थे। मुनि जी ने रोककर उनसे उस मिथ्यारोप का कारण पूछा और बात चल निकली। वाद-विवाद तक नौबत आ गई और जैन धर्म तथा आर्यसमाज के विषय पर शास्त्रार्थ होना तय हो गया।

शास्त्रार्थ के बीच ही परमेश्वरानन्द जी कह बैठे, "आप लोग ठहरे अनीश्वरवादी जैनी, आपका इस मेले पर, ईश्वरवादियो के पर्व पर आने का आखिर प्रयोजन क्या है। आपको तो यहाँ पहुँचना भी नही चाहिये था।"

शास्त्रार्थ के बीच बात उनके मुँह से निकल ही गई तो उसका उत्तर भी मिलना ही चाहिए था। जैसी बात उसका वैसा ही उत्तर देने के लिए मुनि जी बोले, "श्रीमन्! यह सनातनियो का मेला, सनातनी जनता का तीर्थ, सनातन धर्म की ऐतिहासिक भूमि, आपका इस भूमि पर क्या काम? आपको तो सनातन धर्म का खण्डन करने की यहाँ आज्ञा भी नही मिलनी चाहिये थी।"

उपस्थित भीड मे सनातनधर्मी जनता की सख्या अधिक थी। मुनि जी के मुँह से बात निकलनी थी कि जनता बोल उठी, "हाँ-हाँ, आप आये क्यो है इस मेले मे, हमारे ही मेले मे हमारी ही ऐतिहासिक पवित्र-भूमि मे, हमारा ही खण्डन करने का आपको साहस कैसे हुआ?"

बात बिगडती देखकर कुछ सनातनी और कुछ आर्यसमाजी बीच मे

पड गये और स्वामी जी ने अपने मुख से निकले शब्दो को वापिस लेकर राड मिटाई ।

सत्याग्रह पर

मुनि जी दिन मे अपने प्रचार-कैम्प और मेले मे प्रचार मे लगे रहते और रात्रि को नगर मे जाकर विश्राम करते । उस दिन वे अकेले ही भ्रमणार्थ निकल पड़े और गुदडी वाले बावा की धर्मशाला की ओर जा पहुँचे । वहाँ क्या देखते है कि सात सौ, आठ सौ साधु, लँगोट बन्द, केश बढाये और शरीर मे धूल मले, धूनी लगाये वहाँ एकत्रित है। सभी के मुँह मे चिलम लगी है, सुल्फा पिया जा रहा है । वायु-मण्डल मे सुल्फे का विषाक्त और दुर्गन्धपूर्ण धुआँ बस गया है । मुनि जी ने देखा तो वे साधु-सन्तो के इस रूप को देखकर बडे दु खित हुए । "ये है जगद्गुरु ! स्वयं नशे के दास, जनता को क्या मुक्ति-पथ दिखलायेंगे ?"

उन्होने देखा, एक १३–१४ वर्ष का युवक साधु गौरवर्ण, सुल्फा चचोड रहा है। मुनि जी उसकी दशा देखकर द्रवित हो गये। उनके मन मे उस युवक के बरबाद होते जीवन के प्रति करुणा जागृत हो गई ।

मुनि जी ने पूछा, "कहाँ तक पढे हो ?"

वह बोला, "बाबा ! पढने की क्या जरूरत ?"

उसका गुरु बोला, "अरे बाबा ! साधुओ के लिए पढना-वढना बेकार की बात है । हम लोग तो भगवान् की तपस्या मे रम गये है, पढना-लिखना गृहस्थियो के लिए है। इस साधु से क्यो पूछते हो। अपना रास्ता लो।"

मुनि जी ने पूछा, "तो क्या यह आपका ही शिष्य है ?"

वह साधु बोला, "हाँ-हाँ, बाबा ! इसके माँ-बाप के घर में सन्तान नही थी । एक बार उन्होने बाबा को प्रसन्न करके सतान का वरदान माँग लिया और अपनी सन्तान मे से एक यह पुत्र हमारे चरणो मे चढा दिया । अब यह हमारे पास है, हम इसे दीक्षा दे रहे है ।"

"महाराज ! आप तो इसे भली दीक्षा दे रहे है", मुनिवर ने कहा, "तेरह-चौदह वर्ष की आयु मे इसे सुल्फे का रोग लगा दिया । यह तो इसके साथ अन्याय हुआ ।"

वह साधु कुछ क्रुद्ध हो गया। कहने लगा, "जाओ अपना रास्ता नापो। तुम क्या जानो हमारे पथ को।"

मुनिवर ने साधुओ के इस जमघट मे ही खडे होकर सकल्प लिया कि वे जब तक कम-से-कम ५० साधुओ से सुल्फे का परित्याग नही करा देगे, अन्न-जल ग्रहण नही करेगे।

और वही बीच ही मे सकल्प करके बैठ गये। सुल्फेबाजो मे से उनकी किसी ने परवाह न की। पर वे बैठे रहे। अन्तत उनमे से एक शिक्षित साधु ने पूछा, "आपने किसलिए धरना दिया है।"

मुनि जी ने कहा, "मैने सकल्प लिया है ५० साधुओ से सुल्फे के परित्याग कराने का और जब तक मेरी प्रतिज्ञा पूर्ण नही होगी मै अन्न-जल ग्रहण नही करूँगा।"

"किन्तु आपने एक बडे दुर्लभ पथ पर पग उठाया है। इनका जीवन सुल्फे से उठने वाले धुएँ मे खोकर रह गया है। इनसे सुल्फा छुटाना बहुत ही कठिन बात है।" वह साधु बोला।

"मुझे चाहे इस प्रतिज्ञा के लिए प्राण भी देने पडे, पर सकल्प किया है तो उसे पूर्ण करूँगा।"

मुनिवर की बात सुनकर साधु सोच मे पड गया। उसने सारे साधुओं को आवाज लगाई। उन्हे अपने चारो ओर एकत्र करके वह बोला, "यह बडी लज्जा की बात होगी, यदि एक साधु हम सभी साधुओ के किसी दुर्व्यसन को छुडाने के लिये अपने प्राण त्याग दे, बल्कि यह भी लज्जा की ही बात है कि एक साधु हम लोगो के बीच अन्न-जल त्याग करके हमारे ही सुधार के लिए सत्याग्रह करे बैठा है और हम लोग सुल्फे मे खोये हुए है।"

सभी के चेहरो पर शून्यता थी। वह गरज कर बोला, "यदि हम अपनी हठ के लिए, अपने एक दुर्व्यसन मे लिप्त रहने के लिए, एक साधु के प्राण ले लेगे तो ससार हमे धिक्कारेगा। जिन लोगो के मुँह से हमारे लिए सम्मानसूचक शब्द निकलते है, फिर गालियाँ निकलेगी। क्या हमारे बीच ऐसे सच्चे साधु नही है जो सुल्फे का मोह त्याग सके। यह एक साधु है जो दूसरे साधुओ के सुधार मे प्राणो की बाजी लगाये बैठा है और

दूसरी ओर हम है जो अपने दुर्गुणो से चिपटे हुए है। हम ससार को त्याग सकते है तो क्या सुल्फे को नही त्याग सकते ?"

दो साधु सामने आये और उन्होने अपनी चिलम और सुल्फे की पोटली फेक कर शपथ ली कि वे भविष्य मे सुल्फा नही पियेगे।

फिर क्या था, कितने ही साधु निकल पडे सुल्फा फेकने के लिए। इस प्रकार ५० के बजाय ६५ साधुओ ने उसी समय सुल्फे का परित्याग कर दिया।

इसी प्रकार अमृत मुनि जी ने मेले मे कितने ही व्यक्तियो से माँस और मदिरा का परित्याग कराया और हजारो व्यक्तियो को प्रतिदिन महावीर वाणी का बोध कराया। जब अन्य धर्मावलम्बी प्रचारको ने अमृत मुनि जी का कार्य देखा, वे लज्जित हो गये।

एक दिन सरकार के प्रचार-विभाग की ओर से मुनि जी को प्रचार-कैम्प मे निमन्त्रित किया गया। सरकार के प्रचार-विभाग का प्रबन्ध शानदार था। सारे मेले को ध्वनि-विस्तारक यन्त्र के द्वारा अपने कैम्प की ओर उन्होने आकर्षित कर लिया था। सैकडो स्थानो पर भोंपू लगे थे, जिनसे राजकीय प्रचार कैम्प के कार्यक्रम को लोग अपने विश्राम-स्थलो पर ही सुन सकते थे।

मुनि जी ने अपने भाषण मे समस्त दुर्व्यसनो के अवगुणो और दुष्प्रभावो पर प्रकाश डाला। जनता से दुर्व्यसनो का परित्याग करके देश के नवनिर्माण में भाग लेने की अपील की।

मेले की समाप्ति पर मुनि जी कैथल की ओर विहार कर गए।

सोलहवाँ अध्याय

भटिण्डा की ओर

कैथल मे धर्मप्रचार करते हुए कितने ही दिन बीत गये और देखते-ही-देखते वीरजयन्ती निकट आ गई। जनता ने मुनि जी को वीरजयन्ती के अवसर पर कैथल मे ही विराजमान रहने को विवश कर दिया। वीरजयन्ती आई तो सारा नगर गूँज उठा। अमृत मुनि जी के क्रान्तिकारी प्रवचन सुनकर लोग अपने मन को टटोलने लगे कि वे कहाँ तक महावीर भगवान् की शिक्षाओ को अपने जीवन मे उतार पाये है। कितने ही नागरिको ने उस दिन शपथ ली कि वे महावीर भगवान् के उपदेशो का अक्षरशः पालन करेगे।

वीर-जयन्ती समाप्त हुई तो मुनि जी ने विहार का कार्यक्रम बना लिया, पर भक्तजन कब अपने गुरुदेव को जाने देना चाहते थे। उनकी सारी कोशिशे बेकार गई और मुनि जी चल पड़े भटिण्डा की ओर।

पालडा, सागन, शेरगढ, बरटा, माण्डवी, मोनक, जाखल आदि क्षेत्रो मे भ्रमण करते हुए मुनि जी भटिण्डा पहुँचे। व्याख्यानों का कार्यक्रम आरम्भ होना था कि जनता मे अमृत मुनि जी का प्रभाव उत्तरोत्तर जमने लगा। अन्तत नगर में प्रभाव इस सीमा को पहुँच गया कि वैष्णव जनता ने मुनि जी से चातुर्मास भटिण्डा मे ही मनाने की विनती की। पर बेचारे वैष्णव अपने आप मे कुछ हिचकिचाते थे, इसलिए कि उन्हे जैन मुनियो के चातुर्मास के नियम, रीति आदि का ज्ञान नही था।

मुनि जी ने कहा, "यदि आप लोगो की यही इच्छा है तो डरने की कोई बात नही, मै अजैनी जनता के बीच भी चातुर्मास मना सकता हूँ।"

धीरे-धीरे जैनी जनता भी वैष्णव जनो के साथ चातुर्मास मनाने की विनती महाराज के पास लेकर पहुँच गई।

मुनि जी बोले, "जैन-सभा पजाब के अनुशासन और आदेशों के बारे

मे विचार किये विना केवल भावुकता वश ही आप मुझ से चातुर्मास की प्रार्थना न करे। यदि आप अपने मे पजाब जैन-सभा के प्रतिबन्धो से मुक्त कर सकने की शक्ति रखते हो तो आगे कदम उठाये अन्यथा आप विश्वास रखे, मै चाहू तो अजैनियो के मध्य भी चातुर्मास मना सकता हूँ। मैं किसी के बन्धनो को स्वीकार नही करता।"

जैन-समुदाय के प्रतिष्ठित व्यक्तियो ने मुनिजी को विश्वास दिलाने के लिए कि चाहे जो हो वे किसी के प्रतिबन्ध के कारण पीछे कदम नहीं उठायेगे, एक लिखित प्रार्थना-पत्र मुनि जी की सेवा मे प्रस्तुत कर चातुर्मास भटिण्डा ही मे मनाने का निश्चय करने को विवश कर दिया।

मुनि जी ने चातुर्मास की प्रार्थना स्वीकार कर ली और चातुर्मास से पूर्वकाल के लिए वे डबवाली की ओर चले गये।

जिस बात की आशका थी वही हुई। मुनि जी के भटिण्डा मे विहार कर जाने के उपरान्त पजाब जैन-सभा को जब ज्ञात हुआ कि अमृत मुनि जी से भटिण्डा मे ही चातुर्मास मनाने की प्रार्थना जैन-समुदाय ने भी की है, उसने भटिण्डा के जैन-समुदाय पर दबाव डाला कि वह अपने निश्चय मे परिवर्तन करे और अमृत मुनि जी से चातुर्मास के लिए की गई प्रार्थना वापिस ले।"

जैन-सभा को ऐसा दबाव डालने मे लज्जा न आई हो, पर प्रत्येक सभ्य व्यक्ति के लिए यह लज्जाजनक बात अवश्य है कि एक बार जो प्रार्थना की जा चुकी है, वह भी मौखिक नही वरन् लिखित, उसे वापिस लेने की प्रार्थना की जाय। यह बात जितनी लज्जाजनक है उतनी ही हास्यास्पद भी। पर जैन-सभा लज्जा और सभ्यता से अधिक अपनी हठ का मूल्य आँकती है। बेचारे भटिण्डा के प्रतिष्ठित जैन नागरिक बडे सकट मे फंसे। पर धर्म-भीरु समुदाय को मुनि जी से प्रार्थना वापिस लेने के अतिरिक्त अन्य कोई रास्ता ही सुझाई न दिया। पर वैष्णव जन जैन-समुदाय के इस बेतुकेपन को देखकर आश्चर्यचकित हो गये और उनमे अपने निर्णय के प्रति और भी दृढता आ गई। उन्होने सकल्प लिया कि जो भी हो, चातुर्मास भटिण्डा मे ही होगा और इसके प्रबन्ध के लिए 'सकल बिरादरी' का सगठन किया गया।

मुनि जी ज्यो ही भटिण्डा पधारे, सारा वैष्णव-समुदाय स्वागत मे

उमड पडा । आपको गोलछो के चौबारे में ठहराया गया । पर स्थानीय जैन-सभा ने उसे अपने लिए लज्जाजनक समझा कि उनके २२ सम्प्रदाय के सन्त तेरहपंथियो के मकान मे चातुर्मास करे, अतएव उन्होने महाराज श्री जी से विनती की कि वे जैन-सभा के मकान मे ही चले । 'सकल बिरादरी' के सदस्यगण जैन-सभा की विनती स्वीकार करने के पक्ष मे नही थे, परन्तु मुनि जी की शान्तिप्रिय तथा सर्व-हितकारिणी नीति का सबको ही समर्थन करना पडा और मुनि जी जैन-सभा के मकान मे चले गये, जहाँ चातुर्मास का कार्यक्रम चित्ताकर्षक रूप मे चलने लगा । मुनि जी की 'अमृत वाणी' ने सारे नगर को अपनी ओर आकर्षित कर लिया । जैन-सभा पजाब का आदेश भी जनता को उनके चरणो मे जाने से न रोक सका ।

भटिण्डा मे चातुर्मास का कार्यक्रम सफलता से चल ही रहा था कि उन्ही दिनो श्रमण सघ की ओर से एक त्रि-सदस्य प्रतिनिधि-मण्डल अमृत मुनि जी के पास आया और उनसे 'श्रमण सघ' मे सम्मिलित होने की प्रार्थना की ।

मुनि जी ने कहा, "मै किसी भी संघ आदि मे सम्मिलित होने का पक्षपाती नही हूँ । क्योकि वहाँ फिर दलबन्दी चल पड़ती है और मुझे स्वतन्त्रता से कार्य करने का अवसर ही नही मिल पाता । फिर भी यदि मेरे शामिल होने से कोई लाभ हो सकता है तो मै तैयार हूँ । पर पहले आप अपनी प्रार्थना को 'जैन प्रकाश' पत्र मे प्रकाशित अवश्य ही कर दे ।"

मुनि जी ने एस० एस० जैन-सभा और साधु-समाज से अपने मतभेदो और अलग होने के कारणो को सप्रमाण उनके सामने रखा और अपने कदम का औचित्य उनसे स्वीकार कराया ।

प्रतिनिधि-मण्डल ने मुनि जी को विश्वास दिलाया कि वे 'श्रमण सघ' के मुख-पत्र 'जैन प्रकाश' मे उनके लिए सघ मे सम्मिलित होने की प्रार्थना प्रकाशित करवायेगे ।

ज्यो ही प्रतिनिधि-मण्डल भटिण्डा से वापिस गया और एस० एस० जैन-सभा को सारी बातो का पता चला, विरोध की भावना उमड पडी और फिर श्रमण सघ की ओर से मुनि जी के सम्मिलित होने के लिए प्रार्थना प्रकाशित नही हुई । मुनि जी शान्तिपूर्वक अपने प्रचार मे लगे रहे ।

चातुर्मास की समाप्ति पर भव्य अन्नदान यज्ञ किया गया, जिसमे सहस्रो निर्धनो को भोजन वितरित हुआ।

मुनि जी ने भटिण्डा से विहार किया तो सैकडो भक्तजनो ने उनकी जय-जयकार करते हुए बाजारो से जलूस निकाला। कितने ही लोग कई-कई मील तक उनके साथ गये और विदाई के इस समारोह ने ही भटिण्डा मे अमृत मुनि जी की ख्याति के प्रभुत्व के झण्डे गाड दिये।

मुनि जी भटिण्डा से विहार करके रामामण्डी की ओर चल पडे। अब मुनि जी के सामने यह स्पष्ट हो चुका था कि आज मानव-समुदाय को सम्प्रदायो की वेडियो ने इतना जकड लिया है कि वह खूँटे से बँधे पशुओ की भाँति रह गया है। उसके गले का बन्धन काटने के लिए उन्हे अपने प्रयत्नो मे तीव्रता लानी होगी।

प्रकृति-पुत्र महावीर स्वामी का उपदेश मानव-समुदाय तक पहुँचाते हुए इस नगर से उस नगर को चले जा रहे है, पजाब जैन-सभा ने जैन-समुदाय को मुनि जी को आहार तथा पानी तक भिक्षा रूप मे न देने का आदेश दे रखा है पर जहाँ मुनि जी पहुँच जाते वही पजाब जैन-सभा के आदेश और प्रतिबन्ध की धज्जियाँ उड जाती है। बल्कि अब उनके कार्य की परिधि तथा भक्त-मण्डली का विकास ही हो गया। यह प्रकृति का नियम है कि जिस वस्तु को दबाया जाता है वह अधिकाधिक ऊपर उठती है। गेद को भूमि पर पटकने से वह आकाश की ओर उठती है। मुनि जी के विरुद्ध जैन-सभा की दमन नीति से उनकी प्रतिष्ठा को चार चाँद लग गये है और स्वय जैन-समाज मे भी उनके दर्शनो के लिए उत्सुकता बढ जाती है, क्योकि प्रत्येक के मन में आकाक्षा जन्म लेती है कि देखे वह मुनि कौन है जिसके विरुद्ध जैन-सभा व जैन साधु-समाज ने जिहाद बोल रखा है और जब कोई अपनी इस उत्सुकता को शान्त करने के लिए उनके दर्शन कर लेता है अथवा उनके जादू भरे व्याख्यान सुन लेता है, वह मुनि जी का भक्त बन जाता है। अलौकिक गुणो की यह महिमा ही तो जैन-सभा का सिरदर्द बनी हुई है।

वह सामने से हमारे चरित्र-नायक चले जा रहे है, वेश से जैन-साधु है, स्थानकवासी साधु, पर मन से मानव-जगत् के सन्त है, मानव-जगत् के मुक्ति-पथ को प्रशस्त करने का उन्होने सकल्प ले रखा है। यह बात

दूसरी है कि वे भगवान् महावीर के बताये हुए मार्ग को ही मानव-जगत् के लिए एकमात्र कल्याणकारी मार्ग समझते है और साधुवृत्ति के लिए जैन-साधुओ के निमित्त बने नियमो का पालन करना परम आवश्यक और उचित समझते है, पर वे सम्प्रदायो की दीवारो मे मानवता को विभाजित करने के कट्टर विरोधी है और क्रान्ति का सन्देश लेकर वे मानव-समुदाय के सामने पहुँचते है, विरोधो के झझावात उनका रास्ता नही रोक पाते और घृणा का वातावरण उन्हे बहला नही पाता।

यह आँखो पर ऐनक लगाए तेज व विद्वत्ता की प्रतिमूर्ति रामामण्डी और कोटबख्तू मे मानव-धर्म का डका बजा चुके और अब महता की ओर पग बढ रहे है। जिस ओर पग बढे, विजय-श्री अभिनन्दन को दौड़ी चली आई। जहाँ जिह्वा ने हरकत की, श्रोता खोया सा रह गया। अमृत मुनि सुनने वालो के मन मोह लेते है।

और नगरो के बाद सड़के, पगडण्डियाँ और फिर स्वागत-कर्ताओ की भीड, फिर पगडण्डियाँ, स्वागत मे बिछी हुई पगडण्डियाँ, घोर चिन्तन और विदाई देने वाली भीड, फिर वही स्वागत-यात्रा मे कड़ी-से-कड़ी जुडी जाती है। प्रत्येक स्थान पर वही श्रद्धा का सागर और उसमे भी हर्षातिरेक का ज्वार-भाटा, श्रोताओ एव दर्शनार्थियो की भीड, बाजारो मे धूम, सडको पर चर्चाएँ। जहाँ पहुँच गये वही की जनता के हृदय-सम्राट् बन गये।

प्रत्येक स्थान पर जन-समुदाय ने स्वागत मे पलके बिछा दी। मुनि जी ने रात्रि को प्रवचन किये तो श्रोतागण मन्त्रमुग्ध हुए सुनते ही रह गये। कहाँ गया जैन सभा का प्रतिबन्ध, कहाँ गया जैन साधु-समाज का प्रचार? यहाँ तो कोई भिक्षा को मना नही करता, बल्कि बाट जोहते है कि मुनि जी आज आहार के लिए हमारे घर आवे। हमे भी उस पुण्यात्मा की सेवा मे कुछ समर्पित करने का सौभाग्य प्राप्त हो।

महता छोडा तो जनता के मन में उमडती श्रद्धा आँखो मे पिघल आई। मुनि जी मुस्कराते, सोचते, समझते, घूमते हुए पुन भटिण्डा लौट आये।

मुनि जी का नगर में प्रवेश होने वाला है। भक्त जन तैयारियो मे लगे है। नर-नारी निश्चित समय पर नगर से बाहर गोशाला की ओर

जा रहे है। भीड घरो से निकल आई है और जब मुनि जी चल पडे नगर की ओर तो 'अमृत मुनि की जय','अमृत मुनि जिन्दाबाद','महावीर स्वामी की जय' तथा 'मानव धर्म की जय' के गगनभेदी नारे लगे। एक नही, दो नही, सैकडो उत्साह के साथ नारे लगा रहे है और नारियाँ स्वागत-गान करती हुई भीड के पीछे-पीछे चल रही है, इनमें कुछ ऐसी भी है जो कदाचित् अमृत मुनि के स्वागतार्थ ही नगर से बाहर आई है वरना अट्टालिकाओ की चहार दीवारी से उन्हे सर निकालने का भी अवसर नही मिलता। इसमे साधारण स्थिति के परिवारो की स्त्रियाँ भी है और सेठानियाँ भी। अमृत मुनि जी के लिए सभी मे समान श्रद्धा है।

अब की बार मुनिवर श्री कृष्णदास की बिल्डिंग मे ठहरे और उधर उनके गुरुदेव भी भटिण्डा मे विराजमान हुए। आठ-दस सन्त और भी। सन्तो की भीड लग गई है। सभी में उत्साह है। सन्तो के पास श्रद्धालु भक्तो की हर समय भीड होती है। कोई शका-समाधान में लगा है तो कोई मगलीक सुन रहा है।

गुरु-धारणा उत्सव

और एक दिन वह समय भी आया जब सहस्रो लोग सडक पर जमा हो गये। आज सेठ रोशनलाल जी अमृत मुनि जी के शिष्य बनेंगे। गुरु-धारणा का यह समारोह लोक समारोह बन गया है। सेठ रोशनलाल जी की जन्म भूमि मलोट है इसलिए मलोट का नाम भी उनके नाम के साथ जुड गया है। अब उन्हे लोग रोशनलाल मलोट के नाम से याद करते है। मट्टा बाजार मे उनका प्रमुख स्थान है। वे बाजार पर छा गये है, लक्ष्मी उनके पैरो मे लोटती है और वे उँगलियो पर ही हजारो का हिसाब लगा लेते है। अब तक वे व्यापार मे रमे हुए थे, पर आज वे भक्ति के क्षेत्र मे पदार्पण कर रहे है। गुरु-धारणा के लिए अमृत मुनि जी द्वारा बनाये गये नियम उन्हे स्वीकार है और पिछले दिनो से वे उनका पालन भी कर रहे है। मुनि जी को अब विश्वास हो गया है कि सेठ जी गुरु-दीक्षा के उपयुक्त है।

इससे पूर्व कि सभा मे सेठ जी गुरु-धारणा लें, मुनि जी ने उनके मन की थाह ले ली है। वे बोले, "तुम मुझे गुरु क्यो बनाना चाहते हो?"

सेठ जी ने उत्तर दिया, "महाराज गुरु वह है जो जीवन-मरण के बन्धन तोडने की क्षमता रखता हो और आप में वह गुण व क्षमता विद्यमान है।"

"तुम्हे गुरु की क्या आवश्यकता है?" मुनि जी ने पूछा।

"मुक्ति अथवा मोक्ष के लिए।" सेठ जी बोले।

"क्या मोक्ष तुम स्वय प्राप्त नही कर सकते?"

"नही महाराज!" सेठ जी ने उत्तर दिया, "संसार मे फैले पापो और मोह-माया मे बडा आकर्षण है, पथभ्रष्ट होने से बचाने के लिए गुरु ही एकमात्र सहारा है।"

"तुम लाखो रुपये के स्वामी हो, फिर तुम्हे मोक्ष क्यो चाहिए? तुम्हे स्वर्ग की कामना क्यों है? तुम्हे तो यही बहुतेरा स्वर्ग प्राप्त है।" मुनि जी पूछ बैठे।

"यह सम्पत्ति भगवन्! पापो की जन्मदात्री है। मुद्रा से खेलते-खेलते मनुष्य का मन भी धातु का ही हो जाता है, मानवता उसमे नाम-मात्र को नही रहती। सम्पत्ति तो स्वर्ग की नही, नरक की स्थिति उत्पन्न कर देती है। इसका मोह ही आदमी को पागल बना देता है। मै आपके चरणो मे मानवता की शिक्षा चाहता हूँ और आपके ज्ञान की ज्योति से अपने लिए कल्याण का मार्ग खोजने का इच्छुक हूँ।" सेठ रोशन-लाल जी ने बहुत सोच-समझ कर उत्तर दिया।

"मानवता के पथ पर यदि तुम्हे जाना है तो तुम्हे बडा सयमी-जीवन व्यतीत करना होगा। मेरे शिष्य होने पर सद्‌गृहस्थ के सारे नियमो का पालन करना होगा।"

"मै प्रत्येक आदेश का पालन करूँगा, महाराज!" सेठ जी ने विश्वास दिलाया।

इन सब प्रश्नोत्तरो के उपरान्त मुनि जी को विश्वास होगया था कि सेठ रोशनलाल वास्तव मे शिष्य बनने योग्य है। इसलिए सार्वजनिक रूप से उनकी 'गुरु-धारणा' होनी थी। लोग सभास्थल पर एकत्र है। सभी लोगो की जिह्वा पर अमृत मुनि और रोशनलाल जी का नाम है।

मुनि जी मच पर आये, जय-जयकारो से सभास्थल गूँज उठा। मुनि जी का प्रवचन हुआ। उन्होने बताया कि वे शिष्य बनाते है सच्चा मानव बनाने के लिए, सद्‌गृहस्थ बनाने हेतु। वे अपने शिष्य को मानवता के

साँचे मे ढले देखना चाहते है। वे उन दूसरे सन्तो की भाँति अपने शिष्य नही बनाते जो गुरु से गुरु-घटाल बन बैठते है और शिष्य उनके लिए दास के समान बन कर ही रह जाते है। उन्हे ऐसे शिष्य चाहिये जो तन-मन-धन से जनता की और मनुष्यता की सेवा करे।

उन्होने अपने शिष्यो के लिए बनाए शास्त्रानुकूल नियमो का विवरण दिया और सेठ रोशनलाल जी ने सर्वसाधारण के सामने उन नियमो के पालन करने की शपथ ली।

मिठाइयाँ बटी, जय-जयकार हुई और गुरु-धारणा उत्सव समाप्त हो गया। पर भटिण्डा के इतिहास मे यह समारोह अपने ढग का एक ही था और शनै शनै यह भी स्पष्ट होता जा रहा है कि सेठ रोशनलाल अपने ढग के एक ही शिष्य है। उनका जीवन अब गुरुदेव की कृपा से सादगी से ओत-प्रोत है। उनकी वेशभूषा और विचारो को देख-सुन कर कोई यह अनुमान नही लगा सकता कि श्री रोशनलाल मलोट एक लख-पति सेठ है। वे सच्चे मानव और एक सद्गृहस्थ का जीवन व्यतीत करते है और सहस्रो रुपया प्रतिवर्ष मुनि जी की इच्छानुसार निर्धनो की सहायतार्थ तथा धार्मिक कार्यो पर व्यय कर देते है। वे सारी सम्पत्ति को एक अमानत की भाँति समझते है। अमृत मुनि जी के एक सकेत पर ही उनकी तिजोरियाँ खुल जाती है। यो तो भटिण्डा मे मुनि जी के कितने ही सुशिष्य है, पर वास्तव मे रोशनलाल जी भी उन सब मे एक आदर्श शिष्य है।

अमृत मुनि जी को कई 'आदर्श' जीवन मे मिले है, जैसे आदर्श गुरु महात्मा कस्तूरचन्द्र जी, आदर्श गुरुभाई ओमीश मुनि 'गौतम', आदर्श शिष्य श्री सेठ रोशनलाल मलोट।

भटिण्डा मे मुनि जी का सिक्का जम गया। जैन-सभा पजाब की चीख-पुकार अन्तत दीवारो मे टकरा-टकरा कर असफल हो गई। मुनि जी भगवान् के रूप मे पूजे जाने लगे। उन्हे यहाँ प्रत्येक साधन उपलब्ध है, पर वे अधिक दिन एक स्थान पर बिना किसी विशेष कारण के नही ठहरते।

भटिण्डा मे विहार किया तो हजारो व्यक्तियो ने उनका विदाई-

जलूस निकाला और भक्तजन मीलो तक उनके साथ चले गये, जैसे उनका मन ही गुरु-चरणों से अलग होने को न करता हो।

कोट फत्ता, मानसा आदि क्षेत्रो मे विचरण करते हुए मुनि जी अपने आदर्श सहयोगी गौतम मुनि जी के साथ जाखल पहुँच गये। जाखल में पहुँचे तो सभी बाजारो और गली-कूचो मे उनके आगमन की धूम मच गई। जैनी और अजैनी सभी दर्शनार्थ पहुँच गये। और फिर सभी स्थानो पर जो होता है वही यहाँ दुहराया जाने लगा। मुनि जी को पैर पुजवाने से ही बडी मुश्किल से छुट्टी मिलती है और रात्रि को प्रवचन करते है तो लोगो के नेत्रो से निद्रा लोप हो जाती है।

टोहाना, कैथल आदि अनेक क्षेत्रो मे विचरण करते हुए प्रकृति-पुत्र सामना पहुँच गए। सभी नगरो मे मानव धर्म की धूम मचती जाती है। मुनि जी अपने प्रवचनो मे मानव को सच्चा मानव बनने की सीख देते है, जिस पर न जैनी को आपत्ति हो सकती है और न अजेनी को। पर जब किसी की जन्म घुट्टी ही मे घृणा घोट कर पिला दी गई हो तो उसे प्रेम का पाठ क्यो भाये। अजैनी मत्रमुग्ध होकर सुनते है और उसे मन मे उतारने की चेष्टा करते है तो कितने ही मनुष्य जो भगवान् महावीर के उपासक है, घृणा का प्रचार करते है। पर किसी को मुनि जी के उपदेशो को गलत सिद्ध करने का न तो साहस ही होता है और गलती उन्हे ढूंढे ही मिलती है।

जल भी नहीं

पेप्सू के ऐतिहासिक नगर समाना मे प्रकृति-पुत्र अमृत मुनि जी का पदार्पण हुआ तो जनता उनके दर्शनार्थ उमड पड़ी। पर महावीर स्वामी के मत को अपने जीवन का लक्ष्य घोपित करने वाले घृणा के पुजारी कट्टपथी नाक-भौं सिकोडने लगे। प्रवचन आरम्भ हुए तो साधारण जन, जैनी तथा अजैनी, सभी के उपदेशामृत पान करने के हेतु एकत्रित हो गये, पर कट्टरपथी जैनी जैन-सभा के निर्णय को ही अपने चारो ओर खिंची ब्रह्म रेखा मानकर मुनि जी के प्रवचन, वे प्रवचन जो महावीर स्वामी के अमर सिद्धान्तो पर आधारित है, सुनने मे धर्म की हानि समझे मुँह बनाये बैठे रहे---अपने घरो मे अथवा अपनी दुकानों पर। परन्तु सत्य

वाणी चलती रही। उसे विरोध-प्रदर्शन रोक पाय, यह उनके बस की बात कहाँ?

मुनि जी के सहयोगी गौतम मुनि जल-भिक्षा के लिए एक प्रतिष्ठित जैनी के घर गये। मुनि जी खडे है, कितना ही समय व्यतीत होगया खडे-खडे। परन्तु न इकार ही हुआ और न भिक्षा ही मिली। पानी का प्रश्न है, केवल पानी का, और वह भी समाना में, जहाँ पानी कोई अप्राप्य वस्तु नही, बहुमूल्य वस्तु होती तो यह सन्देह किया जा सकता था कि धन के लोभी के मन से वह वस्तु छुटी ही नही, इसे देने मे उस का दिल दुखता है। पर यहाँ तो केवल पानी का सवाल है। पानी जो किसी भी प्यासे को पिला दिया जाता है, कर्तव्य या धर्म समझ कर और कभी-कभी करुणा अथवा दया के वशीभूत होकर।

किन्तु साधु को पानी नही मिल रहा और न कोई उत्तर ही। घर के स्वामी, नर-नारी सभी देख रहे है कि सन्त पानी के लिए खडे है, ऐसे सन्त जो भगवान् महावीर के भक्त है। उन्ही के अनुयायी है जिनके उपदेश उनके धर्म-सिद्धान्त है। करुणा के अवतार, शान्तिदेव और अहिसा के उपदेशक भगवान् महावीर के पुजारी के घर पर भगवान् महावीर के अनुयायी सन्त खडे है, परन्तु उन्हे पानी भी नही मिल पा रहा।

सन्त ने भी निश्चय कर लिया कि जब तक इकार नही किया जायेगा वे वापिस नही जायेगे। खडे-खडे कितना ही समय बीत गया। गृहस्वामियो को सूझ गई कि मौनधारण करने मे ही सन्त वापिस नही लौटेंगे। इसलिए वे बोले, "महाराज! जब तक आप सम्प्रदाय मे नहीं मिलेंगे, हम आपको आहार-पानी देने मे लाचार है।"

"तो क्या आप यह समझते है कि आहार पानी के दबाव से आप लोग हमे सम्प्रदाय मे मिला लेगे?" सन्त ने कहा, "हम आहार पानी के लिए तो साधु नही बने और न दबाव मे आकर सत्य की राह ही त्याग सकते है। यदि आप लोग हमे सम्प्रदाय मे ही मिलाना चाहते है तो हमे आप सिद्ध कर दीजिए कि हमारा कदम गलत है।"

गृहस्वामी ने कहा, "बात चाहे जो हो, आप गलत हो या सम्प्रदाय, पर आपके सम्प्रदाय से बाहर रहने की दशा मे हमारे घरो से आप को कोई वस्तु नही मिलेगी। जैन सभा का यही आदेश है।"

"ठीक है, भगवान् महावीर के उपासको को यदि हठधर्मी ही शोभा देती है तो वे ऐसा करे। पर यह कल्याण का मार्ग नही है।" कहकर सन्त जी उलटे पैरो लौटने लगे।

"ठहरिये सन्त जी !" पीछे से आवाज आई।

सन्त ने घूमकर देखा। गृहस्वामी का पुत्र पुकार रहा था। वह बोला, "हमारे घर से कोई सन्त निराश वापिस नही जायेगा। सन्तजी की बात ठीक है, हठधर्मी से किसी को नही झुकाया जा सकता।"

और उसने मुनि जी को जल दे दिया।

सन्त जी जल लेकर चल पड़े। पर वे सोचते रहे, यह अन्ध-विश्वास, यह कट्टरता, यह हठधर्मी जैन-समुदाय को कहाँ ले जायेगी ? भगवान् महावीर के अनुयायी इतने पतित क्यो होते जाते है ?

घटना तनिक सी थी, पर सत्य-शोधन के निमित्त इसे सामने रखा जाय तो ऐसे परिणाम निकलते है जिनसे जैन-सम्प्रदाय के पतन का आधार मिल जाता है।

प्रकृति-पुत्र ने सुना तो बोले, "जहाँ महान् पुरुषो के नाम को पूजा जाता है, उनके बताये मार्ग का अवलम्बन नही होता, वहाँ पतन की यही दशा होती है। भगवान् महावीर ने इस अन्ध-विश्वास और कट्टरता को तोडने के लिए ही अवतार लिया था। आज फिर महावीर स्वामी के पद-चिह्नो पर चल कर पाखण्ड की पट्टी को मानव के नेत्रो से उतार फेकने के कार्य की आवश्यकता है। दोष एक का नही, सारे समाज मे फैले दोषो का है।"

समाना से मुनि जी ने विहार किया तो जनता ने सजल नेत्रो से विदाई दी। युवक मुनि जी के भक्त हो गये थे। नई चेतना के दूत की भक्त नई पौध। यह तो प्राकृतिक नियम ठहरा।

पथ पर बढते-बढते त्रिपुडी कालोनी आ गई। यह नगरी बहावलपुरी शरणार्थियो की है, बहावलपुर की ओर से घृणा और दानवता के हाथो बरबाद हुए लोगो को यहाँ बसा दिया गया है। शरणार्थी बनकर आये लोग पुरुषार्थी बन गये है, अपने परिश्रम और पुरुषार्थ से उन्होने अपनी दुर्दशा को अपने जीवन से दूर फेक दिया है, अपने अश्रुओ को मुस्कानो मे परिवर्तित कर दिया है, उनके हृदय के घाव धीरे-धीरे भर रहे है और

सत्रहवॉ अध्याय

पटियाला में

भोले सत चल पडे पटियाला की ओर ।

पैप्सू की राजधानी पटियाला मे पदार्पण किया इस आशा से कि यहा जैन बन्धुओ मे प्रेमभाव की कमी नही है। पर कसेरा चौक मे पहुँचना था कि भ्राति का जाल टूट गया । विनती करने गये जैनी भाई, जो उनके साथ त्रिपुडी से आये थे, कसेरा चौक मे न जाने कहॉ गुम हो गये। कोई इस ओर गया कोई उस ओर, कोई इस गली से तो कुछ उस गली से । अब सत खडे रह गये और एक दो भोले-भाले जैन, जिन्हे षड्यत्र का कुछ पता ही नही था ।

छल-कपट की इस अनोखी करतूत को देख कर मुनि जन समझे कि जिस सम्प्रदाय के ठेकेदारो ने महावीर भगवान् को अपना प्रभु मान रखा है, वह सत्य, अहिसा आदि पवित्र व पुनीत आदर्शो को अपने जीवन का मत्र नही मानते वरन् छल-कपट ही इनकी कार्य-नीति बन गई है ।

भौचक्के खडे एक-दो पटियाला निवासी बेचारे बडे चिन्तित कि मुनि-जनो को ठहराया कहाँ जाय । ऐसी समस्याएँ हमारे चरित्र-नायक के सामने कई बार आ चुकी है और स्वय सुलझ भी चुकी है इसलिए उन्होने विश्वास के सुरो मे कहा, "ठहरने के लिए स्थान भी मिलेगा, आप लोग आगे चले ।"

और इन्द्रसेन जी लोटिया ने अपनी दुकान के ऊपर उन्हे एक कमरा दे दिया ।

रात्रि को सडक पर ही प्रवचन आरम्भ हुए। जनता का सागर उमड पडा । प्रत्येक रात्रि को दो और तीन हजार तक जनता एकत्रित हो जाती और कट्टर-पथी व पोगा-पथी जैनियो ने अपने तथा दूसरो के कानो मे बहुतेरी उँगलियाँ डालने का प्रयत्न किया पर पटियाला

की जनता ने प्रेम-भाव से प्रवचन सुने। कितने ही लोग अमृत मुनि जी के भक्त हो गये।

महावीर-जयन्ती निकट आ गई। हमारे चरित्र-नायक की भक्त-मण्डली ने जयन्ती की शानदार तैयारियाँ आरम्भ कर दीं। जैन-सभा की ओर से इन मुनियों के महावीर-जयन्ती के कार्यक्रम को असफल करने का षड्यन्त्र रचना आरम्भ कर दिया गया। भगवान् महावीर के अनुयायियों का इतना पतन देखकर उनके प्रति प्रत्येक महावीर-भक्त के हृदय में दया-भाव जागृत हो जायेगा। पर अपने इस पतन में ही वे लोग प्रसन्न थे जैसे महावीर-जयन्ती मनाना उन्हीं का, केवल उन्हीं का जन्म-सिद्ध अधिकार हो, भगवान् महावीर की जयन्ती उन्हीं की बपौती हो।

अमृत मुनि जी ने कहा कोई चिन्ता की बात नहीं। महावीर-जयन्ती पर ये घृणा उँडेलें, हम लोग जनता में प्रेम और सत्य की धार बहायें, इसी में हमारी सफलता है।

महावीर-जयन्ती का पर्व आ गया। मंच लगा और सामने ही जैन-सभा की ओर से मंच लगा दिया गया। भजन-मण्डलियाँ बुला ली गईं। शोरगुल आरम्भ कर दिया गया। कवि-सम्मेलन का स्वाँग रच लिया गया ताकि जनता अमृत मुनि जी के मंच की ओर न जा सके। पर ज्ञान-पिपासु जनता को जहाँ पहुँचना चाहिए था वहीं पहुँची। जैन-सभा के समस्त प्रयत्नों के बावजूद अमृत मुनि जी के मंच के सामने श्रोताओं की संख्या जैन-सभा के मंच की अपेक्षा कई गुना अधिक रही। जैन-सभा वाले खीज उठे। पर घृणा ने तो आज तक किसी को विजयश्री के दर्शन नहीं कराये। महावीर-जयन्ती बीत गई।

चुनौती स्वीकार

मुनि जी के प्रवचन आरम्भ होते तो ट्रैफिक रुक जाता। जनता की भीड़ से सड़क भर जाती। उन्हीं दिनों मुनि जी को कैथल से एक पत्र मिला, जिसमें कहा गया था कि अमृत मुनि जी ने कैथल की जनता को बहका रखा है पर अब की बार वे कैथल आने का साहस करेंगे तो

उनके प्राणो की खैर नही। चुनौती भरे इस पत्र के नीचे भेजने वाले के अस्पष्ट अंग्रेजी मे हस्ताक्षर थे।

मुनि जी को प्राणो का मोह हो तो वे डरे भी। वे गीदड-भभकियो से भयभीत होने वाले नही है। उन्होने रात्रि को सभा मे उस पत्र का हवाला देकर घोषणा कर दी कि उन्हे चुनौती स्वीकार है और वे कल प्रात काल ही कैथल की ओर विहार कर देगे। भक्त-मण्डली ने रोकने की लाख कोशिशे की, पर निर्णय हो चुका था, उसमे परिवर्तन की गुंजायश ही नही थी।

सूर्य ने ज्यो ही पूर्व दिशा मे मुँह उठाया, मुनि जी ने अपने कपडे-लत्ते सभाले। मुनि जी एक चुनौनी पर योद्धाओ की भाँति जा रहे थे। विदाई देने वाले नर-नारियो की भीड थी। जय-जयकार सारे बाजारो में गूंज उठी और मुनि जी भक्त-जनो को अश्रुपात करते छोडकर अपनी यात्रा पर बढ चले।

उस दिन-प्रकृति पुत्र घृणा और दानवता से टक्कर लेने जा रहे थे, उस दिन प्राणो को हथेली पर रखकर शान्ति और अहिंसा के अवतार अध-विश्वास के गर्त मे पडे एक व्यक्ति के अहकार को तोडने के लिए निहत्थे और नगे पाँव यात्रा कर रहे थे। उस दिन प्रकृति-पुत्र ने मृत्यु की चुनौती स्वीकार की थी और एक प्रकार से कायरो का स्वप्न तोडने के लिए मुनि जी ने पग उठाया था, उन कायरो का स्वप्न भग करने के लिए जो सत्य से भयभीत होकर उसे ही मिटा डालने की चेष्टा करने पर उतारू है। अहिंसा हिसा से टक्कर लेने चली।

डगर गा उठी

रुक न राह दीर्घ है, पग पे पग उठाये जा।
विरोध की इन आँधियों से, सत्य को टकराये जा॥
इन्सान बन गया कलक, इन्सानियत के नाम पर।
पनप रहा है पाप तक, महावीर के नाम पर।
घृणा के तूफान में, प्रेम के दीप जलाये जा॥

चार दिन मे अमृत मुनि जी कैथल पहुँच गये। कैथलवासियो को बडा अचरज हुआ। रात्रि को प्रवचन हुए तो मुनि जी ने अनायास ही

वहाँ पहुँच जाने का कारण बताया। भक्त जन एक बार तो विस्मित रह गये और फिर अनायास ही उनमे क्रोध जाग उठा।

दूसरे दिन नगर मे ढिंढोरा पिटवा दिया गया कि जिस व्यक्ति ने उन्हे चुनौती दी है वह जो चाहे कर सकता है। वे कैथल मे आ गये है। सारे नगर मे शोर मच गया।

प्रवचनो का कार्यक्रम चलता रहा। पर चुनौती देने वाला सामने नही आया। वह तो अवसर की खोज मे था।

एक दिन मुनि जी अपने निश्चित दैनिक कार्यक्रमानुसार एक बजे गुरु-भवन के एक कमरे मे ध्यान के लिए गये। सभी को ज्ञात था कि वे मध्याह्न १ बजे से २ बजे तक ध्यान एकान्त मे जाकर करते है। यह कमरा एक गली में है।

मुनि जी ध्यान मे लगे है और शत्रु छुरा लिये द्वार पर खडा है, इस प्रतीक्षा मे कि मुनि जी द्वार खोले और वह तुरन्त अनायास ही प्रहार कर दे। मुनि जी को क्या मालूम कि बाहर उन्हे चुनौती देने वाला ताक मे खडा है।

टन-टन, घडी ने दो बजने की सूचना दी। मुनि जी ने फाटक खोला। शत्रु का हाथ चमचमाता छुरा सम्भाले वार करने के हेतु विद्युद्-गति से ऊपर उठा। छुरे की चमकती धार पर मृत्यु का सवाद चमकता था। पर वह सामने से कौन आया ? शत्रु का ध्यान उधर गया तो उसका हाथ उठा-का-उठा रह गया। मुनि जी ने हाथ देखा और आक्रमणकारी का चेहरा भी। वह भी एक झटके मे पीछे की ओर हो गये।

सामने से आते हुए व्यक्ति को देखकर आक्रमणकारी ने तुरन्त अपना उठा हुआ हाथ गिराकर शीघ्रता से छुरे को ईंटो मे छुपा दिया और भाग खडा हुआ। यह सभी कुछ कुछ ही क्षणो मे हो गया। मुनि जी कमरे से बाहर चले आये और छुरा ईंटो के नीचे से निकाल लिया गया।

प्रात काल सभास्थल खचाखच भरा था। सभी लोग प्रवचन सुनने आये है, शान्ति और अहिंसा के प्रवचन। मुनि जी ने व्याख्यान आरम्भ किया। भगवान् महावीर के उपदेशो की व्याख्या करते-करते वे भगवान्

महावीर के आज के अनुयायियो की दशा पर आ गये। उन्होने उस दिन की घटना भी सुना दी। आक्रमणकारी का नाम उन्होने नही बताया, शेष सभी कुछ बताकर उन्होने वह लम्बा छुरा निकाल कर उपस्थित जनता को दिखा कर कहा, "यह है वह छुरा, जिससे वह मूर्ख मुझे मौत के घाट उतारने आया था।"

एक भक्त भावावेश मे उठा और उसने अपने हाथ मे उसी छुरे को लेकर कहा, "गुरुदेव! उस बदमाश का नाम बताइये, मैं शपथ खाकर कहता हूँ कि इसी छुरे से उसे और उसके परिवार को मौत के घाट उतार दूँगा।" उसके नेत्र जल रहे थे।

कितने ही भक्त उठ खडे हुए और मुनि जी से आक्रमणकारी का नाम पूछने लगे। नाम नही बताया गया तो अता-पता मालूम किया। सभी के नेत्रो मे से क्रोध उबल रहा था।

मुनि जी ने सभी को शान्त करते हुए कहा, "जिन्हे भगवान् पर विश्वास है उन्हे मृत्यु से भय नही और न आक्रमणकारी से ही कोई भय। यह शरीर तो नाशवान् है। इसे एक दिन अवश्य ही समाप्त होना है। जो भी इसे समाप्त करने का साधन बने, मुझे उससे कोई भी वैर नही। हम तो शान्ति, अहिसा और प्रेम के पुजारी है। मेरी शिष्य-मण्डली मे भी किसी हिंसक के किसी कृत्य से हिसा जागृत हो जाय तो यह बडी लज्जा-जनक बात है। हमे उस पथ-भ्रष्ट आदमी को सही रास्ते पर लाने की चेष्टा करनी चाहिये न कि प्रतिहिसा की भावना से जल उठे।"

करुणा के अवतार

दूसरे दिन मुनि जी आक्रमणकारी के घर पर पहुँचे और उससे कहा, "तुम मेरी हत्या करके ही प्रसन्न हो सकते हो, और मेरी हत्या हो जाने से ही तुम्हारे धर्म तथा तुम्हारे साथियो की उन्नति हो सकती है, तो लो मै स्वय तुम्हारे पास चला आया हूँ। तुम चाहो तो मै अकेला किसी भी समय कही भी चल सकता हूँ। तुम सहर्ष मेरी हत्या कर सकते हो पर जिस तरह तुमने हत्या करने की योजना बनाई थी उससे तो तुम्हारे प्राण भी मुसीबत में फँस सकते है। तुम्हे ऐसा कार्य करने की क्या आवश्यकता है जिसमें तुम्हारी जान भी खतरे में आ जाये। अब

महावीर के आज के अनुयायियो की दशा पर आ गये। उन्होने उस दिन की घटना भी सुना दी। आक्रमणकारी का नाम उन्होने नही बताया, शेष सभी कुछ बताकर उन्होने वह लम्बा छुरा निकाल कर उपस्थित जनता को दिखा कर कहा, "यह है वह छुरा, जिससे वह मूर्ख मुझे मौत के घाट उतारने आया था।"

एक भक्त भावावेश मे उठा और उसने अपने हाथ मे उसी छुरे को लेकर कहा, "गुरुदेव! उस बदमाश का नाम बताइये, मै शपथ खाकर कहता हूँ कि इसी छुरे से उसे और उसके परिवार को मौत के घाट उतार दूँगा।" उसके नेत्र जल रहे थे।

कितने ही भक्त उठ खडे हुए और मुनि जी से आक्रमणकारी का नाम पूछने लगे। नाम नही बताया गया तो अता-पता मालूम किया। सभी के नेत्रो मे से क्रोध उवल रहा था।

मुनि जी ने सभी को शान्त करते हुए कहा, "जिन्हे भगवान् पर विश्वास है उन्हे मृत्यु से भय नही और न आक्रमणकारी से ही कोई भय। यह शरीर तो नाशवान् है। इसे एक दिन अवश्य ही समाप्त होना है। जो भी इसे समाप्त करने का साधन वने, मुझे उससे कोई भी वैर नही। हम तो शान्ति, अहिसा और प्रेम के पुजारी है। मेरी शिष्य-मण्डली मे भी किसी हिंसक के किसी कृत्य से हिसा जागृत हो जाय तो यह वडी लज्जा-जनक वात है। हमे उस पथ-भ्रष्ट आदमी को सही रास्ते पर लाने की चेष्टा करनी चाहिये न कि प्रतिहिसा की भावना से जल उठे।"

करुणा के अवतार

दूसरे दिन मुनि जी आक्रमणकारी के घर पर पहुँचे और उससे कहा, "तुम मेरी हत्या करके ही प्रसन्न हो सकते हो, और मेरी हत्या हो जाने मे ही तुम्हारे धर्म तथा तुम्हारे साथियो की उन्नति हो सकती है, तो लो मै स्वय तुम्हारे पास चला आया हूँ। तुम चाहो तो मै अकेला किसी भी समय कही भी चल सकता हूँ। तुम सहर्ष मेरी हत्या कर सकते हो पर जिस तरह तुमने हत्या करने की योजना बनाई थी उससे तो तुम्हारे प्राण भी मुसीवत मे फँस सकते है। तुम्हे ऐसा कार्य करने की क्या आवश्यकता है जिससे तुम्हारी जान भी खतरे मे आ जाये। अब

न था। गुरुजनो के नगर-प्रवेश की धूमधाम से तैयारी होने लगी और जब मुनि जी ने अपने गुरुदेव तथा गुरुभाई के साथ नगर मे प्रवेश किया, गगन-भेदी नारो से नगर की प्रत्येक दीवार प्रतिध्वनित हो गई। मुनि अमृतचन्द्र जी को ही वह अद्वितीय प्रतिष्ठा प्राप्त है कि जिनके आगमन पर सारा नगर गूँज उठता है, वरना मुनि तो कितने ही इस नगर मे आते है और चले जाते है। किसी को पता भी नही चलता कि कौन आया और कौन चला गया।

फिर भटिण्डा में चातुर्मास

मुनि जी के विश्राम के लिए ला० बसीराम जी ने अपना सम्पूर्ण मकान दे दिया। चातुर्मास आरम्भ हुआ और प्रवचनो की धारा आरम्भ हुई तो सारा नगर ला० बसीराम जी के मकान की ओर जाने लगा। क्योकि वहाँ एक दिव्य ज्योति है जिसने सारे नगर को अपनी ओर खीच लिया है, जिसके विरोधी भी स्वयमेव उसी की ओर खिचे चले जाते है।

धीरे-धीरे प्रवचनो मे श्रोताओ की सख्या इतनी वढ गई कि सभी का उस मकान मे समा जाना असम्भव हो गया। भक्त-जनो ने इस परिस्थिति पर विचार किया और यही निर्णय हुआ कि एक प्रवचन-मण्डप का निर्माण कराया जाय। पक्की दीवारो से प्रवचन-मण्डप का निर्माण हुआ, पर अन्त मे वह भी कम पड गया। श्रोताओ को गलियो मे खड़े होकर सुनना पडता था। चातुर्मास चल ही रहा था कि कृष्ण-जन्माष्टमी आ गई। ठीक वही दिन हमारे चरित्र-नायक का जन्म-दिवस है।

पाठको को याद होगा कि कृष्ण-जन्माष्टमी के दिन ही हमारे चरित्र-नायक ने भूमि पर अपनी आँखे खोली थी। इसलिए अमृत-जन्माष्टमी और कृष्ण-जन्माष्टमी एक ही पर्व वन गया है। अमृत मुनि जी को भगवान् रूप मे पूजने वाले भक्त-जनो ने अमृत-जन्माष्टमी मनाने की शानदार तैयारियाँ करनी आरम्भ कर दी और दूसरी ओर ब्राह्मण कृष्ण-जन्माष्टमी मनाने की तैयारियो मे थे। उन्हे जब पता चला कि अमृत-जन्माष्टमी भी सजधज से मनाई जायेगी, उन्हे शका हुई कि कही कृष्ण-जन्माष्टमी की धूमधाम अमृत-जन्माष्टमी की सजधज मे खोकर न रह जाय। इस-

लिए उन्होंने अपने पत्रों के पेट में एक नये शगूफे को जन्म दिया। उन्होंने घोषणा की कि अष्टमी उस दिन नहीं है जिस दिन अमृत मुनि की जन्माष्टमी मनाई जा रही है बल्कि उसके दूसरे दिन है। अमृत-जन्माष्टमी और कृष्ण-जन्माष्टमी के बीच में भेद की लकीर खींचने के लिए एक रात का अन्तर उत्पन्न किया गया।

अमृत-जन्माष्टमी

सट्टा बाजार में अमृत-जन्माष्टमी का उत्सव मनाने के लिए भव्य मण्डप बनाया गया और उस अवसर के लिए एक चित्रकार ने अपनी कला का अनूठा आदर्श प्रस्तुत करते हुए एक ऐसा चित्र बनाया जिसमें एक ओर श्रीकृष्ण जी 'गीता' लिये खड़े हैं और दूसरी ओर अमृत मुनि 'गौतम गीता' लिये खड़े दर्शाये गये। नीचे एक पद्य लिखा था

ये अर्जुन गीता लाये थे, ये गौतम गीता लाये हैं।
ये भी तो आज ही आये थे, ये भी तो आज ही आये हैं॥

चित्र में कला का सजीव चित्रण था, ऐसा सजीव कि चित्र स्वयं बोलता प्रतीत होता था। कला की इस अनूठी जीवित माया को ब्राह्मणों ने देखा तो नगर में उन्होंने बवण्डर खड़ा कर दिया। 'हिन्दू धर्म खतरे में' का नाद उठा। श्रीकृष्ण के साथ अमृत मुनि जी का चित्र उन्हें अपने धर्म और कृष्ण का उपहास प्रतीत हुआ। उन्होंने शोर मचाया कि यह भगवान् श्रीकृष्ण और हिन्दू धर्म की मान-हानि है। इधर यह शोर हुआ तो दूसरी ओर अमृत मुनि जी के उपासक चीख उठे कि यह शोर अमृत मुनि जी की मान-हानि है क्योंकि अमृत मुनि जी श्रीकृष्ण से किसी भांति कम नहीं हैं।

जन्माष्टमी आई तो जिस दिन अमृत मुनि जी द्वारा घोषित अष्टमी मनाई जानी थी उसी दिन सायंकाल आकाश में मूसलाधार वर्षा आरम्भ हो गई। प्रकृति-पुत्र के भक्त चीख उठे। कृष्ण-जन्माष्टमी भी आज ही है उसका ज्वलन्त प्रमाण है यह मूसलाधार वर्षा। आधे नगर ने उसी दिन जन्माष्टमी मनाई। पर मन्दिर दूसरे दिन सजे इसलिए मन्दिरों में चढ़ने वाले चढ़ावे में ब्राह्मणों को कम आय हुई।

दोनों जन्माष्टमियाँ तो समाप्त हो गईं पर ब्राह्मण खिन्न थे। उन्होंने

हो-हल्ला करना आरम्भ कर दिया कि अमृत मुनि जी के भक्तो ने श्रीकृष्ण और हिन्दू धर्म की तौहीन की है। वे अपने धर्म के मान की रक्षा के लिए न्यायालय का द्वार खटखटाएँगे।

सेठ रोशनलाल जी ने इस शोर और चख-चख को सुना। पहले शात रहे और अन्त मे बाजार के बीच खडे होकर उन्होने चुनौती देते हुए कहा, "कौन है जो हमारे गुरुजी को श्रीकृष्ण से कम बताता है? कहाँ है तुम्हारा श्रीकृष्ण? लाओ और मुकाबला कर लो। न्यायालय का द्वार खटखटाना चाहते हो तो चलो न्यायालय मे। अगर तुम लोगो के पास केस लडने को धन न हो तो मै भी उसमे सहायता दूँगा और न्यायालय मे खडे होकर सिद्ध कर दूँगा कि आकाश के उस श्रीकृष्ण से हमारे पृथ्वी के कृष्ण मे अधिक शक्ति है। सतयुग के श्रीकृष्ण बीते दिनो के कृष्ण वन कर रह गये है। जमाना प्रगति की ओर जा रहा है। प्रगति के इस युग मे जन्मे हमारे श्री कृष्ण की लीला को ज्ञान-नेत्रो से देखो तो पता चले कि हमारे श्री कृष्ण और तुम्हारे कृष्ण मे आकाश-पाताल का अन्तर है।"

सेठ रोशनलाल जी की सिह-गर्जना सुनकर उछल-कूद मचाने वाले थोथे कृष्ण-भक्तो के हौसले पस्त हो गए और ववडर शान्त हो गया।

एक चमत्कार

चातुर्मास का उत्तरार्ध था कि नगर मे गोपाल स्वामी नामक एक साधु ने प्रवेश किया, जिसके सम्बन्ध मे उनके भक्त-जनो ने प्रचार करना आरम्भ कर दिया कि उक्त साधु की आयु ३६५ वर्ष है और वे कई वार चोला वदल चुके है। स्वय साधु ने दर्शनार्थियो को वताया कि वह भगवान् से कई वार भेट कर चुका है।

भारत को आध्यात्मिक देश वताया जाता है और इसका विशेष कारण यह है कि यहाँ भगवान् के नाम पर लोगो को अव तक मूर्ख वनाया जाता है। भगवान् और धर्म के नाम पर मनुष्य से पाशविक कृत्य करा लेना यहाँ आसान वात हो गई है क्योकि धर्म और भगवान् के भय की अफीम खिलाकर भारतवासियो को शताब्दियो से वेसुध रखने मे धर्म और भगवान् के ठेकेदार सफलता प्राप्त करते रहे है। सारे समाज पर

पुरुष और स्त्रियाँ तक उनके लिए सिगरेट भेट स्वरूप ले जाती।

जादू का कमाल देखकर भक्त-मण्डली बडी प्रसन्न हो गई, क्योकि उनके विचार से भटिण्डा का दुर्ग उन्होने जीत ही लिया था। वे अपने साधु महाराज की प्रशसा करते हुए इधर-से-उधर घूमते और लोगो मे उनके दर्शन करने की उत्सुकता उत्पन्न करते। एक दिन ऐसे ही कुछ लोग जैनियो से भिड पडे। जैनी इस बात को मानने को तैयार नही थे कि साधु जी भगवान् से भेट कर आये है और वे आगन्तुक के मन की बात जान लेते है। वाद-विवाद हो गया और बात यहाँ तक पहुँची कि शर्तें लग गई—हजारो रुपये की शर्तें। उन साधु जी महाराज के ज्ञान पर सट्टा उस कमरे के नीचे ही लग रहा था जिसमे हमारे चरित्र-नायक ठहरे थे।

जैन सम्प्रदाय वालो को अब अपनी नाक की रक्षा करने की चिन्ता हो गई। सनातनी साधु और सभी सम्प्रदायो पर छा जाय, जैन साधुओ से भी आगे निकल जाय यह तो जैन-धर्म की बडी हानि की बात है। अब जैन-धर्म और जैन-साधुओ के मान की रक्षा कौन करे? उस साधु की ख्याति का मनोवैज्ञानिक प्रभाव उनके भी मस्तिष्क पर था, वे चाहे उसे स्वीकार न करते हो पर था अवश्य। प्रभाव यह कि वे समझते थे कि इस साधु की परीक्षा लेने और उसे परास्त करने का कार्य भी कोई पहुँचा हुआ ज्ञानी साधु ही कर सकता है। अन्तत दृष्टि हमारे चरित्र-नायक के ऊपर ही पडी और वही जैनी जो कल तक जैन-सभा के भय से इच्छा रहते हुए भी अमृत मुनि का लोहा न मानते थे, मुनि जी के चरणो मे पहुँचे और उनकी लाज रखने की प्रार्थना की।

अमृत मुनि जी तैयार हो गये उस साधु के साथ भेट करने के लिए। मुनि जी चले तो उनके साथ सैकडो व्यक्ति चल पडे। आज अमृत मुनि जी उस साधु के ढोग का परदाफाश करने जा रहे थे। कितने ही लोग ऐसे थे जो यह स्वप्न मे भी आशा नही कर सकते थे कि वह साधु अमृत मुनि जी से बाजी ले जा सकता है और कितने ही ऐसे भी थे जो उस साधु की वास्तविकता जानने के इच्छुक थे।

मुनि जी पहुँचे तो वे साधु महाराज अपनी कोठरी से निकल कर

एक वृक्ष के नीचे आ बैठे। सारी भीड़ बैठ गई। साधु जी ने अहंकार के स्वर में हमारे चरित्र-नायक से पूछा, "क्यों आये हो?"

सुनने वाले चकित रह गये। यह साधु महाराज तो किसी के भी आगमन का अभिप्राय समझ लेते हैं और यही पूछते हैं कि क्यों आये हो। बात खटक गई।

"कुछ जिज्ञासा लेकर आया हूँ," अमृत मुनि जी ने कहा।

"जो जानना चाहते हो पूछो?" उस साधु ने पुनः अहंकार के साथ कहा।

"कुछ वेदों के सम्बन्ध में पूछना चाहता हूँ," अमृत मुनि जी ने शान्तिपूर्वक कहा।

"वेद? वेद तो मेरे चरणों में पड़े रहते हैं, कोई और बात पूछो।" वह साधु बोला। अभिमान उसके प्रत्येक शब्द से झलक रहा था। उसकी मुद्रा ही दम्भपूर्ण थी। उसके भक्त जनों के मुख पर हर्ष की रेखा उभर आई।

मुनि जी बोले, "तो फिर गीता के सम्बन्ध में कुछ जानना चाहूँगा।"

"गीता-वीता के बारे में क्या पूछते हो, कुछ भगवान् से भी ऊपर की बात पूछो। हम यह छोटी-मोटी बातें क्या बतायें, हमसे तो ब्रह्मज्ञान की बातें, उससे भी ऊँची बातों के सम्बन्ध में बात करो।" साधु ने अपनी योग्यता छिपाने के लिए ऐसी बात कही, जो समझदार लोगों के लिए उसकी वास्तविकता खोलने के लिए पर्याप्त थी, पर साधारण व्यक्तियों के लिए रोब की बात थी।

मुनि जी ने कहा, "जैसी आपकी आज्ञा। आप तो भगवान् से भी ऊपर की बातें जानते हैं। दूसरों के मन की बात बता देते हैं। थोड़ी सी बात पूछनी है, यदि आपने बता दी तो फिर हम भी आप ही के शिष्य हो जायेंगे।"

"पूछो," उस साधु ने कहा। वह सूखा और क्षय रोग से पीड़ित-सा दीखता था। बहुत ही कमज़ोर, अस्थिपंजर मात्र। लोग उसे देखकर उसके भक्तों की बात पर विश्वास कर लेते थे।

मुनि जी ने भीड़ में से एक व्यक्ति को दूर जाकर एक कागज

पर कुछ लिखने को कहा ताकि वे साधु महाराज बताये कि उसने क्या लिखा है।

भीड़ में से लिखने को खडा होने वाला व्यक्ति एक सिख था। उसने पूछा, "किस भाषा मे लिखूँ।" मुनि जी ने कहा, "किसी भी भाषा मे।" पर वे साधु जी बोले, "मै केवल हिन्दी भापा जानता हूँ।" हिन्दी भाषा वह सिख नही लिख सकता था। इसलिए एक दूसरा युवक (भटिण्डा निवासी ला० सतराम जी के सुपुत्र श्री सोहनलाल जी) उठा और उसने दीवार के वाहर दूसरी ओर जाकर कुछ लिखा।

उसे आदेश दे दिया गया कि वह किसी को भी जो उसने लिखा है, वह न वताए, न किसी को परचा ही दिखाये।

अव साधु जी से पूछा गया कि उस युवक ने क्या लिखा है ?

साध जी ने इधर-उधर की वाते करके बात टालने का प्रयत्न करना आरम्भ कर दिया। मुनि जी ने जोरदार शब्दो मे कहा कि जो उस युवक ने लिखा है, उसे आप वताएँ।

इधर-उधर की वातो से काम न चला तो अन्त मे उनकी भक्त-मण्डली ने कहा कि हमारे महाराज तो नही वता सके, अव आप बताइये कि परचे पर उस युवक ने क्या लिखा है ?

मुनि जी वोले, "आप विश्वास रखे, मै कोई भी ऐसा प्रश्न नही पूछता जिसका मुझे ज्ञान न हो, आप चाहे तो यहाँ इसी समय वता सकता हूँ और यदि आप चाहे तो जनता की भरी सभा मे वता दूँ।"

उपस्थित भीड ने कहा कि दूसरे दिन एक सभा की जाय और उस सभा मे वताया जाय। युवक को आदेश दे दिया गया कि वह उस परचे को सम्भाल कर रखे और चाहे जो हो, वह किसी को भी न परचा ही दिखाये और न कुछ वताये ही।

नगर मे हलचल मच गई। आज अमृत मुनि की प्रशसा जैनी भी कर रहे है और अजैनी भी। सभी लोग उस समय की वेचैनी मे प्रतीक्षा कर रहे है जव अमृत मुनि अपने ज्ञानवल और आत्मवल से उस परचे पर लिखे शब्दो को जनता के सामने वतायेगे।

हजारो व्यक्ति, नर व नारियाँ, सभास्थल पर एकत्रित हो गये। अमृत मुनि और उस साधु के शिष्यो के हृदय की धडकनें तेज होती जा

रही है। उपस्थित भीड़ में उत्सुकता बढ़ रही है।

उक्त युवक को मंच पर बुलाया गया। पूछा गया कि उसने वह परचा किसी को दिखाया तो नहीं, किसी को कुछ बताया तो नहीं। युवक ने ध्वनि-विस्तारक यन्त्र (लाउड स्पीकर) के सामने पहुँच कर शपथपूर्वक कहा कि उसने वह परचा अपनी पेंट में छुपा रखा है और रात्रि को भी उसने पेंट नहीं उतारी। अभी तक कोई उसे नहीं देख पाया और न उसने किसी को कुछ बताया ही है।

मुनि जी ने एक-एक शब्द बोलना आरम्भ कर दिया। युवक ने परचा निकाल कर उससे मुनि जी द्वारा उच्चरित शब्दों का मिलान करना आरम्भ कर दिया। वे बोलते जाते और युवक अपने परचे में देखता जाता। एक-एक शब्द बोलकर मुनि जी ने सारी पंक्ति बता दी। युवक ने लिखा था

"मानव की उत्पत्ति का आधार क्या है ?"

उपस्थित जनता उत्साह और हर्ष से अमृत मुनि जी की जय के नारे लगाने लगी और सभी के सामने उन साधु जी महाराज का ढोंग खुल गया। भटिण्डा पर तथाकथित ३६५ वर्षीय पहुँचे हुए साधु का जमा हुआ सिक्का उखड़ गया। अमृत मुनि के प्रति जनता की श्रद्धा दुगनी हो गई। आज तक किसी को ज्ञात नहीं था कि अमृत मुनि जी इतना ज्ञान रखते हैं, पर उस घटना ने लोगों के मन में यह विश्वास जमा दिया कि अमृत मुनि महान् ज्ञानी हैं।

मुनि जी के व्याख्यानों की सारे नगर में धूम थी। प्रतिदिन सैंकड़ों व्यक्ति मुनि जी की वाणी सुनने के लिए प्रातःकाल से एकत्रित हो जाते। नर-नारियों की यह भीड़ घण्टों मुनि जी के प्रवचन सुनती रहती थी।

दिन के बाद दिन व्यतीत हो रहे थे। मुनि जी के प्रति श्रद्धा में प्रतिदिन वृद्धि हो रही थी।

उस दिन कार्तिक सुदी नवमी रविवार का दिन था, आज ढाई-तीन सहस्र की संख्या में नर और नारी उपस्थित थे। व्याख्यान स्थल ठसाठस भरा था। आज सभी के चेहरों पर किसी विशेष उत्सव की प्रतीक्षा अंकित थी।

ठीक नौ बजे श्री अमृतचन्द्र जी महाराज सभा-स्थल पर पधारे।

सारा सभा-स्थल श्री अमृत मुनि जी की जय-जयकारो से गूंज उठा। उपस्थित भीड ने मुनि जी के चरण छुए और वन्दना की।

आज गुरु-धारणा उत्सव है। सेठ मोहनलाल जी भटिण्डा के प्रतिष्ठित सज्जनों मे से एक है। आज वे श्री अमृत मुनि जी को जनता-जनार्दन के सम्मुख अपने जीवन-मरण के बन्धन खोलने के लिए अपना पथ-प्रदर्शक, अपना इष्ट देव बनाने वाले है यद्यपि मुनि जी के चरणो मे उन्होने अपने को पहले ही से समर्पित कर रखा है। पर आज श्री अमृत मुनि जी उन्हे अपना शिष्य स्वीकार करेगे। क्योंकि उनमें मुनि जी के द्वारा दर्शाये गये मार्ग पर चलने की क्षमता प्रगट हो गई है।

मुनि जी ने व्याख्यान आरम्भ किया और जनता को बताया कि गुरु धारण करना क्यो आवश्यक है। मोक्ष-प्राप्ति के लिए गुरु ही एकमात्र सहारा क्यो है? और शिष्य का कर्तव्य क्या है?

और फिर ला० मोहनलाल जी ने उन्हे अपना गुरु धारण किया। चारो ओर हर्ष हिलोरे ले रहा था। गुरु-धारणा का यह उत्सव मुनि जी के प्रति लोगो की आस्था का दिग्दर्शक था। उत्सव की समाप्ति पर 'प्रभावना' बाँटी गई। 'श्री अमृत मुनि जी की जय' के नारो से सारा सभास्थल गूंज उठा। आज प्रात काल सात बजे मोहनलाल जी के चाचा श्री प्रतापचन्द्र जी ने भी श्री मुनि जी को अपना गुरु स्वीकार किया।

चातुर्मास का कार्यक्रम पूर्ववत् चलने लगा। कथा और प्रवचन सुनने वालो की सख्या उत्तरोत्तर वढने लगी। मुनि जी के कण्ठ से निकले बहुमूल्य वचनो को जनता हृदयगम करने का प्रयत्न करती जाती और मुनि जी शान्ति, अहिंसा और सत्य भगवान् के सम्बन्ध मे ज्ञान उडेलते जाते।

कार्यक्रम चलता रहा, चलता ही रहा और अन्त मे एक दिन चातुर्मास समाप्त हुआ। समाप्त हुआ वडी धूमधाम से और जनता में मुनि जी के प्रति अपार श्रद्धा हो गई। भक्त-मण्डली मुनि जी की कीर्ति से गद्‌गद हो उठी। कौन जाने मुनि जी की जिह्वा पर कितना माधुर्य है, कितना ज्ञान है उनके पास। चार मास तक बोलते रहे पर प्रतिदिन नयी-नयी बाते, नये-नये उपदेश।

अठारहवाँ अध्याय

रोग-प्रहार तथा मानव-प्रेम

नियमानुसार मुनि जी ने भटिण्डा से विहार किया तो हजारो नर-नारी मुनि जी को विदाई देने एकत्रित हो गये। वह दिन भटिण्डा निवासियो के लिए सदैव याद रहेगा। बाजारो मे कन्धे-से-कन्धा छिलता था। न जाने कितना उत्साह था जनता मे, सारा नगर अमृत मुनि जी की जय के नारो से गूँज उठा। नारियाँ विदाई गीत गा रही थी। जो देखता था वही साथ चलने लगता था।

पहला पडाव भटिण्डा की सीमा मे ही होना था। क्योकि भीड और जनता के आग्रह के कारण वे उस दिन आगे नही जा सकते। एक-एक स्थान से गुजरने मे कई-कई मिनट लग जाते थे। चरण-रज लेने वालो की भारी भीड थी।

पडाव पर पहुँचे तो अचानक मुनि जी को दर्द हुआ। ऐसा दर्द हुआ कि मृत्यु और जीवन बहुत ही निकट, एक दूसरे से मिलते दीखने लगे। दर्द के मारे चीत्कार निकलने लगे। विदाई देने वाली भीड अभी तक वही थी। सभी में चिन्ता की लहर दौड गई। नगर के प्रसिद्ध-प्रसिद्ध डाक्टर तुरन्त पहुँच गये। चिकित्सा आरम्भ हुई। मारफिया तक का इन्जेक्शन लगाया गया पर दर्द की पीडा से पीछा न छूटा। सारा नगर चिन्तित हो गया। कितने ही भक्त रातो मुनि जी के चरणो मे पडे रहे। बीमारी के कारण मुनि जी को वापिस नगर मे ले आये और उन्हे चौ० मिड्डूमल (स्वर्गवासी) के चौबारे पर ठहरा दिया गया। चिकित्सा चलती रही। वे भटिण्डा से विहार करना चाहते थे पर डाक्टरो की राय थी कि वे अभी कुछ दिन तक पूर्ण विश्राम करे। भक्तो की विनती पर वे रुके रहे। गुरुदेव कस्तूरचन्द्र जी महाराज और अन्य सन्त जा चुके थे।

प्रातःकाल के पाँच बजे है, मुनि जी सन्ध्या और स्वाध्याय से उठे है,

किसी ने आकर सूचना दी कि फूस-मण्डी के पास रेलवे दुर्घटना हो गई। नहर का पुल टूट गया और कई डिब्बे उलट गये। सैकडो यात्री मृत्यु के शिकार हुए। समाचार सुना तो मुनि जी परेशान हो गये। उनकी आत्मा दुर्घटना-ग्रस्त यात्रियो की सेवा के लिए तडपने लगी। उनके सुशिष्य सेठ रोशनलाल जी कार, डाक्टर, औषधि आदि लेकर दुर्घटना-ग्रस्त यात्रियो की सेवा-सहायता के लिए तुरन्त चल पडे। मुनि जी को डाक्टरो की राय थी कि वे कही आये-जाये नही पर उन्होने डाक्टरो के परामर्श की किंचिन्मात्र चिन्ता न की। वे बोले, "भटिण्डा से तीन-चार मील पर कितने ही असहाय यात्री तडप रहे है और मै यहाँ शान्ति से बैठा रहूँ। यह मुझ से न हो सकेगा।"

भक्त बोले, "गुरु जी! नगर से कितनी ही कारे सहायतार्थ डाक्टर आदि लेकर जा चुकी है। वहाँ कितने ही लोग जा चुके है।"

"सेठ रोशनलाल के अतिरिक्त सभी अपने-अपने परिवार वालो की सहायतार्थ गये है, उन दुखियो का क्या होगा, जिनका कोई अपना व्यक्ति नही पहुँच सकेगा?" मुनि जी ने पूछा।

"उनके लिए पुलिस है और अन्य सरकारी कर्मचारी।"

"पुलिस और सरकारी कर्मचारियो की बात जाने दो। वे कैसी सहायता करते है, उसे बताने की आवश्यकता नही और यदि वे लोग ठीक प्रकार से सहायता कर भी रहे हो तो भी हमारे कर्तव्य की इतिश्री नही हो जाती। मुझे जाना ही होगा।" मुनि जी ने कहा और अपने सहयोगी श्रीमीश मुनि 'गौतम' के साथ दौड पडे उस ओर जहाँ कितने ही इन्सान मृत्यु का ग्रास हुए थे, कितने ही मृत्यु के जबडो मे फँसे तडप रहे थे, कितने ही बालक अनाथ हो गये थे और वे चीत्कार कर रहे थे।

मुनि जी के पैरो मे न जाने कहाँ से इतनी शक्ति आ गई। वे तीव्र गति से चले और थोडे ही समय मे घटनास्थल पर पहुँच गये। रोते शिशुओ, काँपते और तडपते मानव शरीरो, चीत्कार करते घायलो की ओर बढे तो सेना के सैनिको ने रोक दिया।

नहर का पानी लाल था, रक्त की लाली सारी नहर पर छा गई थी। मुनि जी तडपते लोगो की अपने हाथ से सेवा करने के लिए आतुर थे कि एक रेलवे अधिकारी ने उनकी भावना को परख लिया और वह

मुनि जी को अपने साथ ले गया तथा उस हृदय-विदारक दृश्य को दिखाया। उनका मन चीत्कार कर उठा। पर उन्हें किसी की सेवा करने की आज्ञा नहीं मिली। रोशनलाल जी के डाक्टर और औषधि आदि को सरकारी डाक्टरों और औषधियों के साथ सहायता कार्य में जुटा दिया गया।

मुनि जी का यह कार्य उनके मानव-प्रेम का द्योतक है।

प्रकृति-पुत्र चिन्तन में डूबे रहते थे। उस समय की बेताबी से प्रतीक्षा में थे जब वे स्वस्थ हो जायेंगे और विहार कर सकेंगे।

सूर्य निकलता, किरणों पर यौवन छा जाता और फिर सूर्य की किरणें पतनोन्मुख हो जातीं। सन्ध्याकाल आ जाता। फिर अन्धकार का घूँघट पृथ्वी पर गिर जाता। और अन्धकार की जवानी भी ढल जाती। इसी प्रकार अन्धकार के पीछे प्रकाश और प्रकाश के पीछे अन्धकार की दौड़ चलती रहती। दिन-रात का आवागमन चलते-चलते वह दिन भी आ गया जब मुनि जी ने यात्रा पर पग उठाया। भक्तजनों ने शानदार विदाई दी और मुनि जी फूस-मण्डी, रामपुराफूल और धुरी आदि होते हुए नाभा पहुँचे और वहाँ से पग उठे तो रोपड़ी पहुँच गये।

रोपड़ के प्रतिष्ठित जैनी उनके पास पहुँचे और महावीर-जयन्ती रोपड़ में ही मनाने की प्रार्थना करने लगे। उसी समय भटिण्डा के शिष्य भी उपस्थित थे और वे पहले से ही महावीर-जयन्ती भटिण्डा में मनाने की विनती कर रहे थे।

मुनि जी ने रोपड़ वालों से कहा कि भटिण्डा निवासी आपसे पहले ही विनती कर रहे हैं, अब आप ही बताइये, मैं किसकी प्रार्थना स्वीकार करूँ।

रोपड़ वाले बोले, "महाराज! भटिण्डा में तो आपकी कृपा कितनी ही बार हो चुकी है। रोपड़ की जैन जनता आपको ही महावीर-जयन्ती पर निमन्त्रित करने की इच्छुक है आप हमारी विनती न ठुकरायें।"

"पर आपने विनती करने के पूर्व पंजाब जैन-सभा के फैसले पर भी विचार कर लिया है? पंजाब जैन-सभा तो मुझे आहार-पानी की भिक्षा देने और वन्दना करने के भी विरुद्ध है। आप लोग भी जैनी हैं। जब पंजाब जैन-सभा को पता चलेगा कि आप जैनी लोग मुझे निमन्त्रित कर

आये है, वे विनती वापिस लेने के लिए दबाव डालेगे। उस स्थिति मे क्या होगा ?" मुनि जी ने ठोक-बजाकर देखने के लिए कहा।

"पजाब जैन-सभा हो या और कोई सभा; हमारे ऊपर इस सम्बन्ध मे किसी का निर्णय नही ठूँसा जा सकता। हम सारे जैन-समुदाय की ओर से प्रार्थना लेकर आये है," रोपड का प्रतिनिधि-मण्डल बोला।

मुनि जी ने कहा, "देखिये! मेरे कारण कोई झझट खडा नही होना चाहिये। यदि आप समस्त परिस्थितियो मे अटल रहने को तैयार हो तो भटिण्डा वालो से बात कर ल। उन्होने रोपड जाने की विनती स्वीकार करने को कहा तो मै आपके यहाँ अवश्य आऊँगा। क्योकि भटिण्डावासियो की विनती लगभग स्वीकार हो चुकी है इसलिए उनकी सम्मति लेना आवश्यक है।"

रोपड के प्रतिनिधि-मण्डल ने भटिण्डा वालो से बात की और भटिण्डा-निवासी इस बात के लिए तैयार हो गये कि मुनि जी महावीर-जयन्ती पर रोपड़ ही जायँ।

मुनि जी ने रोपड वालो की प्रार्थना स्वीकार कर ली।

वे त्रिपुडी से पटियाला चले गये और जब महावीर-जयन्ती के बीस-पच्चीस दिन ही रह गये, वे रोपड के लिए विहार करने की तैयारी में लग गये, पर अनायास ही इधर भटिण्डा से और उधर रोपड से कुछ लोग पहुँच गये।

रोपड़ से दो प्रमुख जैनी सज्जन आये थे। वे मुनि जी से एकान्त मे बोले, "मुनिवर! आपके रोपड मे महावीर-जयन्ती के अवसर पर पहुँचने के निर्णय से हमारे नगर की जैन-जनता मे फूट पड गई है इसलिए आप हमे एक पत्र इस आशय का लिखकर दे दे कि अस्वस्थता के कारण मै रोपड नही जा सकता।"

मुनि जी ने कहा, "रोपड जाने का निर्णय मैने आपके नगर के प्रतिनिधि-मण्डल की विनती पर किया था, अपनी इच्छा से नही। मैने समस्त बाते आपके प्रतिनिधि-मण्डल के सामने रख दी थी, पर अब आप लोग चाहते है कि आपकी कमजोरी और दोष को छुपाने के लिए मै झूठ बोलूँ, यह मुझसे नही होगा। महावीर-जयन्ती मनाना आप ही की बपौती नही है। मै रोपड़ जाऊँगा और स्वतन्त्रतापूर्वक जयन्ती मनाऊँगा।"

जैनी सज्जन आवेग में आकर बोले, "तो फिर रोपड के जैन आपका स्वागत नहीं करेंगे।"

मुनि जी ने शान्तिपूर्वक कहा, "मुझे स्वागत की चिन्ता नहीं है। मैं आप लोगों की इस भावना का विरोध करना चाहता हूँ कि महावीर-जयन्ती पर ऐसे व्यक्तियों को आमन्त्रित न किया जाय जो जैन-समाज से सम्बन्ध न रखते हों। मैं आप लोगों की विचार-अस्थिरता का विरोध करना चाहता हूँ।"

भटिण्डानिवासियों ने बात सुनी तो वे बोल उठे, "महाराज हमने ही आपसे रोपड की प्रार्थना स्वीकार करने को कहा था। अब हम अपनी वह प्रार्थना वापिस लेकर अपनी पुरानी विनती दोहराते हैं कि महावीर-जयन्ती आप भटिण्डा मनाएँ।"

भक्तों के जोर देने पर प्रकृति-पुत्र एवं प्रकाण्ड पण्डित मुनि अमृत चन्द्र जी ने महावीर-जयन्ती पर भटिण्डा पधारने की प्रार्थना स्वीकार कर ली और कुछ दिनों पश्चात् ही वे भटिण्डा की ओर चल पडे।

सामने फिर वही राह थी, जिससे वे कुछ दिनों पूर्व भटिण्डा से आये थे। महावीर-जयन्ती निकट थी इसलिए मुनि जी तेजी से भटिण्डा की ओर जा रहे थे। जहाँ पडाव होता, वहीं की जनता उन्हें रोकने का प्रयत्न करती, परन्तु वे अपने लक्ष्य की ओर दृष्टि लगाये थे।

भटिण्डा में भव्य स्वागत हुआ, जो मुनि जी के लिए साधारण बात हो गई थी क्योंकि वे जहाँ भी पहुँचते वहीं सहस्रों व्यक्ति स्वागत में पलके बिछा देते हैं। पर भटिण्डा-निवासी प्रत्येक बार स्वागत का नया ही अध्याय खोलते। कण्ठ-कण्ठ से मुनि जी की जय के शब्द निकल पड़े। नारियों के स्वागत-गान वातावरण में गूँज उठे और सभी भक्तों के नेत्रों में हर्ष ठाठें मारने लगा।

महावीर-जयन्ती का उत्सव आया तो सारा नगर सज गया। अमृत मुनि जी के मुख से भगवान् महावीर के उपदेश और मानव-कल्याण के लिए बनाये गये मार्ग की व्याख्या सुनने के लिए नर-नारी उमड पडे। कवियों ने महावीर स्वामी की विरुदावली गायी और मुनि जी ने मानव-धर्म पर महावीर स्वामी के विचारों को जनता के सामने रखा। धूमधाम के साथ महावीर-जयन्ती आई और चली गई। पर अमृत मुनि जी ने जनता के

हृदय पर महावीर स्वामी के उपदेशो का जो प्रभाव डाला वह अमिट है। वह कभी जाने वाला नही है।

भटिण्डा के भक्त जन चातुर्मास की विनती करने लगे पर मुनि जी पटियाला से विहार करने से पूर्व ही पटियाला निवासियों की विनती स्वीकार कर चुके थे, इसलिए उनके लिए भटिण्डानिवासियो की विनती स्वीकार करना सम्भव नही था।

वे चल पडे पटियाला की ओर। जनता अपने मुनि को विदाई देने के लिए बाजारो मे 'अमृत मुनि जी की जय, अमृत मुनि जी की जय' के नारे लगाती और धरती-आकाश गुंजाती चली। मुनि जी ने भटिण्डा-निवासियो को आशीर्वाद दिया और चल पडे। भुच्चो मण्डी, रामपुरा फूल, बरनाला, धुरी, नाभा, त्रिपुडी आदि क्षेत्रो मे विचरण करते हुए मुनि जी पटियाला पहुँच गये। हजारो नर-नारियो ने उनका हार्दिक स्वागत किया।

अमृत मुनि अथवा एक संस्था

मिश्री बाजार, गुड-मण्डी मे चातुर्मास का कार्यक्रम शानदार ढग पर आरम्भ हुआ। मुनि जी की व्याख्यान-माला के आरम्भ होने का समाचार सुनकर पटियालानिवासी दौड पडे अपने हृदय-सम्राट् मुनि अमृत चन्द्र जी के ओजस्वी व्याख्यान सुनने के लिए, उन व्याख्यानो को सुनने के लिए जो मुरदा दिलो को जीवन-दान देते है, जो पापयुक्त कर्मो मे लीन मानव को उसके वास्तविक कर्तव्यो का बोध कराते है, जो शान्ति और अहिंसा के मार्ग को प्रशस्त करते है, जिनमे ज्ञान होता है, शिक्षाएँ होती है, हास्य होता है और कथासार होता है और जिनसे पटियाला नगरी का प्रत्येक व्यक्ति भली-भाँति प्रभावित है।

धार्मिक प्रवचन हुए तो जैन-सभाई शरमाने लगे। इसलिए कि उनके किसी मुनि ने भगवान् महावीर के उपदेशो की इतनी विस्तृत, सुन्दर एव प्रभावशाली व्याख्या कभी नही की पर उनकी सभा ही इस महापुरुष का विरोध करती है जो जैन साधु-समाज से अलग होते हुए भी मानव को सभी अर्थो मे मानव बनाने के लिए महावीर भगवान् के उसूलो का निशि-दिन प्रचार करता है। अकेले व्यक्ति ने उस महान् कार्य को हाथ

मे ले रखा है जिसे सारा जैन साधु-समाज और जैन-सभाएँ मिलकर भी नही कर पाती, जिनके पास सभी साधन उपलब्ध है। पर इस महापुरुप की बात देखो कि स्वय ही अकेला ही सम्पूर्ण सस्था बना हुआ है और सारे जगत् को अपने ज्ञान की चुनौती देते हुए प्रचार मे रत है।

धार्मिक उपदेशो को धर्मपरायण जनता आत्म-विभोर होकर सुनती है और दूसरी ओर मुनि जी ने सार्वजनिक सभाओ मे सामाजिक विपयो पर भी भापण देना प्रारम्भ कर दिया। लोगो ने देखा कि मुनि जी सामाजिक विपयो पर बोलते है तो उनकी प्रत्येक बात श्रोताओ के मन मे उतरती जाती है। जिस कुरीति के विरुद्ध बोलते है, चिन्ता नही करते कि उनके किसी वचन से कौन वर्ग रुष्ट हो जायेगा। एक योद्धा रणवीर की भाँति जिस ओर चल पडते है उसी ओर दोपो का सहार-स. करते जाते है।

रामायण की कथा आरम्भ हुई तो सनातन-धर्मी प्रसन्न हो गये। पर मुनि जी रामायण की कथा करते हुए उसकी व्याख्या भी करते जाते है और जहाँ कोई ऐसी बात होती है जिस पर वे सहमत नही है उसे निर्भयतापूर्वक कह डालते है फिर चाहे कोई प्रसन्न हो अथवा रुष्ट। परन्तु उनकी प्रत्येक बात वजनदार होती है जो श्रोताओ के लिए मान्य हो जाती है। वे जो कहते है, उसके प्रमाण भी उनके पास है। जो बोलते है, उसे इस प्रकार कि सत्य स्वय सिद्ध होता जाता है।

यह है रामायण

उस दिन सनातनी परिवार मे जन्म लेने वाले अमृत मुनि जी ने रामायण की कथा आरम्भ की और वे उस पर टिप्पणी करने बैठे तो लोग चकित रह गये यह देखकर कि मुनि जी द्वारा रामायण की बुद्धि की कसौटी पर कसने से मर्यादापुरुपोत्तम राम तो उस युग के महान् आदर्श मानव सिद्ध हो ही जाते है, किन्तु रामायण के लेखको की भूल कही-कही राम के सम्बन्ध मे कुछ सन्देहो को जन्म अवश्य दे डालती है।

हिन्दुओ के लिए राम भगवान् है। राम के चरित्र को 'आदर्श' माना गया है, राम की कथा छोटे-छोटे बालको को उपदेश देने के लिए प्रयोग की जाती है, पर राम यदि तुलसीकृत रामायण के चरित्र-नायक राम

ही थे तो वे अपने युग के सफल शासक, ऐसे शासक जो पिता की आज्ञा को शिरोधार्य करके राजपाट से कुछ वर्षों के लिये अलग रहे और ऐसे शासक जिनमे तुलसीदास जी जैसे कवि भी प्रभावित थे। उपाध्याय श्री अमृत मुनि जी ने रामायण की कथा करते हुए जो कहा, वुद्धि तो उसे स्वीकार करती है पर धार्मिक कट्टरता और अन्ध-विश्वास वैसा सोचना पाप समझता है।

अमृत मुनि जी वोले, यह साधारण समझ की बात है कि किसी भी अपराधी को उसका अपराध बताए बिना दण्ड देना उचित नही है। किन्तु मर्यादापुरुपोत्तम राम ने वाली को बिना उसका अपराध बताये मारा और मारा भी छुपकर। छुपकर वार करना क्षत्रिय-धर्म का उल्लघन करना है। वल्कि उस युग के क्षत्रिय इसे अपने लिए कलक मानते थे और थी यह कायरता। यदि इसे रणनीति अथवा कूटनीति मान लिया जाय तो मर्यादापुरुषोत्तम राम भगवान् न होकर केवल एक शासक-मात्र, राजा समान रह जाते है जो शत्रु को परास्त करने के लिए मर्यादा आदि का कोई ध्यान नही रखते। उनके सामने उद्देश्य की पूर्ति का स्वार्थ रहता है, शास्त्र अथवा साधन का नही। राम ने वाली को सुपथ पर लाने की चेष्टा नही की और न ही उसे उसके अपराध का वोध कराया, वल्कि दो राजाओ के वीच हुए समझौते की भाँति ही सुग्रीव और राम का समझौता हुआ। उस समझौते के आधीन वाली का वध करने की योजना वनी। देखिए रामायण मे इसका सजीव प्रमाण मिलता है। वाली कहता है .

मैं वैरी सुग्रीव प्यारा।
कारण कौन नाथ मोहि मारा ॥

वाली के इन शब्दो मे ही राम के चरित्र पर एक वडा कटाक्ष मिलता है। यह बात दूसरी है कि राम ने वाली को अपने वार के लिए कोई अच्छा तर्क दे दिया हो। पर मर्यादापुरुषोत्तम का कर्तव्य था कि वे वार करने से पूर्व ही वाली को उसके अपराध का वोध कराते और फिर रघुकुल रीति के अनुसार रण की चुनौती देते।

श्रोताओं की गर्दन हिल गई स्वीकारोक्ति मे। पर राम को भगवान् मानने वाले लकीर के फकीर बगले झाँकने लगे। नगर मे चर्चा हो

गई कि अमृत मुनि जी रामायण पर आपत्ति-जनक समालोचना कर रहे हैं। पर मुनि जी ने चुनौती दे दी कि कोई उनकी आलोचनाओं को गलत सिद्ध करे।

रामायण की कथा चलती रही। ब्राह्मण वर्ग कथा में इसलिए विशेष तौर पर आने लगा कि उनके राम के विषय में मुनि जी आगे क्या-क्या कहते हैं।

लवकुश-काण्ड चल रहा था। मुनि जी ने रामायण की चौपाइयाँ पढ़ीं

बोले कुश सुन बालि कुमारा। तव बल विदित जान ससारा ॥
पितहिं मराई मातु पर हेली। सकल लाज आये तुम ठेली ॥
सो फल लेहु समर महि आजू। त्यागहु सकल कलक समाजू ॥

बोले, यह चौपाइयाँ ही भगवान् राम के चरित्र की कटु आलोचना है। बाली ने सुग्रीव की धर्म-पत्नी को अपने घर में डाल लिया, तो मर्यादापुरुषोत्तम राम न्याय के नाम पर सुग्रीव की सहायता के लिए दौड़ पड़े। और क्षत्रियों की मर्यादा का उल्लंघन करके भी उन्होंने बाली का वध किया। परन्तु उनके मित्र शासक सुग्रीव ने बाली के राज्य के साथ-साथ उसकी विधवा धर्म-पत्नी को भी बलात् अपने घर में डाल लिया परन्तु रामचन्द्र का धर्म उस समय जागृत नहीं हुआ, उस समय सुग्रीव पर उन्हें क्रोध क्यों नहीं आया। बाली के सुपुत्र अंगद की निर्लज्जता देखिए, उसकी माँ को अपने घर में डालने वाले सुग्रीव और उनके मित्र राम जिनकी सहायता से वह यह सब कुछ करने में समर्थ हुआ, की सहायता करने के लिए अंगद तैयार हो गया। कुश ने उसे समाज का कलंक कह कर पुकारा।

और फिर रामचन्द्र के दूसरे सहयोगी हैं विभीषण। वे विभीषण जो सचाई के लिए अपने भाई ही नहीं वरन् अपने राष्ट्र के शासक रावण से साथ भी विद्रोह करके श्री रामचन्द्र जी के साथ मिल गये। पर केवल अपनी स्त्री को पाने के लिये राम ने विभीषण से समझौता किया। उसे शरण में लिया, इसलिए नहीं कि उन्हें विभीषण पर दया आ गई थी, वरन् इसलिए कि विभीषण के सहयोग से ही वे रावण को परास्त कर सकते थे। विभीषण ने शासन-रहस्यों का पता देकर लंका को परास्त

कर दिया। रावण के परास्त होने के पश्चात् उसने शासन-सूत्र अपने हाथ मे लेकर अपने भाई की पत्नी मन्दोदरी को भी अपने घर मे डाल लिया। उस समय मर्यादापुरुषोत्तम की भुजाओ मे गरम लोहू नही दौडा, उस समय उनका न्याय खर्राटे भर रहा था।

लवकुश-काण्ड मे देखिये, लव ने विभीषण को ललकारा·

सुन शठ समरहि बन्धु जुझाई। शत्रुहि मिल्यो परम कदराई॥
पिता समान बन्धु बड़ तोरा। त्रिया तासु लै धरि बरजोरा॥
पापी मात कहेउ कै वारा। सो पत्नी यह धर्म तुम्हारा॥
बूड़ि मरहु सागर में जाई। मरु गरु काट अधम अन्याई॥

राम को भगवान् मानने वालो मे तहलका मच गया। सभी स्थानो पर अमृत मुनि पर क्रोध की वर्षा होने लगी। पर बुद्धिजीवी वर्ग मे मुनि जी की प्रतिष्ठा मे चार चाँद लग गये।

सभा-स्थल खचाखच भरा है। लोग उत्सुकता से मुनि जी के व्याख्यान की प्रतीक्षा कर रहे है। मुनि जी ने आज फिर रामायण की कथा आरम्भ की। पर आरम्भ करने से पूर्व बोले, मर्यादापुरुषोत्तम राम के सम्बन्ध मे मेरी टिप्पणी से कुछ लोग विचलित हो गये है, और वे इसे अपने धर्म पर प्रहार समझ रहे है। मै चुनौती देता हूँ कि कोई भी ब्राह्मण आये और मुझ से शास्त्रार्थ कर ले।

कथा चलती रही और श्रोता मुनि जी की प्रत्येक बात को एकाग्रचित होकर सुनते रहे। इतना स्पष्ट वक्ता उन्होने आज तक नही देखा था, जो निर्भय होकर अपने विचारो को प्रगट करता हो। मुनि जी ने कथा के अत मे पुन. चुनौती दी, आये कोई शास्त्रार्थ करे।

अव पटियाला मे बस एक ही विषय था, जिस पर लोग वाते करते, अमृत मुनि और उनकी रामायण पर टिप्पणी। चारो ओर शोर था पर किसी का साहस नही कि उनसे शास्त्रार्थ करे, उनके बुद्धिसगत तर्को की काट भला किसके पास थी। यह वात दूसरी है कि दो और दो को कोई पॉच ही माने जाय और तर्क का प्रश्न आये तो वह उसे अपने विश्वास प प्रहार माने। ब्राह्मण वर्ग मुनि जी के रामायण-पाठ पर चिन्ता प्रगट कर लगा। उनके धर्म के वचने का कोई रास्ता ही उन्हे सुझाई न देता वस 'खिसयाई विल्ली खम्बा नोचे' वाली कहावत चरितार्थ क

सियापा करने और क्रोध आता तो मुनि जी को कोस लेते। पर एकान्त मे उनके मन मे भी प्रश्न उठते, कही मुनि जी ही ठीक न कह रहे हो। किन्तु ऐसा सोचना तो पाप है, यह सोच कर मन मार लेते। व्याख्यान चल रहा था। हजारो व्यक्ति, नर और नारी उपस्थित थे। सनातनधर्मियो के अन्ध-विश्वास पर बात आ गई। मुनि जी बोले, "कितने ही लोग सत्य-नारायण की कथा करवाते है। पण्डित जी आते है और सत्यनारायण की कथा आरम्भ कर देते है। धर्मभीरु लोग बडी श्रद्धा से एकाग्रचित्त हो कर कथा सुनते है। पुण्य कमाने का साधन तो है सत्यनारायण की कथा, पर पडित जी बाँचने बैठ जाते है सत्यनारायण की कथा की महिमा। जैसे, एक लकडहारा था, वह रोज लकडी बीनकर लाता था। उसने सत्यनारायण की कथा सुनी और उसके भाग्य के बन्द द्वार खुल गये। सत्यनारायण की कथा के नाम पर लकडहारा-कथा होने लगती है। उससे क्या पुण्य कमाते है, हमारी समझ मे तो यह बात आती नही।

ब्राह्मण और सत्यनारायण की कथा के पुजारी लज्जित हो गये।

बात हिन्दुओ के त्योहारो पर आ गई। प्रकृति-पुत्र बोले, रामायण इस बात की साक्षी है कि असौज तक तो सीता का पता भी नही चला था।

किष्किन्धा काण्ड मे देखिये——रामचन्द्र जी लक्ष्मण जी से कहते है.

वर्षा विगत शरद ऋतु आई, देखहु लक्ष्मण परम सुहाई।

और आगे चल कर कहते है

वर्षा गत निर्मल ऋतु आई, सुधि न तात सीता की पाई।

अर्थात् वर्षा ऋतु समाप्त हो गई और शरद् ऋतु आगई पर अभी तक सीता का पता नही चला। पर हिन्दू असौज में ही राम-विजय उत्सव मनाने लगते है। रावण उन्ही दिनो फूंक दिया जाता है। इसलिए दशहरा का त्यौहार गलत समय मे मनाया जाता है। पर किसी को पता नही, क्या हो रहा है और क्या होना चाहिए। अपने को शास्त्रो के ज्ञाता मानने वाले ब्राह्मणो ने जो पत्रो मे लिख मारा, वही करोडो व्यक्तियो का निर्णय बन गया। यह अन्ध-विश्वास हमारे राष्ट्र को आज इस स्थान पर ले आया है कि राष्ट्र के पुनर्निर्माण की बात सोचते ह पर

हम अभी तक अन्ध-विश्वासों से उसी प्रकार चिपटे है जैसे बन्दरी अपने मृत छोने के शव को महीनो अपनी छाती से चिपकाये फिरती है।"

मुनि जी ने हिन्दू-धर्म की मान्यताओ की शव-परीक्षा (पोस्ट मार्टम) की तो ब्राह्मणो मे क्षोभ की लहर दौड गई पर साधारण जनता ने समझा कि मुनि जी ने उनकी आँखो पर बँधी पट्टी उतारने का कार्य किया है।

राज्य-ज्योतिषी का पत्र

उन्ही दिनो मुनि जी मोतीबाग की ओर भ्रमणार्थ जा रहे थे कि एक व्यक्ति ने उन्हे एक परचा लाकर दिया। वह बोला कि "राज्य-ज्योतिषी प० मुलखराज जी ने कहा है कि आप इस परचे पर लिखे प्रश्न का उत्तर दे।"

प्रश्न सस्कृत मे लिखा था। मुनि जी ने प्रश्न पढा और कहा कि इसका उत्तर आप प्रात ले जाना, मै वापिस आकर लिख दूंगा।

उक्त व्यक्ति ने कहा कि उत्तर लिखने की क्या आवश्यकता है, सामने ही प० जी का घर है आप स्वय ही उन्हे उत्तर दे दे।

जिस दिशा मे मुनि जी भ्रमणार्थ जा रहे थे, उसी ओर प० मुलखराज जी का घर था। मुनि जी ने सोचा कि उनसे बात ही कर ली जाय। ज्योही वे बैठक की ओर गये, प० मुलखराज जी देखते ही बिखर गये और लगे जैन-धर्म और जैन-मुनियो को गालियाँ देने। उन्होने भडक कर कहा, "जैन मुनि जानते ही क्या है।"

अमृत मुनि जी ने आवेश को पास भी न फटकने दिया। बोले, "आप स्वय तो अपनी योग्यता पर दृष्टि डाले। आप सस्कृत के विद्वान् कहलाते है पर सस्कृत भाषा का आपको कितना ज्ञान है यह इस परचे पर लिखे प्रश्न से ज्ञात हो जाता है। आप प्रश्न भी शुद्ध नही लिख पाये।"

फिर क्या था प० मुलखराज जी क्रोधाग्नि से झुलसने लगे। उन्हे अपने भाषाशास्त्री होने पर अभिमान था। अभिमान मे आकर बोले, "यदि मेरे प्रश्न मे कोई भाषासम्बन्धी दोष निकाल दे तो मै अपनी गरदन कटवा दूं।"

मुनि जी ने कहा कि "किसी दूसरे के पास जाने की क्या आवश्यकता, आप अपने शिष्यो से ही पूछ लें।"

पास ही मे विराजमान शिष्य-मण्डली को मुनि जी ने वह परचा दिखाया। शिष्यो ने पढा और बोले, "अशुद्ध तो अवश्य है पर यह अशुद्धि लिखने मे भूल के कारण हो गई होगी।"

प० मुलखराज जी के मुख पर स्याही-सी पुत गई। मुनि जी व्यग्य कसने मे अद्वितीय है। शिष्यो से बोले, "तो फिर काली देवी का त्यौहार आ रहा है, अब की बार बलि के लिये प० जी को ही ले जाइये।"

मुनि जी ने उन्हे शास्त्रार्थ के लिए चुनौती दे दी और कह दिया कि वे वेदो अथवा किसी भी शास्त्र को लेकर किसी भी धार्मिक विषय पर शास्त्रार्थ कर ले।

प० मुलखराज जी ने आवेग मे आकर चुनौती स्वीकार कर ली।

और ये हैं मण्डलेश्वर

भ्रमण से लौटते समय वर्षा आ गई। वे छाया की खोज मे हनूमान् जी के मन्दिर मे चले गये। वहाँ सनातन धर्म के मण्डलेश्वर प० ओकारानन्द जी विराजमान थे। मुनि जी की चर्चा चारो ओर थी ही। बातो-ही-बातो मे परिचय हो गया और फिर विचार-विनिमय होने लगा जो वाद-विवाद मे परिणत हो गया। ओकारानन्द जी को अपनी योग्यता पर अभिमान था। धार्मिक विषयो और साधुवृत्ति तक विवाद पहुँच गया।

मुनि जी ने किसी बात पर कह दिया, साधु यदि समाज को कुछ शिक्षा देना चाहते है तो पहले स्वय उन्हे शिक्षित होना चाहिये। जो साधु शिक्षित नही, जिन्हे भाषा का ज्ञान नही, जिन्होने स्वय शास्त्रो का अध्ययन नही किया वे जनता को क्या उपदेश दे सकते है।"

बात यह थी कि मण्डलेश्वर जी स्वय शुद्ध हिन्दी नही बोल पाते थे। जहाँ गड्ढा होता है वहाँ पानी भरता ही है। उन्होने आवेश मे आकर कह दिया, "साधुओ को शिक्षा की कोई आवश्यकता नही। उनके पास ब्रह्मज्ञान ही इतना होता है कि वे ससार भर को शिक्षा दे सकते है।"

"ज्ञान तो कही आकाश से नही टपकता। आकाश से जैसे इस समय पानी बरस रहा है, ऐसे ही ज्ञान बरसता हो तो दूसरी बात है।

कहा, "सर्वोदय का जो आधार है, मै उसी का प्रचार तो करता हूँ।"

"पर आप ३ वर्ष, केवल ३ वर्ष तो भूदान के लिये ही दे दे।" जाजू जी बोले।

मुनि जी बोले, "भूमि-दान योजना है तो बहुत ही सुन्दर, पर इसे सफल बनाने के लिये सर्वप्रथम उन मानवो की आवश्यकता है, जो भूदान योजना मे सहयोग देना तथा उसे सफल करना अपना कर्त्तव्य समझते हो। यद्यपि आज लाखो एकड भूमि दान मे ली जा चुकी है, किन्तु यह अनुमान लगाना बहुत ही कठिन है कि दान मे आई हुई भूमि मे से कितनी भूमि किसानो के काम की है, अर्थात् उपजाऊ है। आज तो लोग अधिकतर उस भूमि को दान मे देते है जो उनके किसी काम की नही है। अधिक भूमि वाले व्यक्ति यदि 'बॉट कर खाने' के सिद्धान्त को अपनाने की सोच ले तो फिर भूमिदान योजना शीघ्र ही सफल हो सकती है। भूमि-दान के लिये स्वतन्त्र प्रचार की आवश्यकता है। यह प्रचार तभी सम्भव हो सकता है जब जनता अपने कर्तव्य को पहचाने। इसलिए इस आन्दोलन की सफलता के लिये मानवता के प्रचार की अत्यन्त आवश्यकता है।

"मानवता का प्रचार मेरे जीवन का उद्देश्य ही है अत सर्वोदय समाज की वैधानिक रूप-रेखा से बाहर रह कर भी मै उसके लिए बहुत कुछ कर सकता हूँ।"

श्री उपाध्याय जी के इस स्पष्ट विवेचन को सुनकर श्री जाजू जी वडे ही प्रभावित हुए। अन्त मे अनेक जन-जीवनोपयोगी कार्यक्रमो के उपरान्त यह सभा सानन्द समाप्त हो गई।

देखते-ही-देखते अमृत जन्माष्टमी निकट आ गई। कृष्ण-जन्माष्टमी के नाम से तो इस अवसर पर पहले से ही धर्मपरायण हिन्दू जनता उत्सव मनाती है पर इस वार अमृत-जन्माष्टमी के नाम से अष्टमी पर एक विशेष समारोह मनाने की तैयारियाँ हुईं। विभिन्न विचारो और मतो के लोग एक मच पर आये और उन्होने मानवधर्म-प्रचारक श्री अमृत मुनि जी के जीवन को जनता में प्रचारित करने और उससे मानवता की शिक्षा ग्रहण करने के लिए विशेष उत्सव मनाया। इसी अवसर पर मानव-धर्म की केसरिया पताका लहराने का कार्यक्रम वना और उसके लिए श्री वृप-

भान जी को जो उन दिनो शिक्षा-मन्त्री के पद को सुशोभित कर रहे थे, निमन्त्रित किया गया। केसरिया पताका फहराने के उपरान्त सहस्रो नर-नारियो की महती सभा मे भाषण देते हुए श्री वृषभान जी ने कहा कि आज भारत को अमृत मुनि जी जैसे महान् सन्तो की आवश्यकता है जो सम्प्रदायवाद को समूल नष्ट करके मानव को सच्चा मानव बना सके। उन्होने कहा कि अमृत मुनि जी के जीवन ने उन्हे बहुत प्रभावित किया है। मुनि जी के जीवन और उनके उपदेशो पर कितने ही अन्य सज्जनो ने भाषण दिये और कविता-पाठ किये। अन्त मे बालको को श्री वृषभान जी ने पुरस्कार वितरण किये और सभा की समाप्ति पर मिठाई बाँटी गई।

एक चमत्कार

मुनि जी की ख्याति सारे पटियाला नगर मे फैल गई थी और उनके गुणो के सम्बन्ध मे प्रत्येक परिवार मे चर्चा चल निकली थी। श्री फकीर-चन्द्र (कसेरा) ने जब सुना कि मुनि जी किसी के उन्हें बिना दिखाये लिखे प्रश्न को बता देते है, मुनि जी की परीक्षा लेने के विचार से उनके पास पहुँचे और उनसे पूछ बैठे कि यदि मै आपसे दूर जाकर कोई प्रश्न लिखूँ तो क्या आप उसे बता सकते है ?

मुनि जी ने कहा कि हाँ मै बता तो सकता हूँ पर इस क्रिया को मै प्रदर्शन के लिए प्रयोग नही करता। श्री फकीरचन्द्र जी के मन मे फिर भी शका बनी रही। मुनि जी ने उनके चेहरे पर उतर आये हृदय के भाव को पढ लिया और एक दिन उन्होने उनसे प्रश्न किया कि आप कौन-कौन-सी भाषा जानते है ?

वे बोले, "उर्दू और अँग्रेज़ी।"

मुनि जी ने उन्हे दूर जाकर किसी भी भाषा मे प्रश्न लिख लेने को कहा। श्री फकीरचन्द्र जी ने दूर जाकर प्रश्न लिखा और मुनि जी की आज्ञानुसार उस परचे को अपनी जेब मे रखकर वे अपनी दूकान पर चले गये।

दूसरी बार जब आये तो मुनि जी ने उनका प्रश्न बता दिया। फकीर-चन्द्र ने अपना प्रश्न मुण्डिया भाषा मे लिखा था।

यह बात दूर तक फैल गई।

उन्ही दिनो जैन-समाज मे श्री रघुवरदयाल जी महाराज अपने शिष्यो के साथ चातुर्मास मना रहे थे। यह बात उन तक भी पहुँची। मुनि अमृतचन्द्र जी प्राय उनके पास जाया करते थे। एक दिन श्री रघुवर-दयाल जी महाराज के शिष्य अभय मुनि जी ने भी उनकी परीक्षा लेनी चाही और उन्होने भी दूर जाकर प्रश्न लिखा। श्री अमृत मुनि जी ने प्रश्न बता दिया तो वे आश्चर्य-चकित रह गए। ऐसी घटनाएँ मुनि जी के जीवन मे कितनी ही बार हो चुकी है, जिनका यदि हम यहाँ पूर्ण वर्णन करने लगे तो एक विशाल ग्रथ बन जाय।

पर शनै शनै वर्षा ऋतु समाप्त हो गई और चातुर्मास की समाप्ति भव्य समारोह द्वारा हो गई। चातुर्मास की समाप्ति पर ही मुनि जी के विहार का कार्यक्रम बन गया। भटिण्डानिवासी चातुर्मास मे ही बार-म्बार भटिण्डा पहुँचने की विनती कर चुके थे इसलिए मुनि जी ने भटिण्डा की ओर विहार किया।

विदाई समारोह को पटियाला निवासी कभी न भूल पायेगे। सहस्रो व्यक्तियो का समारोह पर जमाव मुनि जी के गुणो का गान, कविताएँ, भाषण और अभिनन्दन-पत्र—ये थे विदाई समारोह के आकर्षण। विहार करते समय सहस्रो नर-नारी 'अमृत मुनि जी की जय' के गगनभेदी नारे लगाते हुए मुनि जी के साथ बाजारो से निकले और त्रिपुडी तक विदा करके आये। पटियाला के इतिहास मे कदाचित् प्रथम बार एक मुनि के प्रति इतनी भारी भीड ने ऐसी भव्य श्रद्धा प्रगट की थी। अमृत मुनि जी ही एकमात्र सन्त है जिनका एक-एक शब्द जनता के हृदय को स्पर्श करता जाता है। वे ही एकमात्र ऐसे मुनि है जिन्होने प्रत्येक धर्म के अनुयायियो पर अपना प्रभाव डाला है।

त्रिपुडी, नाभा, भवानी गढ, भिक्खी, मानसा आदि क्षेत्रो मे भ्रमण करते हुए प्रकृति-पुत्र १२ दिसम्बर सन् १९५४ को भटिण्डा पहुँच गए। सहस्रो व्यक्तियो ने उनका शानदार स्वागत किया।

अभी कुछ ही दिन हुए थे मुनि जी को भटिण्डा मे आये हुए कि वे अस्वस्थ हो गये। अस्वस्थ ऐसे हुए कि कई बार मृत्यु बहुत ही निकट दिखाई दी। पर कभी भी यमदूत उन्हे इस ससार से ले जाने मे सफल

न हो सके क्योंकि अभी इस देश को और मानव-समाज को उनकी बहुत आवश्यकता है।

ससार में ऐसे महापुरुष कम ही हुए हैं जिन्होंने अपना सारा जीवन मानवता की सेवा के लिए अर्पित कर दिया हो।

एक बार पुन श्रमण सघ के नेताओ को ध्यान आया और उन्हे श्री अमृत मुनि जी की सघ मे कमी खटकने लगी।

पुन सघ के पदाधिकारियो ने दौड़-धूप आरम्भ कर दी। आचार्य श्री कपूरचन्द्र जी और गुरुदेव कस्तूरचन्द्र जी महाराज को उन्होने श्रमण सघ मे सम्मिलित होने के लिए रजामन्द कर लिया और श्रमण सघ के पजाब मन्त्री श्री शुक्लचन्द्र जी महाराज ने भटिण्डा पधार कर इस विषय मे श्री अमृतचन्द्र जी से भी वार्ता की।

अमृत मुनि जी ने कहा कि मै एकता का सदैव से इच्छुक हूँ। फूट डालने वाले किसी भी धर्म के लिए लाभदायक नही हो सकते। मै प्रत्येक उस कार्य मे सहयोग दे सकता हूँ जो मानव-जगत् के बीच भेदभाव की दीवारो को गिराकर एकता की ओर नेतृत्व करने के लिये उचित हो। पर मै मनमुटाव और ईर्ष्या-द्वेष के विषाक्त वातावरण में अपने को फँसाना नही चाहता। और गुरुदेव कस्तूरचन्द्र जी के पद-चिह्नों से विमुख भी नही हो सकता।"

कितने ही जोड-तोड चलते रहते है पर अमृत मुनि जी की दृष्टि अपने लक्ष्य पर रहती है। उस लक्ष्य पर जो मानवता का लक्ष्य है, एकता का लक्ष्य है। कितने ही दोषी आज भी उनको अपने सगठन मे रखने से भयभीत है और अमृत मुनि प्रत्येक एकता की अपील को स्वीकार करते हुए भी पाप, भ्रष्टाचार और असत्य के विरुद्ध सघर्परत है। मानवता के बन्धन उन्हे प्रिय है पर सम्प्रदायवाद के नही। वे स्वतन्त्रता के पुजारी है, पर उच्छृङ्खलता के नही।

उन्नीसवाँ अध्याय

महावीर-जयन्ती

दिन बीतते जाते है। गेहूँ के दानो के गर्भ से जो अकुर फूटे थे, कभी वे पीले धागे के समान भूमि से निकले थे और धीरे-धीरे उनमे कलई रग उभरा था और फिर धानी, पर वे अब गहरे हरे रग मे लहलहा रहे है। ज्यो-ज्यो समय के पाँव आगे बढ़ रहे है, नन्हे-नन्हे पौधे होश सम्भालते जाते है। जैसे धरती माँ के स्तनो से दूध पी-पीकर ये बालक विकसित हो रहे है। खेतो पर हरियाली चटक-मटक के परिधान पहने किसी मधुर स्वप्न मे लीन है।

श्री अमृत मुनि जी भटिण्डा मे है। सट्टा बाज़ार मे शिष्य-मण्डल के कार्यालय मे मुनि जी और उनके सहयोगी गौतम मुनि जी पास-पास पडे दो तख्तो पर विराजमान है। लोग आते है चरण छूते है, चरणो की वन्दना करते है। उनके ज्ञान-कोष के कुछ रत्न लेकर चले जाते है। नारियो के झुण्ड-के-झुण्ड श्री अमृत मुनि जी के दर्शनार्थ पहुँचते है।

कितने ही युवक उनसे धार्मिक तथा सामाजिक ज्ञान प्राप्त करते है, कितनी ही कन्याएँ उनसे हिन्दी-साहित्य की शिक्षा लेने पहुँचती है, किसी को परीक्षा की तैयारी करनी है, तो वह मुनि जी के ज्ञान से लाभान्वित होने का प्रयत्न कर रही है। किसी को साहित्य के प्रति अनुराग है, उसका भी मुनि जी ही पथ-प्रदर्शन करते है।

श्री अमृत मुनि जी सभी के गुरु, नेता और सरक्षक है, वे प्रत्येक को सहारा देते है।

किसी को कविता करने की सूझी तो श्री अमृत मुनि जी उनके 'कवि गुरु' के रूप मे होगे, किसी को कहानियाँ लिखने का शौक हुआ तो प्रकृति-पुत्र उसका मार्ग प्रशस्त करने के लिये उसे शिक्षा भी देगे और सशोधन का कार्य, और कुछ अर्थो मे सम्पादन का कार्य भी करेगे।

आर्य-समाजी हो या देव-समाजी, प्रकृति-पुत्र को सभी मानते है।

उनके इतने-इतने रूप देखकर कोई भी चकित रह जायेगा, वे क्या-क्या है और क्या-क्या नही ? कितने यही सोचते रहते है ।

हाँ, एक युवक ऐसा भी है, जो भौतिकवादी है पर वह भी उनके चरणो का दास है । एक है जो उन्हे 'रूहानी बेटे के रूहानी बाप' के रूप मे पूजते है, किसी दूसरे नगर से उनके दर्शनार्थ आते है ।

एक दिन उन्होने "जन-जीवन" पत्र के सम्पादक को कहा, "जन-जीवन" मे निर्भीक होकर लिखो । अपने विचारो का गला मत घोटो।"

सम्पादक बोला, "परन्तु मुझे तो मालिक की इच्छानुसार लिखना है । सर्विस जो करनी ठहरी ।"

प्रकृति-पुत्र ने गम्भीर मुद्रा मे कहा, "जो सम्पादक अपनी आत्मा को बेच कर लिखता है वह सच्चा सम्पादक नही है । जो अपनी लेखनी को पेट के लिए कुछ सिक्को के बदले बेच डालता है वह लेखक नही, साहित्यिक क्षेत्र का कलक है । यदि नौकरी के लिए लेखनी बेच डाली तो फिर भांड और सम्पादक मे अन्तर ही क्या हुआ ?"

प्रकृति-पुत्र दासता को पसद नही करते, फिर चाहे वह दासता किसी भी रूप मे हो । वे स्वतन्त्रता और मुक्ति के पथप्रदर्शक है ।

कभी-कभी तो ऐसी बाते हो जाती है कि लोग चक्कर मे पड जाते है । अब आप मेरी ही बात लीजिए ।

मै भटिण्डा पहुंचा । तो जन-जीवन के मैनेजर सब से पहले मुझे 'गुरु जी' के पास लाए । श्री अमृत मुनि जी को कितने ही लोग 'गुरु जी' ही कह कर पुकारते है । मैने कार्यालय मे पग रखा तो देखा एक सौम्य मूर्ति को, आत्मविश्वास और तेज एक दूसरे का आलिगन किये उनके मुख-मण्डल पर विराजमान थे । मुझे उनके बारे मे कुछ पता न था । अभी मै सम्भल कर बैठ भी न पाया था कि श्री अमृत मुनि जी ने तुरन्त कहा, "कौन ? क्या बाबूसिह चौहान ।"

स्वीकारोक्ति मे मेरी गरदन तो हिल गई । पर अनायास ही उनके मुख से अपना नाम सुनकर चकित रह गया । मैने मुनि जी के कभी दर्शन न किये थे, परिचय का तो प्रश्न ही नही उठता, और न उस दिन मेरे पहुंचने का ही कार्यक्रम था ।

तो हाँ, दिन बीतते जा रहे थे, जीवन की घडियाँ कम होती जा रही थी। राम और लक्ष्मण की जोडी, अमृत मुनि और गौतम मुनि भटिण्डा मे थे, तो राम-लक्ष्मण की सज्ञा इन दोनो मुनियो के लिए ठीक नही जंचती, क्योकि ये तो वैरागी है, सन्त है, और राम ठहरे गृहस्थी, राजा के पुत्र और स्वय राजा भी। तो क्या महावीर और गौतम कहे ? पर गौतम भगवान् महावीर के शिष्य थे, और गौतम मुनि अमृत मुनि के गुरु भाई है। कृष्ण और अर्जन कहे, तो गौतम मुनि के पच व्रतधारी सन्त होने के कारण अर्जुन नाम नही जंचता और कृष्ण थे गोपियो के कृष्ण-कन्हाई। जिनकी न जाने कितनी रानियाँ बताई जाती है। महात्मा गाँधी और विनोबा भावे की उपमा भी ठीक नही रहेगी। मै बस यही कह सकता हूँ कि यह तो निराले सन्तो की निराली जोडी ही है।

धीरे-धीरे एक मास के उपरान्त दूसरा मास व्यतीत हो गया और उधर शिष्य-मण्डल के प्रधान सेठ रोशनलाल जी मलोट ने 'गुरु-भवन' का निर्माण आरम्भ करा दिया। और मुनि जी को, जो अस्वस्थ होते हुए भी भटिण्डा से प्रस्थान कर जाने के लिए तैयार थे, गुरु भवन के निर्माण काल तक भटिण्डा मे ही विश्राम करने को विवश कर दिया। और दूसरी ओर महावीर-जयन्ती भी निकट आ गई।

भटिण्डा मे महावीर-जयन्ती के उत्सव की दागवेल अमृत मुनि जी की ही डाली हुई है। कई वर्ष की बात है, जब मुनि जी भटिण्डा मे पधारे थे और महावीर-जयन्ती निकट आगई थी, उन्हे पता चला कि भटिण्डा मे कितने ही जैन साधु और परिवारो के होते हुए भी महावीर-जयन्ती उत्सव नही मनाया जाता। इसलिए उन्होने वही रुक कर उत्सव मनवाया। एक प्रकार से महावीर जयन्ती उत्सव का उद्घाटन अमृत मुनि जी की 'सन्तवाणी' से हुआ था और उस उद्घाटन ने ही भटिण्डा मे महावीर-जयन्ती उत्सव की प्रथा चला दी। इस वर्ष भी जयन्ती की तैयारियाँ ज़ोर-शोर से आरम्भ हुई। जैन स्थानक मे श्रमण सघ पजाब के मत्री महात्मा शुक्लचन्द्र जी महाराज विराजमान थे। उनके सुप्रयत्नो से जैनियो के मन मे महावीर-जयन्ती के उत्सव को सयुक्त रूप से मनाने की इच्छा जागृत हुई। क्योकि अब तक यह उत्सव दो दलो की ओर से मनाया

जाता था, एक दल था जैनियो का और दूसरा भटिण्डा शिष्य-मण्डल का।

जब मुनि जी के सामने सयुक्त रूप से जयन्ती मनाने का प्रस्ताव आया, उन्होने सहर्ष स्वीकार कर लिया। वोले, "विखरी शक्ति एक ही सूत्र मे वाध दी जाय तो अच्छा ही है। सव मिलकर भगवान् महावीर की जयन्ती मनाएँ इस से वढकर और हर्ष की वात हो ही क्या सकती है? क्योकि भगवान् महावीर किसी की वपौती नही है। जयन्ती के अवसर पर भी यदि उनके अनुयायी मनोमालिन्य से दूर न हुए तो अच्छी वात न होगी।

उत्सव की तैयारी के लिए सयुक्त कमेटी वनी और श्री अमृत मुनि जी के सरक्षण मे वालको और युवको ने तैयारियाँ आरम्भ कर दी।

पाँच अप्रैल को महावीर जयन्ती भी आगई। उससे पहले दिन शानदार जलूस निकला और जयन्ती से दो-तीन-दिन पूर्व से ही जैन स्थानक मे श्री अमृत मुनि जी के व्याख्यान होने आरम्भ हो गये थे।

जयन्ती के दिन नगर मे धूम-धाम थी। रात्रि को एक विराट् सभा हुई।

वावा जैराम जी की धर्मशाला में सभा-मण्डप था। शामियाने की छत मे विजली के कुमकुमी, एक नही वीसो की सख्या मे ज्योति वर्षा कर रहे थे। एक ओर स्त्रियो की भीड थी तो दूसरी ओर पुरुषो की। और सामने लगा था मच। मच ही के पास दाई ओर एक ऊँची मेज पर छै मुनि वैठे थे। उन मुनियो मे प्रथम थे श्री शुक्लचन्द्र जी महाराज, दूसरे उनके शिष्य और तीसरे कविरत्न उपाध्याय श्री अमृतचन्द्र जी महाराज, उनके पास ही गौतम मुनि और फिर दूसरे सन्त।

सभा आरम्भ हुई और युवको तथा युवतियो ने मच पर आकर कविता-पाठ तथा व्याख्यान आरम्भ कर दिये। कितने ही युवक आये मच पर और उन्होने श्री अमृत मुनि जी की जय के नाद वुलन्द किए। युवतियाँ आई तो श्री अमृत मुनि जी की जय-जयकार से उन्होने अपनी कविता अथवा व्याख्यान आरम्भ किया। श्री अमृत मुनि जी के साथ ही महात्मा शुक्ल-चन्द्र जी महाराज की भी जय-जयकार हो रही है। और महावीर स्वामी की जय तो सभी वोलते है। पर एक वात स्पष्ट थी कि भीड मे

सबकी ऑखे श्री अमृत मुनि जी और श्री शुक्लचन्द्र जी महाराज पर टिकी थी। सारे कार्य-क्रम मे एक बात स्पष्ट थी कि श्री अमृत मुनि जी के शिष्य और शिष्याएँ सबसे आगे थी।

ध्वनि विस्तारक यत्र (लाउड-स्पीकर) की ध्वनि गूँज रही हैं, और श्रोता शाति से कार्यक्रम को सुन रहे है, वक्ता आते है और महावीर भगवान् के जीवन पर प्रकाश डालकर चले जाते है। पर बारबार लोगों की दृष्टि मुनियो की ओर उठ जाती है।

प्रतीक्षा की घडियॉ समाप्त हुई और ध्वनि-विस्तारक यत्र शुक्ल-चन्द्र जी महाराज के निकट बैठे श्री अमृत मुनि जी के सामने ले जाकर रख दिया गया।

व्याख्यान आरम्भ हुआ तो लोग गद्गद हो उठे। कण्ठ से शब्दो की नही, अमृत-कणो की वर्षा हो रही थी। व्याख्यान मे ज्ञान था, कथा थी, भगवान् महावीर के जीवन और उनके उपदेशो का दिग्दर्शन था और थी ललकार, मानव को मानव-धर्म स्वीकार कर महावीर स्वामी के उप-देशो के पालन करने का आवाहन था। उन्होने व्याख्यान के बीच मे कहा, मै देख रहा हूँ कि बालको के कविता-पाठ पर अथवा व्याख्यान पर लोग पुरस्कार वितरण कर रहे है। मै भी इस सभा से कुछ लेकर जाना चाहता हूँ। एक ऐसा व्यक्ति सामने आये जो आज से खादी पहनने का व्रत ले। यही मेरी शिक्षा है। यही मेरा पुरस्कार है। सदाचार और सादगी पर बोलते हुए उन्होने यह आवाहन किया ही था कि एक व्यक्ति आया और फिर दूसरा, उन्होने खादी पहनने का व्रत लिया। यह 'अमृत वाणी' का चमत्कार था।

सादगी पर बोलते हुए ही उन्होने कहा कि "श्रृगार पाप नही है। हिन्दू नारी को सोलह श्रृगार करने की शास्त्र आज्ञा देते है। त्रिजटा का नाम त्रिजटा इसी लिए था कि उसकी कमर पर तीन वेणी झूलती थी, वह तीन वेणियो मे अपने केश सवारती थी। फिर आज जो युवतियाँ दो वेणी रखती है उन्हे हम कैसे बुरा कह सकते है। जिन सोलह श्रृगारो की स्त्रियो को छूट है वे तो आज की नारी को नसीब भी नही होते। आज जो दो चोटी गूँथती है उन्हे किस मुँह से बुरा कहा जायेगा।

स्त्री को अपने पति के लिए शृंगार करना चाहिए पर शृंगार का प्रदर्शन बाजारों में करते फिरना वास्तव में आपत्तिजनक है।

प्रकृति-पुत्र ने जनता से प्रेम, सत्य और अहिंसा के सिद्धान्तों पर अमल करने की अपील करते हुए कहा कि मानव यदि वास्तविक मानव बन जाय तो उसे सुख की प्राप्ति हो सकती है। आत्मा को निर्मल करते रहने के लिए सत्य, प्रेम और अहिंसा जैसे भगवान् महावीर के बताये नियमों का पालन करना आवश्यक है। सम्प्रदायों के झगडों से मानव-समाज विकृत हो रहा है। छूतछात और ऊँच-नीच का विचार त्यागे बिना हम सारे जीवों से प्रेम नहीं कर सकते।

महावीर-जयन्ती का सन्देश यही है कि मानव बनो, मानवधर्म का पालन करो, सही अर्थों में इन्सान बनो।

सारा सभा-स्थल एकाग्रचित होकर सुनता रहा और डेढ घण्टा 'अमृत वाणी' सारे वातावरण को प्रभावित करती रही। यह एक भगीरथ थे जिन्होंने अपनी ज्ञान-गंगा बहा दी थी और श्रोता गद्‌गद होकर 'अमृत पान' कर रहे थे।

महावीर-जयन्ती आई और प्रकृति-पुत्र के द्वारा भगवान् महावीर का सन्देश दे कर चली गई। पर अमृत मुनि का उत्सव अभी चल रहा है, यह अखण्ड यज्ञ, ज्ञान-दान-यज्ञ।

मानवता यही चाहती है कि प्रकृति-पुत्र यों ही संसार की आत्माओं को ज्ञान-दर्शन कराते रहें। इसी प्रकार ज्ञान-गंगा बहती रहे। 'मानवधर्म' का आन्दोलन यों ही चलता रहे।

बीसवाँ अध्याय

एक दृष्टि में

पग-पग पर मृत्यु को ललकारते हुए, एक एक कार्य से मानवता को प्राण-दान करते हुए और मानव-जगत् के लिए सुख-शाति का मार्ग प्रशस्त करते चलते किसी एक महान् आत्मा को आपने कभी देखा है ? आपने कृष्ण का नाम सुना है, उनके उपदेशो की झलक गीता मे आपने देखी होगी, उनके बारे मे कितनी ही कपोलकल्पित कथाएँ भी आपने सुनी होगी, राजाओ के बीच चमत्कार दिखाने वाले राजकीय कृष्ण की प्रशसाएँ ही तो आपने सुनी है, उन्हे अपनी आँखो से नही देखा, फिर कितनी अत्युक्ति होने की सम्भावना है उनके जीवन के सम्बन्ध मे ? आपने राम की भी कथा पढी है, उनके चरित्र को आपने पुस्तको के पन्नो पर देखा है, कवियो की कल्पनाओ और आलकारिक भाषा मे ही राम आपके सामने आये है । हसकर हलाहल पी जाने वाले अरस्तू और धोखे से विष पान करने वाले अपने युग के क्रान्तिकारी सन्त महर्षि दयानन्द की जीवनी भी आप ने पढी होगी ? आपने उनके दर्शन नही किये । चौवीस तीर्थङ्करो के सम्बन्ध मे भी आपने सुना ही होगा, पर मैं कहता हूँ आपने किसी को अपने वास्तविक रूप मे नही देखा । आप विश्वास कीजिए, कभी-कभी पुस्तको के पन्नो पर जो व्यक्ति महान् दीख पडते है, वे निकट से देखने पर कुछ और ही जँचते है । हो सकता है, आपको राम, कृष्ण, दयानन्द, अरस्तू आदि के दर्शन करने की चाह हो, यह भी सम्भव है कि आप से कोई यह कहे कि मै आप को इन सब महान् आत्माओ के एक साथ सयुक्त रूप मे दर्शन करा सकता हूँ तो आपको उसकी वात पर विश्वास नही आयेगा । और यदि आप उसको अविश्वास की दृष्टि से भी नही देखेगे तो यह तो ध्रुव सत्य है कि आपके नेत्रो मे आश्चर्य नृत्य कर उठेगा । पर मै आपसे कहता हूँ कि यदि आप राम, कृष्ण, दयानन्द, अरस्तू

आदि के सयुक्त रूप से दर्शन करना चाहे तो केवल एक पुरुष के दर्शन कीजिए, केवल एक के, परन्तु केवल उनके शरीर के दर्शन ही नही, वरन् उनके हृदय मे, उनके जीवन और उनके विचारो में भी झाँक कर देखिये, फिर आपको राम, कृष्ण, दयानन्द, और अरस्तू को खोजने की आवश्यकता नही पडेगी। आप को उनमे इन सभी का समावेश मिलेगा। पर एक ही शर्त है, कि आप उन्हे परख कर देखे, दर्शन भर ही न करे ।

और वे महान् आत्मा, युग-पुरुष, राम, कृष्ण, दयानन्द, गाँधी, और अरस्तू के सयुक्त रूप है, इस पुस्तक के चरित्र-नायक परम पूज्य श्री अमृतचन्द्र जी महाराज । यह बात दूसरी है कि आपको इस पुस्तक के पन्नो मे अमृत मुनि के पूर्ण रूप से दर्शन न हो सके, क्योकि इतनी बाते है लिखने को कि कितने ही ग्रथ बन सकते है, अकेले उनके जीवन पर। और चाहिए लेखनी मे उतना बल जितना अमृत मुनि की वाणी मे है।

मर्यादा पुरुषोत्तम

उनमे राम की भाँति ससार को दोषो से मुक्ति दिलाने की शक्ति है तो कृष्ण जैसा आत्मबल, और ज्ञान भी। श्री अमृत मुनि जी मे दयानन्द की भाँति विष पान करके विषदाता को क्षमा करने का दयाभाव है तो महात्मा गाँधी का अहिसा अस्त्र है, और है उनमे अरस्तू की दार्शनिकता ।

हाँ, एक बात मै स्वय स्वीकार करता हूँ कि एक ही बात श्री अमृत मुनि जी के जीवन मे आपको खोजे भी नही मिलेगी, केवल एक बात, और वह है आडम्बर। आडम्बरो से उनका दूर का भी वास्ता नही है। सारी जीवन-गाथा पढ जाइये, आपको एक बात विशेष रूप से दीख पडेगी कि वे एक ओर शान्ति के अग्रदूत है और दूसरी ओर क्रान्ति उनका मिशन है। क्रान्ति भी ऐसी जिससे आडम्बरियो के दल दहल जाते है, ऐसी क्रान्ति जो मानव-जीवन की कटुताओ को माधुर्य-सुधा मे डुबोकर सुख के रूप मे परिणत कर डाले।

मुनि जी अभी अपनी राह पर बढ रहे है और हमने उनकी पीछे छूटी पगडण्डियो की गाथाएँ ही लेकर एक जीवन-कथा बनाई है। यह कथा बडी लम्बी है। उनके जीवन के एक-एक क्षण को लेखनी के कैमरे से पकडना कोई हँसी-खेल नही है। पर घडी की सुइयाँ अपनी चिर परिचित गति से जीवन-पथ पर बढ रही है, समय को खोते जीवन को अधिकाधिक उपयोगी एव आनन्दमय बनाने के लिए आइये, हम अमृतचन्द्र जी के जीवन को एक दृष्टि मे ही देख डाले।

जन्म

आपके पिता श्री जुगलकिशोर जी ग्वालियर रियासत के राज्य-ज्योतिषी थे, सस्कृत के प्रकाड विद्वान् पण्डित जुगलकिशोर जी बडे दयावान्, गम्भीर और स्वाभिमानी व्यक्ति थे। एक बार एक समस्या पर महाराजा ग्वालियर से विचार-विभिन्नता हो जाने के कारण उन्होने राज्यज्योतिषी के पद से त्यागपत्र दे दिया और रियासत ग्वालियर को छोड कर आगरा मे एक बाग मे मन्दिर और निवास-स्थान बनाकर रहने लगे। उनकी धर्म-पत्नी श्रीमती सुमित्रा देवी जी उनके साथ थी और वे अपने चारो पुत्रो को अपनी सम्पत्ति सौंपकर उन्हे वही छोड आये थे।

सुमित्रा गर्भवती थी। पण्डित जी भगवान् की उपासना मे ही अपना सारा समय व्यतीत करते थे। उन्ही दिनो विक्रमार्क १९७८ में कृष्ण-जन्माष्टमी को श्री अमृत मुनि जी का जन्म हुआ। उस दिन सारा वातावरण खुशी से झूम उठा। पण्डित जी के निवास-स्थान के चरणो मे वहती यमुना की लहरो ने पुलकित होकर आनन्दमयी ग... छोडा। उधर लोग कृष्ण-जन्माष्टमी मना रहे थे, उसी ... अमृतमुनि जी की जन्माष्टमी मनाई जाने लगी।

वज्रपात

अभी जन्मोत्सव चल ही रहा था, समा... मुनि जी को तीन ही दिन हुए थे कि सुमित्रा दे... फेर ली और अमृत मुनि प्रकृति माँ की गो... माता के वात्सल्य से तो वचित रह गये...

जी ने अपने हृदय का सारा प्रेम उन पर उँडेल दिया। यमुना की लहरें लोरियाँ गाती और शीतल समीर उन्हे थपकियाँ देकर सुलाती। सुकोमल कली धीरे-धीरे अपनी पँखुडियाँ खोलने लगी।

अमृतचन्द्र की शिक्षा का समुचित प्रबन्ध कर दिया गया और हिन्दी तथा संस्कृत की शिक्षा दिलाई जाने लगी। प्रखर बुद्धि के कारण अमृतचन्द्र जी आश्चर्यजनक उन्नति करने लगे और ९ वर्ष की आयु मे ही उन्होने संस्कृत की पुस्तके पढनी आरम्भ कर दी और उन्ही दिनो ब्राह्मण वर्ण की रीति अनुसार उनका यज्ञोपवीत संस्कार कर दिया गया। उन्ही के साथ दया की प्रतिमूर्ति प० जुगलकिशोर जी ने अन्य निर्धन ब्राह्मण-कुमारो का भी यज्ञोपवीत संस्कार सम्पन्न कराया।

वैराग्य के लक्षण

अमृतचन्द्र जी विद्या-अध्ययन मे एकाग्रचित्त होकर लगे थे, पर उन्ही दिनो उनके वदन पर चिन्तन के भाव उभरने लगे। प्रत्येक घटना को वह गहरी दृष्टि से देखते और सोचने-समझने का प्रयत्न करते। पण्डित जी समझते थे कि बालक अपनी माँ की याद मे चिन्तित रहता है पर बालक क्या सोचता था, इसे कोई पढ नही पाता। वे घटो यमुना के तट पर बैठे लहरो और बुदबुदो से बाते करते रहते। पिता जी ने उन पर और अधिक लाड-प्यार दिखाना आरम्भ कर दिया, पर उनकी जिज्ञासाओ को वे शान्त न कर पाये। एक-एक बात उनके मन मे प्रश्नवाचक चिन्ह उत्पन्न कर देती और वे उसी मे खो जाते।

एक और वज्रपात

अभी अमृतचन्द्र बाल्य अवस्था को भी पार न कर पाये थे कि एक और भयकर वज्रपात हुआ। प० जुगलकिशोर को तीन हिचकियाँ आई और वे चिर निद्रा मे मग्न हो गये।

सनातनधर्मियो ने बालक को अनाथ घोषित करके पण्डित जुगल-किशोर जी की सम्पत्ति को एक संरक्षण-समिति को सौप दिया और संरक्षण-समिति के सदस्यो ने सम्पत्ति को हडप जाने के लिए षड्यन्त्र

करने आरम्भ कर दिये। अमृतचन्द्र को उनके अत्याचारो को सहन करना पडा। सम्पत्ति-लोलुपता, ईर्ष्या और द्वेष ने उनके हृदयो को इस हद तक विषाक्त कर दिया कि वे लोग अमृतचन्द्र को ही रास्ते से हटाने का प्रयत्न करने लगे। अत बालक अमृतचन्द्र अपना घर छोड कर अपने पिता जी के एक मित्र के पास पहुँचे जिन्होने उन्हे आगरा के ही एक जैन अनाथालय मे दाखिल करा दिया।

अपनी प्रचुर बुद्धिमत्ता और अलौकिक गुणो के कारण वे अनाथालय के रत्न के रूप मे प्रसिद्ध हो गये परन्तु वहाँ भी विद्याध्ययन के साथ-साथ जीवन-मरण के प्रश्नो का हल ढूँढने में उलझे रहते। वैराग्य के अकुर उनमे उगने लगे।

गुरु-चरणों में

गुरुदेव श्री कस्तूरचन्द्र जी अपना १९९१ का चातुर्मास आगरा में ही व्यतीत करने के लिए पधारे। अमृतचन्द्र उनकी ख्याति सुनकर उनके दर्शनार्थ पहुँचे और महात्मा कस्तूरचन्द्र जी से अपने सत जीवन मे प्रवेश कराने की प्रार्थना की। कस्तूरचन्द्र जी महाराज ने उनसे कितने ही प्रश्न किये। अमृतचन्द्र जी द्वारा दिये गए उत्तरो से उन्होने समझ लिया कि भविष्य मे यह एक महान् सत वनेगा इसलिए उन्हे अपने साथ चलने के लिए स्वीकृति दे दी।

गुरु जी के साथ

चातुर्मास समाप्त करके कस्तूरचन्द्र जी महाराज ने आगरा से विहार किया तो अमृतचन्द्र भी उनके साथ हो लिये। तीन वर्ष तक गुरुदेव उन्हे सन्त जीवन और जैन शास्त्रो की शिक्षा देते रहे। हिन्दी तथा सस्कृत के धार्मिक तथा सामाजिक साहित्य मे अमृतचन्द्र जी की विशेष दिलचस्पी थी। तीन वर्ष मे उन्होने कितनी ही पुस्तको का अध्ययन किया और एक दिन विभिन्न क्षेत्रो का भ्रमण करते हुए गुरुदेव के साथ दिल्ली पहुँचे। अव वे इस योग्य हो गये थे कि उनका दीक्षा-सस्कार सम्पन्न करा दिया जाय।

दीक्षा-संस्कार

जिस दिन अमृतचन्द्र जी का दीक्षा-सस्कार होना था, उसी दिन

श्री नरपतिराय महाराज जी के भी दो शिष्यों की दीक्षा होनी थी। प्रश्न यह उठा कि इन तीन दीक्षार्थियों में सर्वश्रेष्ठ कौन है? जब यह बात आपसी बातचीत से तय न हो सकी, तो निश्चय हुआ कि दीक्षार्थियों की परीक्षा ले ली जाय।

शास्त्रज्ञ विद्वान् अमृतचन्द्र जी, जो अलौकिक गुणों के भण्डार थे, परीक्षा में सर्वश्रेष्ठ सिद्ध हुए। पर विपक्षियों को यह बात भली न लगी। इसलिए निर्णय हुआ कि जैन युवक अपने मतों द्वारा सर्वश्रेष्ठ दीक्षार्थी का चुनाव करें। फिर क्या था सारे स्थानकवासी जैनियों ने मतदान किया और परिणाम यह निकला कि भारी बहुमत अमृतचन्द्र जी के ही पक्ष में रहा।

बात तय हो चुकी थी, परन्तु विपक्षियों को सन्तोष न हुआ। निश्चय हुआ कि आचार्य श्री काशीराम जी महाराज अन्तिम निर्णय दें। दिल्ली के कितने ही लोगों को साथ लेकर विपक्षी आचार्य जी की सेवा में गये और अमृतचन्द्र जी अकेले ही पहुंचे। परन्तु कितनी ही सिफारिशों के बाद भी अमृतचन्द्र जी की योग्यता पर आवरण नहीं डाला जा सकता था। आचार्य जी ने न्यायाधीश की हैसियत से निर्णय दिया कि अमृतचन्द्र जी ही सर्वश्रेष्ठ हैं।

विक्रम सम्वत् १९९२ वैशाख शु० द्वितीया को प्रात आठ बजे सहस्रों नर-नारियों की उपस्थिति में दीक्षा-संस्कार सम्पन्न हुआ और अमृतचन्द्र जी पंच महाव्रती सन्यासी घोषित कर दिये गये।

सम्प्रदाय का परित्याग

श्री अमृतचन्द्र जी के सर्वश्रेष्ठ घोषित होने से कुछ लोग ईर्ष्या से भर गये थे। एक दिन एक मुनि ने महात्मा कस्तूरचन्द्र जी के लिए कुछ अपशब्द कह डाले। उन्हें एक ऐसे व्यक्ति के मुंह से वे शब्द सहन नहीं हुए जिसके सन्त जीवन में कितने ही दोष थे। कस्तूरचन्द्र जी ने उसके दोषों को बता कर कहा कि वे अपने गरेबाँ में मुंह डालें। श्री कस्तूरचन्द्र जी के आरोप से उक्त सन्त को बहुत क्रोध आया और उसने इस बात की शिकायत आचार्य जी से की। श्री कस्तूरचन्द्र जी महाराज ने आरोप सिद्ध करने का दावा किया। खोज करने के लिए एक कमेटी

बन गई। खोज पूर्ण होने पर कमेटी ने जो रिपोर्ट दी उससे सिद्ध हो गया कि श्री कस्तूरचन्द्र जी महाराज का आरोप सोलहो आने सही है। पर आरोप सिद्ध हो जाने पर भी उस सन्त को कोई दण्ड नही दिया गया। साधु-समाज के इस पक्षपात के विरोधस्वरूप श्री कस्तूरचन्द्र जी और श्री अमृत मुनि जी समाज से त्याग-पत्र देकर अलग हो गये और स्वतन्त्र रूप से महावीर स्वामी के सिद्धान्तो का प्रचार करने लगे।

सतीत्व की रक्षा

श्री मुनि जी का सर्वप्रथम चातुर्मास दिल्ली मे ही स्वीकार हुआ। आप विक्रम सम्वत् १९९४ को दिल्ली मे चातुर्मास व्यतीत कर रहे थे। एक दिन कार्यवश बिड़ला मन्दिर की ओर जा निकले और घूमते-घूमते हुमायूँ के मकबरे की ओर चल पडे। एक अहाते के अन्दर दो गुण्डे एक षोडशी के सतीत्व पर डाका डालने के लिए प्रयत्नशील थे। षोडशी को नगी कर दिया गया था, उसके हाथ पीछे पीठ की ओर बधे थे और मुँह मे कपडा ठुँसा था। एक गुण्डा भी नग्न था और वह उसकी लाज लूटने ही वाला था कि श्री अमृत मुनि जी ने देख लिया।

श्री अमृत मुनि जी तुरन्त अन्दर पहुँचे। पाप मुनि जी के आत्मबल के सामने न ठहर सका। एक गुण्डा तो भाग निकला और एक वही रह गया। मुनि जी ने युवति की रक्षा की और गण्डे को उसकी हरकत के लिए पश्चाताप कराया और क्षमा याचना कराई। साथ ही युवति के पिता को जो उसे खोज रहा था, उसके कर्तव्य का बोध कराया। मुनि जी के उपदेशो से उस गुण्डे पर इतना प्रभाव पडा कि उसने भविष्य मे अपने जीवन को सुधारने की प्रतिज्ञा की और वह मुनि जी के चरणो का दास हो गया।

दिल्ली का चातुर्मास सानन्द समाप्त हुआ। यहाँ से आप रोहतक, कलानौर आदि क्षेत्रो मे होते हुए दादरी पधारे। भक्तो की आग्रह भरी प्रार्थना पर आपका दूसरा चातुर्मास दादरी मे ही हुआ। चातुर्मास की समाप्ति पर अनेक क्षेत्रो मे विचरते हुए आप सिरसा पहुँचे और तीसरा चातुर्मास यही पर किया। इस चातुर्मास के पूर्ण होने पर आप हिसार की ओर विहार कर गये।

विष-पान और क्षमा-दान

श्री अमृतचन्द्र जी महाराज की विद्वत्ता का डका सारे पंजाब में वज गया। उन्होने अपनी वक्तृत्व-कला से जनता के हृदय जीत लिये। अधविश्वासी लोग श्री अमृत चन्द्र जी के नाम से ही काँप जाते थे। वे जहाँ पहुँचते, वही एक आलोक की भान्ति अधकार को मिटाने का कार्य करने लगते।

विक्रम सम्वत् १९९७ मे श्री मुनि जी हिसार मे चातुर्मास मना रहे थे। दिगम्बर जैनी लोग श्री अमृत मुनि जी की विद्वत्ता और वक्तृत्व कला को देख कर कुछ ईर्ष्या करने लगे, और दिगम्बरियो के प्रसिद्ध पण्डित बटुकेश्वरदयालु जी ने उन्हे औषधि के वहाने एक विषैला पदार्थ दे दिया। जिसे खाते ही मुनि जी तीन दिन तक बेहोश हो गये। डाक्टरो के जी-तोड परिश्रम से जव उन्हे होश आया और अमृतचन्द्र जी महाराज से पूछा गया कि उन्हे विष किसने दिया, अमृतचन्द्र जी ने वात टाल दी और केस चलाने की भी आज्ञा न दी। उनकी इस महानता को देख कर दिगम्वरी लोग भी वहुत प्रभावित हुए और मुक्त कण्ठ से प्रशसा करने लगे। यहाँ से स्वस्थ होने पर आपने विहार कर दिया, और फिर दादरी, गुडगाँव आदि क्षेत्रो मे अपना पाँचवा, छठा चातुर्मास समाप्त करके वडौत मण्डी (यू० पी०) पधारे। विक्रम सम्वत् २००० का चातुर्मास आपने वडौत मे ही व्यतीत किया।

फिर साधु समाज में

श्री अमृत मुनि जी की विद्वत्ता की छाप अनेक क्षेत्रो पर पड चुकी थी और लोग जैन साधु-समाज के उच्च नायको से प्रश्न कर रहे थे कि इतने महान् व्यक्ति को समाज मे वापिस क्यो नही लिया जाता ? क्यो नही उन्हे मनाया जाता ? इसलिए जैनाचार्य श्री काशीराम जी महाराज के सत्परामर्श से आपको तथा आपके गुरु जी को दिल्ली निमन्त्रित किया गया और उन्हें यह विश्वास दिला कर कि सन्त-समाज को उचित सुपथ पर लाने का प्रयत्न किया जायेगा, पुन जैन साधु-समाज मे शामिल होने के लिए रज़ामद कर लिया। श्री अमृतचन्द्र जी समाज मे तो चले गये पर उन्होने अपने मानवतावादी सिद्धान्तो का प्रचार

जारी रखा । वे व्यर्थ के साम्प्रदायिक बधनो को स्वीकार करना नही चाहते थे ।

पजाब साधु-समाज मे सम्मिलित होने के पश्चात् श्री अमृत मुनि जी ने सम्वत् २००१ का चातुर्मास नई दिल्ली मे किया और फिर २००२ का गुहाना मण्डी, २००३ का बडौत मण्डी, २००४ का करनाल और २००५ का कैथल, जिला करनाल मे किया ।

कैथल का चातुर्मास समाप्त करके आपने अनेक क्षेत्रो मे होते हुए पटियाला की ओर विहार कर दिया ।

मुनियों का संरक्षण

अभी आप पटियाला मे पहुँचे ही थे कि समाचार मिला कि बडे सन्त छोटे सन्तो पर अत्याचार कर रहे है और अपने दोषो पर परदा डालने के लिए छोटे सन्तो की तनिक-तनिक सी भूलों को तूल देकर सख्त दण्ड दिला रहे है और जनता द्वारा अपमानित कराने से भी नही चूकते । छोटे सन्तो पर हो रहे अत्याचारो को सुनकर वे चिन्तित हो गये और उन्होने इन अत्याचारो के विरुद्ध आवाज उठानी आरम्भ कर दी ।

उन्ही दिनो सन्त-समाज मे आ रहे भूचाल को रोकने के लिए सन्तो का एक विशेष सम्मेलन लुधियाना मे हुआ । उस सम्मेलन मे समस्त स्थिति का अन्वेषण करने और जिस किसी सन्त पर भी आरोप लगे उनकी खोज करने तथा उचित दण्ड देने के लिए एक सप्त-ऋषि-मण्डल का निर्माण हुआ जिसका अध्यक्ष अमृत मुनि जी को वना दिया गया । पर ज्यो ही सप्त-ऋषि-मण्डल ने अपना कार्य आरम्भ किया, दोषी सन्त घबरा उठे और अमृत मुनि जी को उनके हावभाव को देख कर लगा कि सप्त-ऋषि-मण्डल स्थिति सुधारने मे सफल नही होगा बल्कि आपसी विवाद पक्षपात के कारण भयकर रूप धारण कर जायगा । इसलिये उन्होने सप्त-ऋषि-मण्डल की अध्यक्षता मे त्यागपत्र दे दिया और कुछ दिनो उपरान्त उस विषाक्त वातावरण से निकलने के लिए पुन समाज से त्यागपत्र देकर मानव-धर्म का प्रचार आरम्भ कर दिया । यह त्याग-पत्र आपने अपने सुनाम के चातुर्मास मे दिया था । इन दिनो गुरुदेव

श्री कस्तूरचन्द्र जी महाराज बुरी मण्डी मे अपना चातुर्मास व्यतीत कर रहे थे।

विरोधियों का प्रचार

श्री अमृत मुनि जी महावीर भगवान् के उपदेशो का प्रचार कर मानव को मानव बनाने का आन्दोलन चला रहे थे पर जैन समाज ने उनके विरुद्ध प्रचार करना आरम्भ कर दिया और पजाब जैन समाज ने एक प्रस्ताव द्वारा जैनियो से अमृत मुनि जी तथा उनके साथियो को आहार, पानी और विश्राम के लिए स्थान न देने की अपील की। पर जैन समाज के इस घृणा-प्रसार के प्रचार को देखते हुए भी अमृत मुनि जी ने जैन समाज के विरुद्ध कोई प्रचार न किया बल्कि वे तो प्रेम और भ्रातृत्व का सन्देश देते हुए भ्रमण करते रहे। पजाब जैन समाज के आदेश पर भी किसी ने उन्हे आहार देने से इन्कार न किया।

उपाध्याय पद

जैन समाज के घृणास्पद प्रचार से कितने ही सन्त तग आ गये थे इसलिए उन सभी ने श्री अमृत मुनि जी से शुद्ध सन्त-समाज की स्थापना की माग की और सभी की इच्छा से कैथल मे एक सम्मेलन किया गया, जिसमे नये साधु-समाज की स्थापना की गई। उसी मे उस समाज के पदाधिकारियो का भी चुनाव हुआ। श्री अमृत मुनि जी को उस सम्मेलन मे सर्वसम्मति से 'उपाध्याय' पद से विभूषित किया गया।

कैथल से विहार करके श्री अमृत मुनि जी भटिण्डा पधारे और यहा से कैथल निवासियो की प्रार्थना पर विक्रम सम्वत् २००७ का चातुर्मास करने के लिए पुन कैथल पधारे।

हरिद्वार मे प्रचार

चातुर्मास समाप्त करके श्री मुनि जी मतलोढा, पानीपत, राजा खेडी, बडसत आदि अनेक क्षेत्रो मे होते हुए हरिद्वार पधारे। यहाँ आपके भाषणो का जनता पर बडा प्रभाव पडा। अनेक गद्दीधारी ठिकाने-दार साधुओ ने आपके उपदेशो से प्रभावित होकर गद्दी के समस्त मोह-मायाजाल का त्यागन किया। इस भ्रमण मे आपने कनखल, मन्दिर

सत्यनारायण तथा ऋषिकेश आदि अनेक क्षेत्रो का भ्रमण किया। इन्ही दिनो गुरुकुल कागडी का भी आपने निरीक्षण किया।

हरिद्वार से वापसी पर आप अनेक क्षेत्रो मे धर्म-प्रचार करते हुए गन्नौर मण्डी पधारे, और इस वर्ष का चातुर्मास यही किया। चातुर्मास के अनन्तर आप दिल्ली पधारे।

दिल्ली मे उन्हे एक बार पजाब एस० एस० जैन सभा के आदेश से जैनधर्म के ठेकेदारो ने ठहरने का स्थान देने से भी इन्कार कर दिया। परन्तु जब श्री अमृत मुनि जी ने व्याख्यान देना आरम्भ किया तो पंजाब जैन सभा के आदेशो को ठुकरा कर जैन जनता उनके चरणो में आ गई और दो मास मे ही भारी जन-समुदाय उनका भक्त बन गया।

कुरुक्षेत्र में

दिल्ली से सोनीपत, गन्नौर, करनाल आदि क्षेत्रो मे विचरते आप कुरुक्षेत्र पधारे। यहाँ सूर्यग्रहण के अवसर पर श्री अमृत मुनि जी अपने सहयोगी गौतम मुनि जी के साथ कुरुक्षेत्र के मेले मे गए और उन्होने माँस-मदिरा के त्याग का आन्दोलन चलाया। सैकडो व्यक्तियो से उन्होने इनका परित्याग कराया और सत्याग्रह करके पचासो साधुओ से सुलफा, भाँग छुडाकर उनका उद्धार किया।

कुरुक्षेत्र से कैथल और कैथल से नरवाणा, बुढलाढा, मानसा आदि क्षेत्रो मे विचरते हुए श्री अमृत मुनि जी भटिण्डा पधारे। भक्तो की प्रार्थना पर इस वर्ष यही चातुर्मास किया।

आक्रमण

चातुर्मास सानन्द पूर्ण हुआ और आपने पटियाला
कर दिया। पटियाला मे अनुमानत आप एक मास ठहरे
कैथल से आपको एक व्यक्ति का पत्र मिला, जिसमे
थी कि यदि वे कैथल आयेगे तो उनकी हत्या कर

अमृत मुनि जी पत्र पाते ही कैथल के लिए
में ही कैथल पहुँच गये। उन्होने वहाँ घोषणा
है, जिसने उन्हे हत्या करने की धमकी दी है
करे। पर कोई सामने न आया।

एक दिन मुनि जी ने दोपहर को ध्यान से उठकर कमरे के द्वार खोले तो एक व्यक्ति, जो पहले से ही आक्रमण की तैयारी में खड़ा था, हाथ में छुरा लेकर वार करने को तैयार हुआ। तभी दूसरी ओर से आते एक व्यक्ति को देखकर वह काँप उठा और छुरे को वहीं छुपाकर वह भाग खड़ा हुआ।

दूसरे दिन श्री अमृत मुनि जी आक्रमणकारी के घर गये और कहा कि यदि उनकी मृत्यु से ही मानव-जगत् का कल्याण हो सकता है तो वे स्वयं तैयार हैं, आप चाहें तो हत्या कर दें। आक्रमणकारी बहुत लज्जित हुआ और उसने मुनि जी के चरण पकड़ कर अपने कृत्य की क्षमा माँगी।

आडम्बर का भण्डाफोड़

कैथल से आप पुनः भटिण्डा पधारे और इस वर्ष का चातुर्मास भी भटिण्डा में हुआ। इस चातुर्मास में श्री गुरुदेव कस्तूरचन्द्र जी महाराज भी साथ ही थे। चातुर्मास सानन्द चल रहा था। इन्हीं दिनों भटिण्डा में एक साधु ऐसा आया जो अपनी आयु ३६५ वर्ष की बताता था और कहता था कि वह भगवान् से कई बार भेंट कर आया है और उसने कई बार चोला बदला है। जैनियों ने उस साधु की परीक्षा के लिए श्री अमृत मुनि जी को मुकाबले पर डटा दिया।

सैकड़ों व्यक्तियों के सामने अमृत मुनि जी ने वेदों और गीता पर प्रश्न पूछने का प्रयत्न किया पर प्रत्येक बार उस साधु ने बात टाल दी। अन्त में अमृत मुनि जी ने चुनौती दी कि यदि वह ब्रह्मज्ञानी है तो कोई व्यक्ति दूर जाकर कागज पर कुछ लिखे और वह यह बताये कि उसने क्या लिखा है। एक युवक ने दूर जाकर लिखा, पर साधु न बता सका। अन्त में अमृत मुनि जी से उस साधु के शिष्यों ने कहा कि युवक ने जो लिखा है, वे ही बतायें।

सहस्रों व्यक्तियों की उपस्थिति में श्री अमृत मुनि जी ने वह पंक्ति बता दी और इस बात से यह प्रगट हो गया कि श्री अमृत मुनि जी बड़े ही चमत्कारी सन्त हैं।

भटिण्डा का चातुर्मास समाप्त करके श्री मुनि जी अनेक क्षेत्रों

से होते हुए पटियाला पधारे। जनता के आग्रह पर इस वर्ष का चातुर्मास यही पर हुआ। चातुर्मास मे धर्म-ध्यान का खूब ठाठ लगा।

शास्त्रार्थ की चुनौती

उन्ही दिनो की बात है। श्री अमृत मुनि जी उन दिनो पटियाला मे चातुर्मास व्यतीत कर रहे थे। उन्होने रामायण की कथा आरम्भ की, सहस्रो व्यक्ति कथा सुनने के लिए एकत्रित होते थे, क्योकि रामायण की कथा तो कितने ही ब्राह्मण और सन्त कहते है परन्तु श्री अमृत मुनि जी द्वारा रामायण की कथा एक दूसरे ही रग मे प्रस्तुत की जाती है। वे जहाॅ राम के चरित्र को प्रस्तुत करते है वही रामायण के अन्य पात्रो पर टिप्पणी भी करते जाते है। जनता मत्रमुग्ध होकर कथा सुनती थी। जहाँ रामायण ग्रथ की आलोचना होती, ब्राह्मण वर्ग कान खडे करने लगता। श्री अमृत मुनि जी ने पटियाला के सारे ब्राह्मण वर्ग को चुनौती दी कि कोई भी उनसे शास्त्रार्थ करे, पर कोई तैयार नही हुआ। पटियाला के राज्यज्योतिपी प० मुलखराज जी ने उनके पास एक प्रश्न सस्कृत मे लिखकर भेजा। पण्डित जी को अपने सस्कृत का विद्वान् होने पर गर्व था। परन्तु श्री अमृत मुनि जी ने उनके लिखे प्रश्न मे ही त्रुटि पकड ली।

प० मुलखराज, जो सारे ब्राह्मण वर्ग की भाॅति ही श्री अमृत मुनि जी पर रुष्ट थे, श्री अमृत मुनि जी की विद्वत्ता को चुनौती दे बैठे। मुनि जी ने तुरन्त उनके प्रश्न की भाषा को अशुद्ध बताकर उनके गर्व को चुनौती दे दी। फिर क्या था, पण्डित जी भडक गये। परन्तु उनके शिष्यो ने ही श्री अमृत मुनि जी का समर्थन कर दिया तो बेचारे बहुत लज्जित हुए और अपने टूटते दम्भ की रक्षा के लिए उन्होने शास्त्रार्थ की चुनौती स्वीकार कर ली। पर जब उन्होने ठण्डे दिल से श्री अमृत मुनि जी की योग्यता पर विचार किया तो ठण्डे पड गये।

सनातन धर्म के मण्डलेश्वर श्री ओकारानन्द जी को भी अपने पाण्डित्य का अभिमान था। श्री अमृत मुनि जी ने उन्हे भी शास्त्रार्थ की चुनौती दी, पर वे भी अन्त मे कन्नी काट गये।

यह ठीक ही है कि विद्वत्ता के सामने दम्भ नही रहता।

विवेकानन्द के रूप में

स्वामी विवेकानन्द भारत के सन्त-गौरव कहे जाते हैं। वक्तृत्व-कला से उन्होंने भारत में ही नहीं, वरन् विदेशों में भी अपनी विद्वत्ता एवं ज्ञान का डंका बजा दिया था। एक बार उन्हें शून्य पर बोलने को कहा गया। कहते हैं, कई दिन तक वे शून्य पर ही बोलते रहे।

श्री अमृत मुनि जी की जिह्वा में भी स्वामी विवेकानन्द का ही जादू भरा हुआ है। वे जहाँ जाते हैं वहीं अपनी वक्तृत्वकला से श्रोताओं के मन मोह लेते हैं और विरोधी भी उनके वक्तृत्व के जादू से उनके प्रशंसक बन जाते हैं।

यदि वे पैदल ही यात्रा करने का व्रत न धारण किये होते और विदेशों में भी जा सकते तो स्वामी विवेकानन्द से भी अधिक उनकी कीर्ति का प्रसार होता और कौन जानता है कि भारतीय सन्तों के विदेशी प्रशंसक स्वामी विवेकानन्द को भूलकर स्वामी अमृतचन्द्र जी के कितने ही प्रशंसक बन जाते।

अमृतचन्द्र जी केवल धार्मिक विषयों पर ही अधिकारपूर्ण शैली में नहीं बोलते, उन्हें सामाजिक एवं राजनैतिक विषय पर भी इतनी दिलचस्पी है कि जिस विषय पर भी आवश्यकता हो, उसी पर बोल सकते हैं, और इस प्रकार बोल सकते हैं कि श्रोता उनकी चतुर्मुखी प्रतिभा के सामने नतमस्तक हुए बिना न रहेगा।

महात्मा गांधी के रूप में

साम्प्रदायिकता की आग फैली तो महात्मा गाँधी अपनी चलती-फिरती लाठियों के कंधों पर हाथ रखकर नोआखली की ओर दौड़ पड़े। और उन्होंने एक बार उपवास भी रखा।

श्री अमृत मुनि जी साम्प्रदायिकता के कट्टर विरोधी हैं और वे मानते हैं कि साम्प्रदायिकता के विरुद्ध भाषण करके ही साम्प्रदायिकता को समाप्त नहीं किया जा सकता क्योंकि साम्प्रदायिकता के विष-वृक्ष की जड़ अधकार एवं दानवीयता में है। यदि मानव को मानवता की प्रतिमूर्ति बना दिया जाय, दानवता का ही संसार से लोप हो जाय तो साम्प्रदायिकता जैसे किसी भी रोग को पनपने के लिए कोई आधार ही न

मिले। इसलिए वे १२ वर्ष की आयु से ही मानवता के प्रचार मे लगे है और जब से उन्होने सन्त बाणा धारण किया है तभी से पैदल ही देश का भ्रमण करके साम्प्रदायिकता को मिटाने के लिए धर्म का प्रचार कर रहे है। गाँधी जी तो साम्प्रदायिकता के बाह्य रूप को ही मिटाने मे लगे रहे और अन्त मे अपना बलिदान देकर भी उसे न मिटा पाये पर श्री अमृत मुनि जी जिस व्यक्ति को भी सच्चा मानव बना पाते है उसी के हृदय मे से उन सभी रोगो के भाव मिटा देते है जिन से साम्प्रदायिकता का जन्म होता है।

महात्मा गाँधी पर भी उनके जीवन मे कई बार आक्रमण हुए और उन्होने आक्रमणकारियो को क्षमा कर दिया। श्री अमृत मुनि जी पर भी कई आक्रमण हुए और उन्होने आक्रमणकारियो को क्षमा भी किया और उन्हे सुपथ पर लाने मे भी सफल हुए।

महात्मा गाँधी अहिसा के पुजारी थे, श्री अमृत मुनि जी अहिसा और उसे निभाने के लिए अन्य मानवीय गुणो के प्रचारक है।

गाँधी जी के शिष्यो मे से कितने अहिसा और सत्य के उज्ज्वल सिद्धान्तो पर आचरण कर सके यह कहना कठिन है पर अमृत मुनि जी का प्रत्येक शिष्य अहिसा एव सत्य का प्रशसक ही नही उन पर अमल भी करता है, जो ऐसा नही करता उसे वे अपना शिष्य ही नही मानते।

महर्षि दयानन्द के रूप में

महर्षि दयानन्द ने अधविश्वासों के विरुद्ध प्रचार किया और उन्होने पाखण्डियो के आडम्बरो के विरुद्ध हिन्दुओ को सचेत करके पाखण्ड परित्याग करने का आन्दोलन चलाया।

श्री अमृत मुनि जी प्रारम्भ से ही पाखण्ड के विरोधी है। आडम्बरो के विरोध मे ही अपनी सारी शक्ति लगाये हुए है। अधविश्वास उनके नाम से ऐसे भागते है जैसे आलोक से अन्धकार।

महर्षि दयानन्द ने हिन्दू जाति म एक नयी धारा को जन्म दिया, नयी क्रान्ति का सूत्रपात किया। श्री अमृत मुनि जी ने भी मानव-समाज मे एक नयी धारा प्रवाहित की, नयी क्रान्ति को जन्म दिया। उन्होने मानव-

समुदाय को एक नयी राह दिखाई। उन्होंने केवल गृहस्थियों को ही नहीं, सन्तों को भी एक नया पथ दर्शाया।

महर्षि दयानन्द को विष दिया गया, तो उन्होंने विष देने वाले को क्षमा कर दिया। क्षमा उनकी महानता की परिचायक थी। और क्षमा-शीलता श्री अमृत मुनि जी की रग-रग में बसी है। उन्हें भी विष दिया गया और विष देने वाले को उन्होंने ऐसे क्षमा कर दिया मानो कुछ हुआ ही नहीं है।

श्री कृष्ण के रूप में

श्री कृष्ण सहस्रों वर्ष पहिले उत्पन्न हुए थे। उस समय महान् [illegible] यह था कि जो राजा अत्याचारी हो उसके अत्याचारों से पीड़ितों की रक्षा की जाय और सत्य का साथ देकर अन्यायियों का संहार किया जाय।

आज के युग में एकतन्त्रवाद का कोई स्थान नहीं है न सामन्तों के उस युग के झगड़े ही हैं। यदि श्री कृष्ण, कृष्ण नाम से ही इस युग में जन्म ले तो वे उन्हें न कंस जैसे राजाओं से और कौरवों जैसे सामन्तों से ही वास्ता पड़े। क्योंकि इस युग की समस्याएं ही दूसरी हैं। परन्तु श्री कृष्ण का अपना एक मिशन था। उन्होंने अन्याय के विरुद्ध न्याय का साथ दिया, असत्य के मुकाबले में सत्य का पक्ष लेकर असत्य को पराजित किया।

इसी प्रकार श्री अमृत मुनि जी ने ठीक उसी दिन जन्म लेकर, जिस दिन श्री कृष्ण ने संसार में नेत्र खोले थे, असत्य और अन्याय के विरुद्ध संघर्ष आरम्भ किया।

जिस समय बड़े सन्त छोटे सन्तों पर अन्याय कर रहे थे, श्री अमृत मुनि जी छोटे सन्तों के साथी बने। श्री कृष्ण ने 'भगवद्गीता' संसार को भेंट की और श्री अमृत मुनि जी ने 'आत्म गीता' संसार के सम्मुख प्रस्तुत करके अपने को अमर कर दिया।

श्री कृष्ण ने द्रौपदी की लाज बचाई, श्री अमृत मुनि जी ने [illegible] षोडशी के सतीत्व की रक्षा की। श्री कृष्ण ने संसार को [illegible] सतित का ज्ञान कराया और श्री अमृत मुनि जी भी [illegible] रहे हैं। श्री कृष्ण अपने भक्तों की [illegible] और श्री अमृत मुनि जी भी [illegible]

मिले। इसलिए वे १२ वर्ष की आयु से ही मानवता के प्रचार मे लगे है और जब से उन्होने सन्त बाणा धारण किया है तभी से पैदल ही देश का भ्रमण करके साम्प्रदायिकता को मिटाने के लिए धर्म का प्रचार कर रहे है। गाँधी जी तो साम्प्रदायिकता के बाह्य रूप को ही मिटाने मे लगे रहे और अन्त मे अपना बलिदान देकर भी उसे न मिटा पाये पर श्री अमृत मुनि जी जिस व्यक्ति को भी सच्चा मानव बना पाते है उसी के हृदय मे से उन सभी रोगो के भाव मिटा देते है जिन से साम्प्रदायिकता का जन्म होता है।

महात्मा गाँधी पर भी उनके जीवन मे कई बार आक्रमण हुए और उन्होने आक्रमणकारियो को क्षमा कर दिया। श्री अमृत मुनि जी पर भी कई आक्रमण हुए और उन्होने आक्रमणकारियो को क्षमा भी किया और उन्हे सुपथ पर लाने मे भी सफल हुए।

महात्मा गाँधी अहिसा के पुजारी थे, श्री अमृत मुनि जी अहिसा और उसे निभाने के लिए अन्य मानवीय गुणो के प्रचारक है।

गाँधी जी के शिष्यो मे से कितने अहिसा और सत्य के उज्ज्वल सिद्धान्तो पर आचरण कर सके यह कहना कठिन है पर अमृत मुनि जी का प्रत्येक शिष्य अहिसा एव सत्य का प्रशसक ही नही उन पर अमल भी करता है, जो ऐसा नही करता उसे वे अपना शिष्य ही नही मानते।

महर्षि दयानन्द के रूप में

महर्षि दयानन्द ने अधविश्वासो के विरुद्ध प्रचार किया और उन्होने पाखण्डियो के आडम्बरो के विरुद्ध हिन्दुओ को सचेत करके पाखण्ड परित्याग करने का आन्दोलन चलाया।

श्री अमृत मुनि जी प्रारम्भ से ही पाखण्ड के विरोधी है। आडम्बरो के विरोध मे ही अपनी सारी शक्ति लगाये हुए है। अधविश्वास उनके नाम से ऐसे भागते है जैसे आलोक से अन्धकार।

महर्षि दयानन्द ने हिन्दू जाति म एक नयी धारा को जन्म दिया, नयी क्रान्ति का सूत्रपात किया। श्री अमृत मुनि जी ने भी मानव-समाज मे एक नयी धारा प्रवाहित की, नयी क्रान्ति को जन्म दिया। उन्होने मानव-

समुदाय को एक नयी राह दिखाई। उन्होने केवल गृहस्थियो को ही नही, सन्तो को भी एक नया पथ दर्शाया।

महर्षि दयानन्द को विष दिया गया, तो उन्होने विष देने वाले को क्षमा कर दिया। क्षमा उनकी महानता की परिचायक थी। और क्षमा-शीलता श्री अमृत मुनि जी की रग-रग में बसी है। उन्हे भी विष दिया गया और विष देने वाले को उन्होने ऐसे क्षमा कर दिया मानो कुछ हुआ ही नही है।

श्री कृष्ण के रूप में

श्री कृष्ण सहस्रो वर्ष पहिले उत्पन्न हुए थे। उस समय महान् कार्य यह था कि जो राजा अत्याचारी हो उनके अत्याचारो से पीडितो की रक्षा की जाय और सत्य का साथ देकर अन्यायियो को परास्त किया जाय।

आज के युग मे एकतन्त्रवाद का कोई स्थान नही है, न सामन्तो के उस युग के झगडे ही है। यदि श्री कृष्ण, कृष्ण नाम से ही इस युग मे जन्म ले तो वे उन्हे न कस जैसे राजाओ से और कौरवो जैसे सामन्तो से ही वास्ता पडे। क्योकि इस युग की समस्याएँ ही दूसरी है। परन्तु श्री कृष्ण का अपना एक मिशन था। उन्होने अन्याय के विरुद्ध न्याय का साथ दिया, असत्य के मुकाबले में सत्य का पक्ष लेकर असत्य को पराजित किया।

इसी प्रकार श्री अमृत मुनि जी ने ठीक उसी दिन जन्म लेकर, जिस दिन श्री कृष्ण ने ससार मे नेत्र खोले थे, असत्य और अन्याय के विरुद्ध सघर्ष आरम्भ किया।

जिस समय बडे सन्त छोटे सन्तो पर अन्याय कर रहे थे, श्री अमृत मुनि जी छोटे सन्तो के साथी बने। श्री कृष्ण ने 'भगवद्गीता' ससार को भेंट की और श्री अमृत मुनि जी ने 'गौतम गीता' ससार के सम्मुख प्रस्तुत करके अपने को अमर कर दिया।

श्री कृष्ण ने द्रौपदी की लाज बचाई, श्री अमृत मुनि जी ने एक षोडशी के सतीत्व की रक्षा की। श्री कृष्ण ने ससार को आत्मा की शक्ति का ज्ञान कराया और श्री अमृत मुनि जी भी वैसा ही कार्य कर रहे है। श्री कृष्ण अपने भक्तो की प्रत्येक दशा में सहायता करते थे और श्री अमृत मुनि जी भी अपने श्रद्धालु भक्तो के लिए भगवान् के

रूप मे सहायक पथ-प्रदर्शक और सकटो का निवारण करने वाले सिद्ध हुए है।

रामचन्द्र के रूप में

राम राजा के पुत्र थे। उन्होने दुष्टो का सहार किया। श्री अमृत मुनि जी ने एक ब्राह्मण परिवार मे उत्पन्न होकर दोषो के सहार का व्रत लिया, जिसे वे आज तक निभा रहे है।

राम ने पिता की आज्ञा से चौदह वर्ष का वनवास लिया। पर श्री अमृत मुनि जी ने सन्त जीवन मे आकर अपनी सारी सम्पति को त्याग कर जीवन भर घर से बाहर ही भ्रमण करने की प्रतिज्ञा की है।

राम ने एक रावण को मारा। पर श्री अमृत मुनि जी ने एक नही दुर्व्यसनो, पापो और आडम्बरो के जैसे कितने ही रावणो का सहार करने का कार्य अपने हाथ मे लिया है। वे कितने ही सुग्रीवो को उनका अधिकार दिलाने मे लगे है।

सन्त भी सेनानी भी

श्री अमृत मुनि जी एक ओर सन्त है, पचव्रतधारी सन्त। और दूसरी ओर सेनानी है, अन्यायो और दानवता के विरुद्ध सघर्ष करने के लिए मानवता की सेना के वे नायक है। परन्तु यह सेना किसी को मृत्यु के घाट नही उतारती, वरन् दु ख एव पापो के जवडो मे फँसे मानव को सुख एव शान्ति का जीवन दान करती है।

श्री अमृत मुनि जी एक त्यागी साधु है, और जैन साधुओ के लिए वनाये गये सभी नियमो का अक्षरश पालन भी करते है, परन्तु वे अन्य धर्मो के उपदेशो का भी आदर करते है। उनका हृदय विशाल है, वे साइन वोर्ड के वजाय आचरण के प्रशसक है। वे किसी धर्म से घृणा नही करते और न किसी को धर्म-परिवर्तन की ही शिक्षा देते है। उनके विचार से मनुष्य को हस की भान्ति कार्य करना चाहिए। हस दूध-दूध तो पी जाता है और पानी छोड देना है। श्री अमृत मुनि जी का कहना है कि इसी प्रकार प्रत्येक वात में से अपने लाभ की वात ग्रहण कर लो, जो वेकार है, उसे छोड़ दो।

इक्कीसवाँ अध्याय

उनके विचार

लेखनी के कैमरे से लिये गये कविरत्न श्री अमृत मुनि जी की जीवन-यात्रा के चित्र को आपने भली प्रकार देख लिया। पर इतना ही देखना श्री अमृतचन्द्र जी महाराज को समझ लेने के लिए पर्याप्त नही है। उनके वाह्य रूप को देख कर ही उन्हें पूर्णतया नही समझा जा सकता। उन्हे समझने के लिए अभी और भी कुछ जानना शेष है। यद्यपि उनके ललाट पर विद्यमान तेज उनके हिये के ओज को प्रतिबिम्बित करने का प्रयत्न करता है, उनकी वाणी मे महात्मा अमृतचन्द्र जी की पवित्र आत्मा की झलक होती है। उनके चरणो मे सुख और शान्ति का साम्राज्य है, उनके दर्शन मात्र से ही दर्शनार्थी उनकी ओर खिचने लगता है, और इतना प्रभावित होता है कि अनजाने मे ही वह उनका भक्त हो जाता है, उनका भक्त अथवा उनके अलौकिक गुणो और उनकी महान् आत्मा का। फिर जब तक उनके आन्तरिक दर्शन न किये जाये गुणो और चमत्कारो के इस सागर की थाह लेना कठिन है।

सागर के गर्भ मे कितने ही मोती होते है, पर वाह्य रूप मे तो केवल जल ही जल दीख पडता है। हम यह जानते हुए भी कि सागर के उदर मे बहुमूल्य मोतियो का भण्डार है, जल ही जल देखते है और जल का ही स्पर्श कर पाते है परन्तु गोताखोर उसके भण्डार में से कुछ बहुमूल्य मोती बीन ही लाते है। मेरी लेखनी ने भी कुछ मोती खोज लाने की कोशिश की है और श्री अमृत मुनि जी के हृदय के भण्डार में से जो कुछ खोज कर निकाल पाया हूँ, श्री मुनि जी के आन्तरिक दर्शन करने के लिए आप के सामने प्रस्तुत करता हूँ।

ये है अमृत मुनि के अपने विचार —

आत्मा

आत्मा अजर-अमर है, अनादि और अनन्त है। मानव शरीर मे

वास करने वाली आत्मा वास्तव मे सत्, चित् तथा आनन्द स्वरूप है। आत्मा ही कर्ता-धर्ता है। वह ही सुख या दुःख के बीज बोती है। ससार मे जो कुछ है, वह आत्मा का प्रकृति के साथ मिलकर संयुक्त चमत्कार है। आत्मा ही अन्धकार में दीप-शिखा का कार्य करती है। आत्मा ही ससार का सौंदर्य है और वही भूमि का आभूषण है। आत्मा ही सूर्य और चन्द्र, धरती तथा आकाश की जीवन-सगिनी है। जब तक सूर्य, चन्द्र धरती और आकाश है, आत्मा भी है। आत्मा ही जगती-तल के नाट्य मच पर अनेको वेषो मे विद्यमान है, पशु, पक्षी और मानव जाति सभी मे आत्मा वास करती है। ज्ञान और दर्शन ही आत्मा का स्वभाव है।

जब तक आत्मा प्रकृति से प्रभावित है, जब तक आत्मा पर कर्मों और पापो का आवरण है तब तक आत्मा ससार मे भटकती है—कभी किसी रूप में और कभी किसी रूप मे। ससार उसे उसी क्षण तक अपने साथ बाँधे रख सकता है जब तक वह निर्मल नही है। आत्मा को निर्मल करने के लिए एक मार्ग-दर्शक की आवश्यकता होती है, जिसमे आत्मा हो, परन्तु वह आत्मा महान् हो।

महात्मा

जिसकी आत्मा महान् होती है उसे महात्मा कहते है। और अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह इन पाँच महा व्रतो को धारण करने वाले को और "साध्नोति स्व-परकार्याणीति साधु." अर्थात् जो अपनी तथा पर की आत्मा का कार्य सिद्ध करता है उसे ही साधु अथवा महात्मा कहते हैं।

महात्मा सारे विश्व का गुरु, पिता, मित्र और भ्राता होता है। वह अपने कार्य मे योगी तथा 'जन सेवक', स्वभाव से कोमल कलियो की भाँति नर्म और विचारो मे सर्वोच्च होता है।

जो केवल अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए साधन करता है और जिस समाज ने उसे जन्म दिया है, जो समाज उसके शरीर को जीवित रखने का भार सहन करता है, उसके प्रति अपना कोई कर्त्तव्य अथवा धर्म नही समझता वह और चाहे कुछ हो पर यह निश्चित है कि वह महात्मा नही है।

महात्मा को स्वार्थ छू तक नही सकता। वह निर्भय होकर सत्य को सत्य और असत्य को असत्य वताता है। राज-शक्ति अथवा दानव-शक्ति कोई भी हो, उसे उसके विचारो से नही डिगा सकती। वह मिष्ट-भाषी तो होता है परन्तु अन्यायो के विरुद्ध उसके कण्ठ से ज्वाला भी भडक उठती है। वह किसी के रुदन अथवा क्रन्दन को सुनकर चैन से नही वैठ सकता।

जो व्यक्ति मानव जाति को मुक्ति के पथ पर ले जाता है, जनता की सेवा मे ही अपने को खो देता है तथा अपने विचारो से पवित्रता को कभी नही छोडता, वह वाह्य ढग से भगवान् की उपासना भले ही न करे फिर भी महात्मा कहा जा सकता है। सच तो यह है कि सच्चे महात्माओ के जीवन मे वाहिरी उपासना का कुछ अश हो या न हो, पर करोडो आत्माओ को वे त्याग और सेवा का पाठ पढाते है, इसलिए उन्हें महात्मा ही कहा जायेगा।

मै उन लोगो को महात्मा नही मानता जो महात्माओ का वेश धारण किये हुए क्षुधा-तृप्ति मे ही लिप्त है, और उनको भी नही जो साम्प्रदायिकता का विष वमन करके मानव-समाज को विभाजित करते है। मै उन लोगो को भी महात्मा के आदर्श का पालनकर्त्ता नही मान सकता जो किन्ही मतो की दीवारो मे वन्द होकर अन्य मतावलम्बियो की ओर दृष्टि भी नही डालते।

महात्मा अपनी आत्मा को निर्मल करने के लिए एक तपस्या करता है। तपस्या कैसी हो, यह विवादास्पद वात है, पर यह सच है कि उसमे त्याग और सत्य का वहुत स्थान होता है। वह अपनी साधना से अन्य आत्माओ को भी सन्मार्ग पर लाता है।

परमात्मा

आजकल परमात्मा एक ऐसी उलझी हुई समस्या तथा सज्ञा वन गई है कि मानव जाति उसमे स्वय उलझ कर रह गई है। मै परमात्मा की चापलूसी करना अथवा उसे रिझाने के लिए उसके गुणो का आलकारिक भाषा मे वखान करना अच्छा नही समझता। मै परमात्मा को मानता भी हूँ और नही भी मानता।

इस रूप मे तो नही मानता कि वह एक ऐसा स्विच बोर्ड ह जहाँ से प्रत्येक चर, अचर, पशु, पक्षी, वनस्पति और मानव-जाति अर्थात् ससार मे जो कुछ है सचालित होता है। मै इस बात को भी नही मानता कि भगवान् को बस लोगो की तकदीरे लिखने का ही काम रह गया है। हाँ, मै इतना मानता हूँ कि निर्मल तथा विशुद्ध आत्मा का नाम ही परमात्मा है। ससार मे जितनी आत्माएँ है, वे भी परमात्मा के ही गुणो से सयुक्त है किन्तु उनके गुण ढके हुए है। जो आत्मा विशुद्ध हो जाती है वह परमात्मा ही हो जाती है। इसलिए "अप्पा सो परमप्पा" अर्थात् 'आत्मा ही परमात्मा होता है' का सिद्धान्त सही है। पर मै परमात्मा को मानव जाति के बीच विवाद की ऐसी समस्या बनाने के पक्ष मे नही हूँ जो कि मानव को मानव का रक्त पिलावे। मुझे परमात्मा के नाम पर सम्प्रदायो के झगडे-टण्टे, मन्दिर, मस्जिद और गिरजा की टक्कर पसन्द नही।

जो लोग परमात्मा का मन्दिर निर्माण कराकर और खैराते देकर अपने पापो पर परदा डालने की चेष्टा करते हुए समझते है कि वे इन्हे घूंस की भाँति प्रयोग करके परमात्मा से स्वर्ग का टिकट कटा लेगे, वे भूलते है कि मानव रक्त के वल पर इस धरती पर मिला स्वर्ग उन्हे मिलने वाला नही, जव तक वे किसी प्रकार मानव का शोपण करते है। शोपण-प्रणाली परमात्मा की कोई योजना नही है।

परमात्मा किसी का कोई न्यायाधीश भी नही है। हम सब अपने-अपने न्यायाधीश है। जैसे पानी आग पर रखकर भाप वन ही जाता है, उसी प्रकार आत्मा की निर्मलता से आत्मा परमात्मा वन जाती है।

संध्या

विछडी हुई दो वस्तुओ का मेल ही सध्या कहलाता है। इसी लिए दिन और रात्रि के मिलन के समय अर्थात् सायकाल को सध्या-काल भी कहते है। आत्मा अपने परमात्मा के गुणो से विछुड गई है, इसे उन गुणो से जोडना ही सध्या है। इसलिए एक समय पर व्यक्ति समस्त चिन्ताओ और सासारिक मोह को त्याग कर एकाग्रचित्त होकर परमात्मा का स्मरण करने लगता है, और जितने समय वह सध्या

मे बैठता है उतने समय के लिए उसकी आत्मा समस्त आवरण त्याग देती है और इस समय मे परम-आत्मा के गुणो को स्मरण करती है। इस प्रकार आत्मा परमात्मा के साथ इतनी देर के लिए जुड जाती है। इसीलिए सध्या की जाती है।

आप दूसरी आत्मा के साथ जो कुछ करते है, यह समझ लीजिए कि वह अपनी आत्मा के ही साथ कर रहे है। यदि ऐसा विचार रखा जाय तो कोई अनर्थ न हो बल्कि आत्मा निर्मलता की ओर जायेगी।

मेरे विचार से जितनी देर हम लोग भगवान् के गुण गायन रूप सध्या मे व्यतीत करते है, उतना समय यह सोचने मे लगाया जाय कि आज सारे दिन हमने कौन-कौन से अधर्म किये और भविष्य मे वैसा न करने का निश्चय लेकर उठे तो भगवान् की वाह्य उपासना से अधिक इस विचार और निश्चय से लाभ होगा। मै यह नही कहता कि भगवान् की उपासना करना ठीक नही, वरन मेरा कहना तो यह है कि अपनी त्रुटियो पर विचार करके उन्हे पुन न दोहराने का निश्चय करना और निभाना आत्मा को पवित्र तथा शुद्ध करने का अच्छा साधन है। भगवान् की उपासना भी की और आत्मा मलिन ही रही तो फिर अधिक लाभ नही उठाया जा सकता।

धर्म

मनुष्य के कर्तव्य को ही धर्म कहते है और वस्तु का स्वभाव भी धर्म कहलाता है। मनुष्य के अन्त करण का शुद्ध होना धर्म है। जिससे मनुष्य सुखी हो वह भी धर्म कहलाता है। शाब्दिक अर्थों मे जो धारण किया जाय वही धर्म है। इस प्रकार धर्म की कितनी ही परिभाषाए है। मै आत्मा के कर्तव्य और स्वभाव को ही धर्म मानता हूँ। प्रेम करना मनुष्य का स्वभाव है और कर्तव्य भी, इसलिए प्रेम भी मनुष्य का धर्म हुआ।

मै बौद्ध, जैन, हिन्दू, ईसाई और इस्लाम सज्ञाओ मे फँसकर 'धर्म' को विवादास्पद नही बनाना चाहता। सम्प्रदाय, मत तथा पथ मानव को दलबदी की ओर खीचते है। वास्तव मे ससार मे यदि कोई मनुष्य का स्वाभाविक धर्म है तो वह है मानव-धर्म। जो धर्म मनुष्य को मनुष्यता

अथवा मानवता की शिक्षा नही देता वह धर्म कहा ही नही जा सकता। अन्धविश्वास, आडम्बर, भेदभाव, ऊँच-नीच और अस्पृश्यता को जन्म देने वाला मत धर्म नही कहा जा सकता। धर्म तो सत्य और प्रेम की ज्योति जगाता है। वह मनुष्य को मनुष्य का सहयोगी बनाता है न कि घृणा की दीवार खडी करके शत्रुता पैदा करे।

मानव समाज को भटकने न देने के लिए कुछ नियमो की रचना करना मानव-धर्म का कार्य है। परमात्मा को न हिन्दू चाहिए न मुसलमान, न सिख और न ईसाई, उसे केवल मानव चाहिए, ऐसा मानव जिसकी आत्मा निष्कलक और पापरहित हो। आत्मा का शुद्धीकरण जिन नियमो से होता है वे ही मानव धर्म के महान् सिद्धान्त है।

घण्टा हिलाना, भगवान् की विरुदावली गाना, मन्दिरो मे मत्था टेकना लौकिक कर्म है। धर्म सेवा का दूसरा नाम है। जो सबकी सेवा करता है वह धर्मी है। जनसेवक उन सभी धर्मपरायण व्यक्तियो से श्रेष्ठ है जो अन्य की उपेक्षा करके केवल अपनी ही उन्नति के लिए ही साधन करते है।

धर्म किसी वर्ग या वश की बपौती नही है, जिससे मानव की आत्मा को शान्ति मिले वही उसका धर्म है। धर्म के नाम पर घृणा और द्वेष का प्रसार करने वाले अधर्मी ही कहे जा सकते है।

धर्म न मन्दिर मे है और न देवालयो मे, वह तो मनुष्य के हृदय मे वास करता है। उसे न धूप-बत्ती की आवश्यकता है, न गुण-गान की, बल्कि उसे तो त्याग चाहिए। त्याग ही तपस्या है और तपस्या ही धर्म है। त्याग ही सेवा है और सेवा ही धर्म है।

किसी महान् आत्मा की जय-जयकार मनाने से भी धर्म प्रसन्न नही होता है, बल्कि धर्म तो अपनी आत्मा को ही महान बनाना है। इसके लिए आप को कही भटकने की आवश्यकता नही, केवल सत्य और प्रेम को अपनी गाँठ बाँध लीजिए। सत्य व प्रेम के सिन्धु में स्नान करके आत्मा विशुद्ध हो जाती है।

अपने राष्ट्र की सेवा करना एक पवित्र धर्म है और उससे भी महान् धर्म विश्व की सेवा करना है।

जो मानव को मानव नही बना सकता वह धर्म नही है। इसलिए

समस्त विश्व का एकमात्र चिर धर्म है और वह है मानव-धर्म । जब मानव अपने मानव-धर्म को अपना लेता है तब उसे बाहरी चिह्नों की कोई आवश्यकता नहीं रहती, बल्कि वह स्वयं ही देवों का देव हो जाता है ।

राष्ट्र

जिस भूखण्ड में हम रहते हैं उसे एक राष्ट्र कहते हैं । जिस प्रकार आत्मा जिस शरीर में वास करती है उसके प्रति कुछ कर्तव्य हो जाते हैं, इसी प्रकार मनुष्य जिस राष्ट्र में रहता है उसके प्रति उसके कर्तव्य हैं । राष्ट्र स्वाधीन रहे, यह सभी नागरिकों का कर्तव्य है । राष्ट्र उन्नति करे और शान्ति राष्ट्र का एकमात्र उद्देश्य हो, इसके लिए राष्ट्र के प्रत्येक नागरिक पर कुछ कर्तव्य आ जाते हैं, उन्हें निभाना ही राष्ट्रीयता है ।

पर राष्ट्र की सीमाएँ मानव के हृदय पर विश्व के विभाजन की कोई दीवार नहीं खींचती । इसलिए राष्ट्रीयता से अधिक महत्वपूर्ण है समस्त विश्व के प्रति प्रेम ।

कोई भी राष्ट्र तभी उन्नति कर सकता है जब कि सारे विश्व में शान्ति रहे । जिस राष्ट्र की नीति शान्तिविरोधी है उसके नागरिकों को कर्तव्यपरायण नहीं कहा जा सकता ।

राष्ट्र में शान्ति बनाये रखने के लिए यह आवश्यक है कि राष्ट्र का शासन नागरिकों के विचारों का सही प्रतिनिधित्व करता हो । जिस देश में शोषण राष्ट्रीय-विधान का संरक्षण प्राप्त कर लेता है, वह देश सम्पत्तिशाली और वैभवशाली भले ही हो जाय, पर शान्ति से कोसों दूर रहेगा । उसका वातावरण विषाक्त होगा

राष्ट्र की महान् सेवा यह है कि कोई किसी पर अन्याय न कर सके । जहाँ व्यक्ति के श्रम का पूरा पारिश्रमिक मिलता है, वही राष्ट्र सबसे अधिक सुखी होगा ।

शासन

शासन-व्यवस्था नागरिकों के मध्य प्रेम व सहयोग बनाये रखने और अन्याय तथा उत्पात रोकने के लिए होती है । मानव-समाज में दानवीय कृत्य न हों, इसकी देखभाल के लिए ही शासन आवश्यक है । और यह

उसी समय तक आवश्यक है जब तक सारा मानव-समाज मानवता के सिद्धान्तो मे आस्था नही रखता। जब मानव वास्तव मे मानव बन जाता है तब न कोई किसी का शोषण करेगा, न कोई किसी की चोरी-लूट करेगा, कपट, झूठ, मारधाड और दुराचार का कोई स्थान उस समाज मे न रहेगा, तब शासन की भी कोई आवश्यकता नही रहेगी। पर जब तक ऐसा नही है तब तक शासन दानवीय कृत्यो की रोक-थाम के लिए आवश्यक है। पर जो शासन दानवीय कृत्यो को रोकने की अपेक्षा उन्हे प्रोत्साहन देता है, वह मानवता का शत्रु है और प्रत्येक मानवतावादी को ऐसे शासन का विरोध करना आवश्यक है।

जो शासन न्याय-व्यवस्था को ठीक नही रख सकता, वह शासन नही, अत्याचारो के पोषण की व्यवस्था है। और ऐसे शासन को पदच्युत कर देना समस्त नागरिको का कर्तव्य है।

जो शासन अभिव्यक्ति की स्वतत्रता पर रोक लगाये, श्रमिको के हितो के विरुद्ध और शोषको के हित मे कार्य करे, जो जनता के बीच घृणा व फूट उत्पन्न करे, जिस शासन मे पक्षपात चलता हो, जो शासन नागरिको को सुख और शान्ति न दे सके, उस शासन को रहने का कोई अधिकार नही है।

नेता

जनता का नेतृत्व करने वाला नेता कहलाता है। वह जनता की नब्ज पहचानता है और जनता की समस्याओ को सुलझाने का उपाय खोजता है। नेता जनता को सुख और शान्ति का मार्ग दर्शाता है। वह अन्यायो के विरुद्ध नगी तलवार तानकर निकल पडता है। वह अपनी अनुयायी जनता को अपना परिवार मानता है। उसे पक्षपात से घृणा और न्याय से प्रेम होता है। उसे समस्त समस्याओ का ज्ञान होता है। वह सरक्षक भी है, और सेनानी भी और किसी हद तक गुरु भी।

जो नेता राष्ट्र पर अपने स्वार्थो की बलि नही दे सकता, वह नेता नही। जिसे अपनी जनता पर विश्वास नही, वह भी नेता नही। और जो विपदाओ मे घबडा जाता है, वह भी नेता नही कहा जा सकता।

नेता मे महात्माओ-सा त्याग, रणवीरो-सी वीरता, ब्रह्मचारियो-सा

तेज, महान् आत्मबल, ज्ञान तथा सेनानायकों-सी सूझ-बूझ होनी चाहिए।

जो जनता को मूर्ख समझता है, वह नेता कदापि नही हो सकता। नेता सारी जनता का सेवक होता है। जब जनता रोती है तो उसका दिल भी रो उठता है, पर उसकी बुद्धि नही रोती, वह अश्रुओ को पोछने का उपाय खोजती है।

जिसकी ओर जनता आशा भरी नेत्रो से देखती है, वह नेता है।

जो नेता के वेष मे महत्वाकाँक्षी और स्वार्थी है, वह महापापी और जन-शत्रु है।

मन्दिर

जिस स्थान पर मानवता का प्रवेश नही, वह मन्दिर नही है। जहाँ हाड-माँस के भगवान् वास नही कर सकते, पत्थर अथवा सोने-चाँदी के भगवान् वास करते है, वह मन्दिर नही आडम्बर-भवन है। जिस स्थान पर मानवता का प्रसाद बाँटा जाता हो, वह वास्तव मे मन्दिर है।

ईंट-पत्थरो की प्राचीरो के मन्दिर से वह मन्दिर अत्युत्तम है जो हाड-माँस की प्राचीरो से वक्षस्थल के एक कोने मे बनाया जा सकता है। हृदय की धडकनो मे वह राग होना चाहिए जिसे लोग चीख-चीख कर गाते है। पर यह स्पष्ट है कि ससार का सौंदर्य भगवान् की उत्पत्ति नही है वरन् यह सब मानव के हाथो सवारी हुई साज-सज्जा है। इस लिए ससार के चमत्कारो को भगवान् के सिर मँढना सरासर असत्य है।

मन्दिर ही भगवान् के निवास-स्थान नही है। मन्दिर की दीवारो के मध्य भगवान् को खोजने की कोशिश न करो, मानव की कला को परमात्मा मत समझो, बल्कि चलते-फिरते मानवो की सेवा मे अपने को लगा दो, फिर एक नही कोटिश मन्दिर बिना धन के ही बन सकते है।

राग

वह राग नही, जिसमे कोरी कल्पना है। राग वह है जो ससार की वास्तविकताओ मे ओत-प्रोत है। जिसका बोल-बोल मानव-हृदय को मथ डाले, वही राग है। जिस पर प्रकृति की पायल बज उठे, जिसके शब्द-नाद से मुँदे नेत्र खिल उठे और जिससे मानव झूम उठे, राग वही है।

मानव को सुपथ पर ले जाने का जिसमे सन्देश हो, जिसमे मुक्ति का मार्ग बताया गया हो, और जिसमे प्रेम और सत्य कूट-कूट कर भरा हो, वह सर्वोत्तम राग है।

प्रजातन्त्र

प्रजा द्वारा, प्रजा के लिए, प्रजा के शासन को प्रजातन्त्र कहते ह। परन्तु हम उसे प्रजा का प्रजातन्त्र नही कह सकते, जहाँ प्रजा को अपनी राय प्रगट करने का अवसर तो मिलता है पर प्रगट नही कर पाती।

जिस देश मे लोगों को अपने पेट की समस्याओ से ही अवकाश नही मिलता, वे यह कैसे सोचे कि उक्त व्यवस्था इसलिए बुरी है और उक्त इसलिए अच्छी है। धन की कमी उन्हे मुरदा बना देती है और जिस प्रकार परिश्रम कुछ सिक्को के बदले बिकता है, वे उसी प्रकार अपना 'वोट' भी बेच सकते है।

चुनाव मे धन-व्यय होता है, जिसके पास चुनाव के लिए जितने अधिक साधन होते है उसके जीतने की उतनी ही सम्भावनाएँ बढ जाती है।

मै साफ तौर पर कह सकता हूँ कि जिस समाज मे वर्ग होगे, वहाँ का प्रजातन्त्र सही अर्थो मे प्रजातन्त्र नही बन सकता। जहाँ अशिक्षा और अज्ञान होगा वहाँ का प्रजातन्त्र भी स्वार्थी रूप ग्रहण कर सकता है।

जिस देश की जनता अपने अधिकारो और कर्तव्यो के प्रति जितनी जागरूक है उस देश मे प्रजातन्त्र उतना ही सफल रहेगा।

साहित्य

जो साहित्य मनुष्य के मस्तिष्क को उलझा देता है, जीवन की वास्तविकताओ को न दर्शा कर जो कोरी कल्पनाओ के संसार मे ले जाता है, वह साहित्य उच्चकोटि का साहित्य नही कहा जा सकता। साहित्य जिसके लिए रचा गया है उसकी ही बात यदि उसमें नही तो वह बेकार है।

वासनाओ को भडकाने वाला दूषित साहित्य जगत् का कलक है।

साहित्य मानव-जाति की निधि है, सभ्यता और संस्कृति का प्राण है, एक ऐसी मशाल है जो एक बार जलाई जाती है और शताब्दियो तक

जलती रहती है। प्रत्येक पथिक उससे अपनी राह प्रशस्त कर सकता है।

प्रेम, सत्य और मानवोचित भावनाएँ ही साहित्य का जीवन है। जो साहित्य मनुष्य को मनुष्यता की शिक्षा देता है, जो उलझी हुई गुत्थियो को सुलझाने में योग देता है, जो भटकाव को दूर कर नयी समझ, नयी राहे और नये विचार प्रदान करता है, वही साहित्य है, शेष सब घास-कूडा है।

मानसिक व्यभिचार के लिए रचा गया साहित्य बिकने देना भी जनता के साथ अन्याय ही है।

'साहित्य साहित्य के लिए' अथवा 'कला कला के लिए' का नारा देने वालो का स्वप्न टूटना चाहिए। 'साहित्य जीवन के लिए' का नारा मानवीय नाद है।

नारी

नारी मानव जाति से भिन्न नही है, वह भी मानव ही है। परन्तु बहुत सी वस्तुएँ एक समय लाभदायक तो दूसरे समय हानिप्रद भी हो सकती है। ब्रह्मचारी को नारी का स्पर्श नही करना चाहिए। गृहस्थ के लिए वह बात ठीक नही।

नारी जननी है, वह गगा के जल की भान्ति पवित्र है, जबतक उसमे पुरुष वर्ग विष न घोले।

नारी आज के युग मे सर्वाधिक शोषित वर्ग है, जिसका हर प्रकार से शोषण होता है और है वह पिछडा हुआ वर्ग।

नारी को गुडिया और खिलौना बनाना महा पाप और अन्याय है। उसे मानव ही रहने देना अच्छा है।

नारी का अपमान जननी का अपमान है। वह प्रेम की प्रतिमूर्ति है। करुणा की धारावाहिनी है।

नारी देवी भी बन सकती है और अग्नि भी, और नगी खड्ग भी।

नारी रुदन भी है और मुस्कान भी।

नारी एक अनमोल रत्न है, पर ऐसा रत्न जो कीचड मे जा पडे तो स्पर्श करने वालो को भी कीचड बना दे, और अपनी सही दशा में रहे तो

उसके प्राकृतिक गुण कुण्ठित न हो तो वह बुझते दीपक को भी अपनी चमक से आलोकित कर दे।

जिसमे आत्म-बल नही नारी उसके लिए हलाहल है, और जिसमे आत्मिक शक्ति है उसके लिए शक्ति दान करने वाली है।

तपस्वी के लिए नारी विष है और गृहस्थ के लिए अमृत।

नारी आदर की वस्तु है, तिरस्कार की नही। वह मानव के रूप मे है तो कोई अनोखी चीज नही। उसके शरीर को नही उसकी आत्मा को परखो।

धन

सत्परिश्रम ही सबसे बडा धन है। चाँदी-सोने के सिक्के, कागज के नोट और हीरे-जवाहरात आदि धन नही है। वे तो धन मान लिये गये है।

विचार और भाव भी धन है, पशु और साधन भी धन है और प्रकृति के द्वारा उत्पादन के लिए दिये गये साधन भी धन है।

जहाँ सिक्के को धन समझ कर सिक्के को पूजा जाने लगता है, वहाँ वास्तविक धन ठोकरे खाने लगता है और शान्ति तथा न्याय, सदाचार और प्रेम वहाँ ढूंढे नही मिलता।

मनुष्य की शक्ति और श्रम यही धन को धन मे परिवर्तित करते है, यही रत्न को रत्न बनाते है। श्रम ही पत्थरो मे प्राण डाल सकता है, इसलिए यही धन आदरणीय है।

धनलोलुपता, सिक्के की लोलुपता, ज्ञान और धर्म पर परदा डाल देती है इसलिए इसे लक्ष्मी नही कह सकते।

स्त्री का सतीत्व ही स्त्री के लिए सबसे बडा धन है, युवक के लिए जवानी ही महान् धन है और पुरुष के लिए पुरुषत्व और साधु की तपस्या ही उसका धन है।

जिस मे साहस, आत्मबल और उच्च विचार नही, वही निर्धन है। जिसके पास त्याग, तपस्या और जन-सेवा का पुण्य है, ज्ञान तथा शान्ति है वह धनाढ्य है।

सिक्के का धन वह मदिरा है जिसके पीते ही मनुष्य मनुष्यता से गिर जाता है। वह मोक्ष की चाह भी करे तो भी धन-मदिरा उसकी चाह को शिथिल कर देती है।

धन्य है वे जो करोड़पति-अरबपति होते हुए भी मानव रहते है। वे महान् है और आदर्श है। जिस युग में धर्म समाप्त हो जाता है, ज्ञान नहीं रहता उस युग में निर्जीव धन का साम्राज्य छा जाता है और मानवता ठोकरे खाने लगती है।

आज मानवता हँस रही है

उस दिन मानवता रो रही थी, और आज दानवता रो रही है। सारा मानव-समाज अंगड़ाई ले रहा है, दानवता के चंगुल ढीले पड़ रहे है। मानवता बीच मैदान मे खड़ी सारी राक्षसता, दानवता को ललकार रही है। युग-युग के पड़े बन्धन, रीति-नीतियो की शृङ्खलाएँ, छल-कपट के गोरखधन्धे टूट रहे है। अन्यायी अपने जीवन के अन्तिम अध्याय मे प्रवेश कर चुके है।

और हमारे चरित्रनायक ने क्रान्ति की भेरी बजा दी है।

अमृत मुनि जी आज अकेले नही, उनके साथ असंख्य नर-नारी है। उनके पग उठते है तो मानों सारी मानवता चल पड़ती है, उनके साथ-साथ। वे जहाँ जाते है, जहाँ ठहरते है, वही नया देवालय, नया मन्दिर बन जाता है। जिस देवालय मे न धूप-बत्ती की आवश्यकता है, न दान-प्रसाद की, न सज-धज और रास-लीला की और न चीख-चीख कर आरती गाने की। जिस देवालय मे पत्थरो की कल्पित मूर्तियो की आवश्यकता नही, जिस देवालय के भगवान् पाषाणमय नही, हाड-माँस के बने सच्चे मानव है।

वह सामने बैठे है अमृत मुनि जी। ब्रह्मचर्य के तेज से सारा ललाट दीप्तिमान् है। उनके अधरो पर प्रतिक्षण मुस्कान होती है। विनोद उनके स्वभाव में शामिल है। वे ढोंग को पास नही फटकने देते।

कृष्णमूर्ति अमृत मुनि जी के मुँह पर चार अंगुल की, श्वेत पट्टी बंधी है। मानो उन्हे अपने मुँह पर पूरा कन्ट्रोल है और पट्टी के धागे कानो तक गये है, श्वेत धागा, जो श्याम वदन पर अनोखी छटा दिखाता है। जो प्रतीक है इस सत्य का कि उन्हे अपने कानो पर पूरा विश्वास है और है उस पर उनका पूरा वश।

उस दिन मैंने उनसे पूछा, "आपके मुँह पर यह पट्टी क्यों? आप तो साम्प्रदायिक बंधनो मे कोई सम्बन्ध नहीं रखते।

स्वाभाविक मुस्कान उभर आई। "यह तो हमारा धार्मिक चिह्न है, वह भी ऐसा कि जिस पर कुछ अंकित नहीं है किन्तु फिर भी प्रत्येक मनुष्य उसे अनायास ही पढ़ लेता है। मानो वह साइन बोर्ड, जिस पर

फर्म का नाम तक न लिखा हो पर अपनी स्वतन्त्र पैठ के कारण, धार्मिक जगत् को अपनी ओर खेंच सके।"

मैं भी हँस पड़ा

वे पैदल नगे पैरो ही देश का भ्रमण करते है। मैंने एक दिन कहा, "आपके सन्देश की तो सारे ससार को आवश्यकता है, पैदल चलकर आप सारे ससार का भ्रमण नही कर सकते, क्यो न यातायात के आधुनिक साधनो को प्रयोग करके मानव-जगत् को आप मानवता का सन्देश दें ?"

वे मुस्करा पडे। मैं नही, पर मेरे विचार तो वायु-अश्वो पर सवार होकर सारे विश्व का भ्रमण कर रहे है।"

अमृत मुनि जी बाल अपने हाथ से उखाडते है। मैंने कहा कि बाल तो हाथ से उखाडने मे कोई लाभ नही दिखाई देता। आप जैसे क्रान्तिकारी साधु फिर इस रीति को क्यो नही त्यागते ?

उस दिन इस प्रश्न को सुनकर भी वे मुस्करा उठे। बोले, "फिर क्या तो नाई का दास बना दो, या फिर धातु का दास, और धातु के लिए पैसे का दास। दासता अपने को स्वीकार नही।"

प्रकृति-पुत्र धातु की कोई वस्तु अपने पास नही रखते। यहाँ तक कि उनकी ऐनक मे भी कील के स्थान पर लकडी की कील ही लगी है और वे भोजन भी लकडी के ही बरतनो मे करते है। दूध उन्होंने वर्षों से छोड रखा है। अन्य जैन साधु तो तीन चादर रखते है, पर अमृत मुनि जी पौष-माघ की रक्त जमा देने वाली शीत रात्रियो मे भी एक ही चादर मे, खादी की चादर मे, रहते है। जाने चादर लपेटे वे शान्त कैसे बैठे रहते है, उनके दाँत भी नही बोलते।

ज्योतिष के वे अच्छे विद्वान् है। उनके समीप पुस्तकों का एक विशाल भण्डार रहता है। न जाने कितने विषयो की पुस्तकें पढ डाली है। जिस विषय पर बाते होने लगे उसी पर अधिकारपूर्ण व [illegible] लेते है।

धरती घूम रही है अपनी निश्चित गति पर,
पर। कोई कहता है, गाय के सीग पर रुकी है यह [illegible]

पर विश्वास नही कि पृथ्वी की गेंद के नीचे कोई कीली है अथवा गाय का सीग। मै समझता हूँ, पृथ्वी मानवता पर रुकी है। मानवता न रहे तो आज के परमाणु बम, इसे नष्ट कर डाले। और उसी मानवता के प्रचारक है प्रकृति-पुत्र। सत्य, अहिसा, शान्ति और अपरिग्रह-उनके विचारो के मूल आधार है।

उपाध्याय श्री अमृत मुनि जी के चरण बढ़ रहे है, जीवन पथ पर और मानवता बढ रही है अपने यौवन पथ पर। उस यौवन की ओर जिसका चढाव तो है उतार नही। प्रकृति ने उन्हे जन्म दिया है मानवता को कण-कण मे पहुँचा देने के लिए, सम्प्रदायवाद के विष को मानवीय विचारो के 'अमृत' से प्रभावहीन कर डालने के लिए।

अभी उनकी यात्रा जारी है और मै उनके भूमि पर पडे चरणो को उनके पद-चिह्नो को कागज पर ला रखने बैठ गया हूँ। कथा अधूरी है, क्योकि मानवता का सघर्ष अधूरा है। मुनि अमृत जी अमृत-दान करते आगे बढते रहेगे और मानवता के इतिहास के लेखक इस अमृतदान को कभी भुला न सकेगे।

उस दिन मानवता रो रही थी, चीत्कार कर रही थी और आज . . . ?

आज मानवता हँस रही है, उसके अधरो पर मुसकान है।

उस दिन मानवता रोती थी।
आज दानवता रोती है॥

॥ चातुर्मास-क्रम ॥

१-१९९४-दिल्ली-चाँदनीचौक महावीर भवन (बारहदरी) इस वर्ष यहाँ पर स्व० पूज्य खूबचन्द्र जी महाराज का भी चातुर्मास था। यह चातुर्मास स्वर्गीय मोहरसिंह जी महाराज की सरक्षता में किया।

२-१९९५-दादरी (जीन्द)।

३-१९९६-सरसा—इस चातुर्मास में संस्कृत का विशेष अध्ययन किया।

४-१९९७-हिसार रामलीला ग्राउण्ड की धर्मशाला मे।

५-१९९८-दादरी (जीन्द)।

६-१९९९-गुडगाँव-जैन धर्मशाला। यह चातुर्मास धर्मोपदेष्टा श्री फूलचन्द्र जी महाराज के साथ किया।

७-२०००-बडौत मण्डी, (जि० मेरठ)।

८-२००१-नई दिल्ली, राजाबाजार, दिगम्बर जैन मन्दिर।

९-२००२-नुहाना मण्डी।

१०-२००३-बडौत मण्डी, जिला मेरठ-मुलतानगज जैन स्थानक।

११-२००४-करनाल-जैन स्थानक।

१२-२००५-कैथल-जैन स्थानक।

१३-२००६-सुनाम।

१४-२००७-कैथल-अग्रवाल पचायती धर्मशाला मे।

१५-२००८-गन्नौर मण्डी-जैन स्थानक।

१६-२००९-भटिण्डा-रौनकराम बन्तराम भुच्चो वालो के मकान म।

१७-२०१०-भटिण्डा-ला० वशीराम ओम्प्रकाश के मकान मे।

१८-२०११-पटियाला शहर-चिरजीलाल चरणदास की दुकान के ऊपर।

१९-२०१२-भटिण्डा-गुरु भवन मे-यह गुरु-भवन ला० रोशनलाल जी मलोट ने अपनी लगभग ५० हजार की लागत से बनवा कर शिष्य-मडल, भटिण्डा को धर्मार्थ भेट किया है।

दैनिक डायरी के पन्नों से

२६–११–५० से ५–४–५५ तक

२६–११–५०	कैथल। राय साहब बेनीप्रसाद के मकान में।
३–१२–५०	कैथल से १० मील दूर पूण्डरी। रघुबीर सिंह के मकान में।
५–१२–५०	रसीना।
६ ,,	निसंग। गुल्लरपुर, पाढ़ा, बाल पवाना।
७ ,,	मड़लोढा। जैन स्थानक में।
१० ,,	पानीपत मण्डी।
११ ,,	पानीपत शहर।
३१ ,,	राजाखेड़ी। जैन स्थानक।
५—१–५१	बराना।
६ ,,	वरसत। जैन सभा में।
१३ ,,	घरौंदा मण्डी।
१६ ,,	करनाल। जैन स्थानक में।
२८ ,,	रम्भा (करनाल से आठ मील)।
२९ ,,	इन्द्री ८ मील।
३० ,,	लाड़वा ७ मील।
५—२–५१	रादौर ८ मील।
६ ,,	जमुना नगर (अब्दुल्लापुर, जगाधरी)।
८ ,,	सरसावा।
९ ,,	सहारनपुर।
१८ ,,	सहारनपुर। राष्ट्रीय संघ द्वारा जुबली पार्क में आयोजित उत्सव में प्रात भाषण। ५०० स्वयं सेवको ने भाग लिया।
१—३–५१	दिगम्बर मुनि नेमि सागर जी से भेंट। उनके आग्रह पर जैन कालिज में भाषण दिया।
११ ,,	कैलाशपुर (सहारनपुर से ५ मील)।
१२ ,,	भगवानपुर, १२ मील कच्ची सड़क से फूलचन्द्र जी के मकान में ठहरे।
१३ ,,	रुड़की, ६ मील दिगम्बर धर्मशाला में।

१५—३—५१		ज्वालापुर १६ मील मुरारीलाल जैन के मकान में।
१६	,,	भाषण, दिगम्बर जैन मन्दिर में, नगर के प्रतिष्ठित व्यक्तियो ने भाग लिया।
१७	,,	कनखल, वैश्यकुमार सभा में ठहरे।
१८	,,	स्वामी चैतन्यदेव का करोडो की सम्पत्ति का डेरा देखा।
१९	,,	हरिद्वार, हरि की पौडी को देखा।
२०	,,	गुरुकुल कांगडी देखा।
२१	,,	महन्त करतारदास के आग्रह पर उनके आश्रम पर गये।
२३	,,	होलिका, काली देवी, तीन मील पहाड पर चण्डी देवी आदि स्थानों पर गये।
२५	,,	मनमादेवी १½ मील की चढाई पर।
२६	,,	ऋषिकुल देखा।
२७	,,	सत्यनारायण के मन्दिर में (१० मील)।
२८	,,	ऋषिकेश, बाबा काली कम्बली वाले की नई धर्मशाला में ठहरे। मध्याह्न में अयोध्याप्रसाद दीपचन्द्र जी जैन के यहाँ भाषण दिया।
२९	,,	वैद्य भगवन्त राय जी के साथ लक्ष्मण झूला का भ्रमण। स्वर्ग आश्रम, गीता भवन औषधालय, पुस्तकालय आदि देखे।
३०	,,	विहार किया। १ मील, आत्मविज्ञान भवन में ठहरे। सायकाल को विहार करके सत्यनारायण के मन्दिर में आये।
३१	,,	हरिद्वार। नृसिह भवन में, ३ घण्टे विश्राम के पश्चात् ज्वालापुर।
३—४—५१		दौलतपुर पचायती धर्मशाला में।
४	,,	रुडकी।
७	,,	प्रात काल राष्ट्रीय सघ की ओर से आयोजित वर्ष प्रतिपदा उत्सव पर भाषण।
८	,,	भगवानपुर।
९	,,	अड्डा छुटमलपुर धर्मशाला में एक सुभाषचन्द्र बोस के साथी साधु के साथ भेंट।
१०	,,	कैलाशपुर।
११	,,	सहारनपुर रामलीला के मकान में।
१२	,,	बाबा हरनामदास की समाधि में।
१५	,,	सरसावा वीर सेवा मन्दिर में ठहरे वीर जयती मनाई।
२०	,,	अब्दुल्लापुर। ला० मेहरचन्द्र जैन ठेकेदार के मकान में।
२४	,,	मॉडल टाउन। रात्रि में भाषण।
२५	,,	रादौर। देवी के मन्दिर में।

२६—४–५१ लाडवा में ।
२७ ,, इन्द्री, हनुमान मन्दिर में विश्राम ।
२८ ,, रम्भा, सायंकाल के समय करनाल ।
३० ,, घरौंडा ।

१—५–५१ बडसत ।
३ ,, पानीपत मण्डी, सुण्डामल नन्दकिशोर के मकान में विश्राम ।
४ ,, सम्भालका ।
५ ,, गढ़ी जिन्नारा, जैनाचार्य श्री कपूरचन्द्र जी महाराज के दर्शन किये, दोपहर को भाषण ।
६ ,, गन्नौर मण्डी, जैन स्थानक में ।
१० ,, सोनीपत ।
१२ ,, गन्नौर मण्डी ।
१३ ,, भाइयों के अत्याग्रह पर गन्नौर में चातुर्मास मनाना स्वीकार किया ।
१४ ,, गूजर खेडी ।
१६ ,, पुगथला, जैन स्थानक में विश्राम ।
२० ,, बुसाना ।
२१ ,, खामपुर, ग्रामीण जनता ने धर्म-लाभ उठाया ।
२२ ,, गोहाना मंडी, यहाँ स्थानक की कमी थी, लोगों में प्रचार किया, जिसका १३ जून को मुहूर्त हुआ ।

६—६–५१ शहर गोहाना ।
१६ ,, विटाना ।
१९ ,, विचपडी ।
२० ,, खानपुर, सायंकाल सामडी आये ।
२४ ,, कासन्डी, सायंकाल सरगथले आये ।
२५ ,, पिलाना ।
२६ ,, रोडका मुहाना, स्थानक की कमी थी, निर्माण का कार्यक्रम वनवाया ।

४—७–५१ सोनीपत मडी, जैन मन्दिर में ।
९ ,, सोनीपत शहर, स्थानक में ।
१० ,, गन्नौर मंडी स्थानक में, चातुर्मास के लिए ।

१४–११–५१ विहार किया, सोनीपत मंडी में पहुँचे, आचार्य श्री जी के दर्शन किये ।
२३ ,, नरेला मंडी में ।
२५ ,, ऊँचा खेडा ।

२६–११–५१ दिल्ली सब्जी मंडी, यहाँ पर जैन समाज के सत्ताधीशो की नीति के कई उदाहरण देखने में आये, रामसिंह जी आदि को स्थानक मे निकालना, स्थानको पर ताले लगवाना, मकान की आज्ञा न देना आदि ।

२३–१२–५१ गोरा कोठी में भाषण दिया, लोगो पर अच्छा प्रभाव हुआ ।

२८ ,, ला० रामनाथ जी जन (निरपडे वाले) की प्रार्थना पर नये बाजार में, भैया की माँ की धर्मशाला में आये ।

३१ ,, दिगम्बर मुनि सूर्यसागर जी से मिले । उन्होंने बहुत प्रेम दर्शाया ।

४––१–५२ अहीरो वाली धर्मशाला में आये ।

६ ,, भाषण दिया ।

१३ ,, सूर्यसागर जी के साथ तथा चौथमल जी महाराज के शिष्य प्रतापमल जी महाराज के साथ भाषण दिया ।

२० ,, हीरालाल जैन हाई स्कूल, बारह टूटी में भाषण दिया ।

२६ ,, तिमारपुर में स्वतन्त्रता दिवस पर भाषण दिया ।

३––२–५२ डिप्टी गंज में भाषण दिया । जैन समाज ने तथा देहली निवासी सज्जनो ने अभिनन्दन पत्र आदि भेंट किये ।

४ ,, ऊँचा खेडा ।

५ ,, नरेला ।

६ ,, सोनीपत ।

७ ,, गन्नौर ।

९ ,, सम्भालका ।

१० ,, पानीपत ।

११ ,, घरौंडा ।

१२ ,, करनाल ।

१८ ,, तरावडी, ला० फिरोजीलाल जैन के कमरे में ।

१९ ,, कुरुक्षेत्र जैन स्थानक में, सूर्यग्रहण का मेला प्रारम्भ, इसी दिन से प्रचार आरम्भ कर दिया ।

२४ ,, पब्लिक सिटी कैम्प से भाषण दिया जो लगभग पाँच छः लाख जनता ने सुना । सकडों ने, माँस-शराब आदि का त्याग किया, पचासो नागे बाबाओं ने तम्बाकू, सुल्फे आदि का त्याग किया । धर्म का अच्छा प्रचार हुआ ।

२९ ,, पपनावा, साथ में मेलीराम जी जैन (प्रेजीडेन्ट म्युनिसिपल कमेटी) आदि तीन भाई भी थे ।

१––३–५२ टौंक ।

२—३—५२	कयल, ला० तेलूराम निरवाणी की बिल्डिंग म ठहरे, वीर-जयंत समारोहपूर्वक मनाई गई।
१९ ,,	पालड़ा, ५ कोस, डेरे में ठहरे, तीस-पैंतीस व्यक्ति साथ थे, स काल तीन कोस सागण आये, रात्रि में धर्मशाला में विश्राम कि तमाम रात्रि मच्छरों ने शोषण किया।
२० ,,	चार कोस शेरगढ, मस्जिद में ठहरे। सायकाल चार कोस बो कानपुरी के डेरे में ठहरे।
२१ ,,	माण्डवी ४ कोस, आहार आदि करके पाँच कोस मूनक आये। र गोसाइयो के डेरे में विश्राम किया। सन्तो ने अच्छी सेवा सूर्य के अत्यन्त प्रकोप के कारण नगर में नहीं जा सके। सा को तीन कोस विहार करके जाखल मण्डी आये। भागमल र भान की बैठक में ठहरे।
२२ ,,	बरटा (दस मील)।
२३ ,,	बुढलाढा १० मील, धमशाला में। सायकाल ४॥ मील नरे स्टेशन पर विश्राम किया।
२४ ,,	मानसा मण्डी, ५॥ मील, स्थानक में आचार्य श्री जी के दः
२८ ,,	मौड मण्डी, राजाराम के चौबारे में। सायं को माइस स्टेशन पर।
२९ ,,	५ मील, कोट फत्ता मण्डी में। सायंकाल ४ मील व वाला स्टेशन पर।
३० ,,	भटिण्डा स्थानक में, अत्याग्रह पर चातुर्मास की प्रार्थना की, अजैन भाइयो ने खूब प्रेम दिखाया।
८—६—५२	विहार करके पाँच कोस, मेहता वीरचन्द्र अग्रवाल के दिन में विश्राम करके, साय को शेरगढ स्टेशन प विश्राम किया।
९ ,,	रामाँ मडी।
१६ ,,	देसू।
१७ ,,	डववाली।
२० ,,	खघोवाली, मलोट के भाइयो के आग्रह पर मलोट प्रार्थना स्वीकार की।
२१ ,,	माहुवाना, नहर की कोठी में ठहरे।
२२ ,,	मलोट।
२४ ,,	गीदडवहा।
२७ ,,	वल्लूवाला।

२८—६–५२	वहान दीवाना स्टेशन पर, कीडो-मकौडो ने खूब सेवा-भक्ति की, रात्रि बैठ कर काटनी पडी।
२९ ,,	भटिण्डा।
२–११–५२	विहार करके गोशाला में।
३ ,,	१८ मील रामा मडी, नहर की कोठी में।
४ ,,	स्थानक में गये, दो-तीन भाषण मडी में दिये।
१३ ,,	विहार करके बरतू।
१४ ,,	मेहता।
१५ ,,	गोशाला भटिण्डा।
१६ ,,	भटिण्डा, सट्टा बाजार हिन्द कम्पनी में।
३० ,,	कोट फत्ता (११ मील)।
२–१२–५२	मौड।
४ ,,	मानसा।
८ ,,	बुलाडा।
११ ,,	बरेटा, आत्माराम लोहिया के मकान में।
१२ ,,	जाखल।
१५ ,,	टुहाना।
१६ ,,	धमतान (८ मील), तुलाराम के नोहरे में।
१७ ,,	झाणा, ६ कोस, गौरीशकर के मकान में।
१८ ,,	बरटा, नागो के डेरे में, ७ कोस, मार्ग खराब है।
१९ ,,	बाबा का लदाना, ५ कोस, मार्ग खराब।
२० ,,	कैथल ५ कोस।
२२—२–५३	सीवन ६ मील।
२३ ,,	सोया खरीदी होते हुए गूला १० कोस, रोशनलाल के मकान में।
२४ ,,	समाना, १० कोस।
२७ ,,	घराट (पनचक्की) १० मील।
२८ ,,	त्रिपुडी, १२ मील, १२४ नम्बर क्वार्टर में ठहरे। भटिण्डे वालों की प्रार्थना पर चातुर्मास स्वीकार किया।
१५—३–५३	गुड मडी, पटियाला शहर में, लाला इन्द्रसेन लौटिया के चौबारे में, रात्रि में कथा, सहस्रो की उपस्थिति हुई। वीर-जयती बडी धम-धाम से मनाई।
६—४–५३	झन्डी होते हुए मरदाहेडी, (आठ मील) आये धर्मशाला में विश्राम किया। यहाँ पर भगवानदास आदि वनियो के कुछ ही घर है, दिन में विश्राम किया, सायकाल को तीन मील चल बेहडा धर्मशाला में पहुँचे। धर्मशाला में विश्राम किया।

७—४–५३ १३ मील पीढल, छज्जूराम के नोहरे में ठहरे। सायंकाल ३ मील कांगथली पहुँचे, जीते गूजर के नोहरे में विश्राम किया।

८ ,, बारह मील कैथल, मार्ग में सीवन आकर आहार आदि ग्रहण किया।

२६ ,, सजूमा (७ कोस), ला० ठोलूमल के चौबारे में पैंतीस-तीस भाई सजूमा तक छोड़ने आये।

२७ ,, क्लैथ ३ कोस, नत्थूराम तेलूराम की कोठी में।

२९ ,, निर्वाणा ९ कोस, गौरीशकर झाणे वाले के मकान में।

४—५–५३ धरौंदी ३ कोस, स्टेशन पर।

५ ,, धमतान ४ कोस, तूलेके के नोहरे में।

६ ,, टुहाना ५ कोस, स्थानक में।

९ ,, जाखल ७ कोस, भागमल कस्तूरीलाल की बैठक में।

१४ ,, कानगढ़ ५ कोस, दिन में विश्राम, सायं को बरेटा ३ कोस सिंडीकेट के दफ्तर में।

१५ ,, बुढ़लाढ़ा १० मील, स्थानक में।

१७ ,, नरेन्द्रपुरा स्टेशन पर।

१८ ,, मानसा, स्थानक में।

३—६–५३ कोट ५ कोस, नन्दलाल के चौबारे में।

४ ,, फत्ता ८ कोस, बृजलाल के चौबारे में।

५ ,, शर्दूलगढ़ ५ कोस।

३० ,, रोड़ी ३ कोस।

३—७–५३ फग्गू ५ कोस, मार्ग रेतीला।

५ ,, कालां वाली ४ कोस, मार्ग कठिन है।

७ ,, कनकवाल।

८ ,, रामा ३ कोस, स्थानक में।

९ ,, वल्लू ३ कोस, आहार करके १½ कोस शेरगढ़ स्टेशन पर रात में विश्राम किया।

१० ,, महता ४ मील, वीरचन्द के चौबारे में।

११ ,, भटिण्डा गोशाला ५ कोस।

१२ ,, भटिण्डा शहर, वशीलाल के चौवारे में चातुर्मास किया।

२०–१२–५३ विहार दिवस मनाया, मान-पत्र आदि भेंट किये, २-३ हजार की जनता छोड़ने गई। बाबू रोशनलाल जी प्लीडर के दफ्तर में पौन मील जाकर ठहरे। भीड़ अधिक होने के कारण धक्कम-धक्का होने से उपाध्याय श्री जी के पेट में तकलीफ हुई, महान् दौरा आया जिसके फलस्वरूप २१ ता० को पुन शहर आना पडा, मिड्डूमल के चौवारे में उतरे।

१२-१—५४ को फूसमण्डी ४३/४ मी०, ला० वशीलाल के चौवार में ।

१३ „ भुच्चोमण्डी ५१/२ मी० दौलतराम छज्जूराम के मकान में। साय को लहरा मुहोव्वत ५ मी० ।

१४ „ रामपुरा फूल ४ मी०, वाल्मल छज्जूराम (क्लाथ मर्चेन्ट) ने मल्लसिंह के चौवारे में ठहराया ।

१५ „ तपा ८ मी०, वशीराम रौनकराम ठेकेदार के मकान में ।

१६ „ हडियाया ९ मी०, मार्ग कठिन है। धर्मशाला में।

१७ „ वरनाला ४ मी०, गोंदीराम रामदास के मकान में।

१९ „ शेखा ५ कोस सरवनमल के मकान में।

२० „ अलाल ५ कोस, प्राइमरी स्कूल में।

२१ „ धूरी ९ मी०, आशाराम मोहनलाल की दुकान पर।

९—२-५४ छींटे वाला ८ मी०, सत आपो आप के डेरे में ।

१० „ नाभा ८ मी०, साधोराम माधोराम की धर्मशाला में।

१५ „ कल्याण ९ मी०, साय को त्रिपुडी ७ मी० ।

२२ „ पटियाला शहर, चिरजीलाल लोटिया डालडावाले के मकान में । ७-३-५४ से रात्रि में भाषण प्रारम्भ किये। उपस्थिति अच्छी रही ।

१९ „ होलिका पर्व (होली चातुर्मास) मनाया ।

२० „ सहस्रो की सख्या ने चातुर्मास की आग्रह भरी प्रार्थना की जिस उपाध्याय श्री जी ने स्वीकार किया ।

२१ „ भटिण्डा के भाई दर्शन करने को आये और भटिण्डा पधारने की प्रार्थना सारे दिन भर करते रहे। आखिर हां कराकर ही छोडा ।

२८—३-५४ त्रिपुडी, जनता त्रिपुडी तक छोडने आई। भटिण्डा के भाई भटिण्डा तक साथ चलने को भी तैयार हो गये ।

२९ „ नाभा धर्मशाला में ।

३१ „ छीटा वाला ।

१—४-५४ धुरी। ३ ता को अलाल। ४ को वरनाला। ६ को हडियाया। ७ को तपा। ८ को रामपुरा। ९ को भुच्चो । १० फूसमण्डी। ११ को भटिण्डा। वीर जयन्ती मनाई।

४—५-५४ उपाध्याय श्री जी का दीक्षा-दिवस मनाया।

१६—६-५४ को विहार किया गोशाला में ठहरे। फूसमण्डी आदि होते हुए ४-७-५४ को पटियाला (चातुर्मास के लिए) पहुँचे। डालडा वालो के मकान में चौमासा किया ।

११—७-५४	को व्याख्यान प्रातः कालके प्रारम्भ किये। चार मास बड़े आनन्द-पूर्वक व्यतीत हुए।
२१-११-५४	को भटिण्डा के भाई भटिण्डा पधारने की प्रार्थना करन आये। प्रार्थना करी, जो उपाध्याय जी ने बहुत कठिनाई से स्वीकार की। इससे पहिले भी ३-४ वार भटिण्डा वाले भाई प्रार्थना करने आये थे जो निराश होकर लौट जाते थे परन्तु इस वार तो आशा पूरी करके ही लौटे।
२८-११-५४	विहार किया। हजारो व्यक्तियों ने अन्तिम स्वागत किया। त्रिपुड़ी आकर ठहरे।
३० ,,	नाभा। पटियाले के कई भाई यहाँ तक छोडने आये।
२-१२-५४	भगवानी गढ ११ मी०, प्यारेलाल खत्री के मकान में। यहाँ पर लाला हसराज जी अच्छे प्रेमी हैं।
३ ,,	संगरूर १२ मी० जैन सभा में।
४ ,,	चीमा १६ मी० रूढामल वीरूमल के चौवारे में।
५ ,,	मानसा २६ मी० जैन सभा में। मार्ग में भिक्खी आदि अनेक गाँव आये।
९ ,,	मौड मन्डी, जगा वालों के चौवारे में।
१० ,,	कोटफत्ता, विलायतीराम की दुकान में।
११ ,,	भटिण्डा गोशाला में।
१२ ,,	भटिण्डा शहर में। शिष्य-मण्डल के स्थान में उतरे।
५—४-५५	वीर-जयन्ती बड़े धूम-धाम से मनाई।